द्वितीय पुष्प

कविवर बूचराज

एवं

उनके समकालीन कवि

[संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले पाँच प्रतिनिधि
कवि बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं
ठक्कुरसी का जीवन परिचय, मूल्यांकन तथा
उनकी ४४ कृतियों का मूल पाठ]

लेखक एवं सम्पादक

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

प्रकाशक : श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी
गोदीकों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२००३

श्रुत पंचमी
सन् १९७९

मूल्य : ३० रुपये

मुद्रक : मनोज प्रिन्टर्स
जयपुर ।
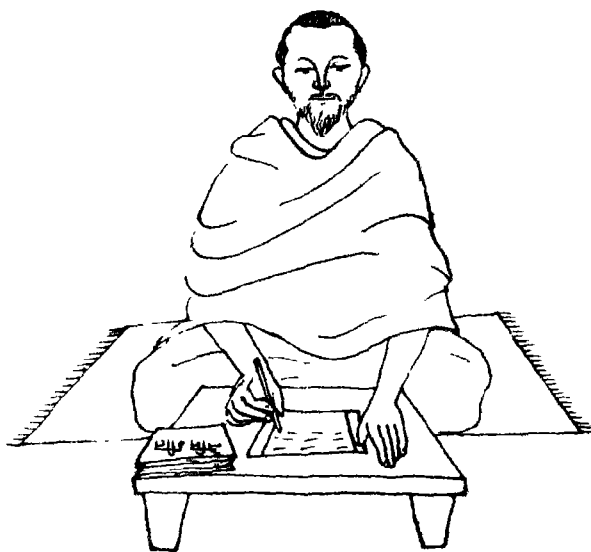
कविवर ब्रह्म बूचराज

कविवर ठक्कुरसी

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, एक परिचय

जैन कवियों द्वारा हिन्दी भाषा में निबद्ध कृतियों के प्रकाशन एवं उनके मूल्यांकन की आज अतीव आवश्यकता है। देश के विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों मे जैन हिन्दी साहित्य को लेकर जो शोध कार्य हो रहा है तथा शोधार्थियों में उस पर शोध कार्य की ओर जो रुचि जाग्रत हुई है वह यद्यपि उत्साहवर्धक है लेकिन अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैन कवियों को नाम मात्र का भी स्थान प्राप्त नही हो सका है और हमारे अधिकांश कवि अज्ञात एवं अपरिचित ही बने हुए हैं। अभी तक जैन कवियों की कृतियां ग्रन्थागारों मे बन्द हैं तथा राजस्थान के शास्त्र भण्डारों को छोड़कर अन्य प्रदेशों के भण्डारो के तो सूची पत्र भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। देश की किसी भी प्रकाशन संस्था का इस ओर ध्यान नहीं गया और न कभी ऐसी किसी योजना को मूर्त्त रूप दिये जाने का संकल्प ही व्यक्त किया गया। क्योंकि अधिकाश विद्वानों एवं साहित्यकारों को हिन्दी जैन साहित्य की विशालता की ही जानकारी प्राप्त नहीं है।

स्थापना—इसलिए सन् १९७९ वर्ष के अन्तिम महिनों में जयपुर के विद्वान् मित्रों के सहयोग से 'श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी' सस्था की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख उद्देश्य पञ्चवर्षीय योजना बनाकर समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इन भागों में ९० से अधिक प्रमुख जैन कवियों का विस्तृत जीवन परिचय, उनकी कृतियो का मूल्यांकन एवं प्रकाशन का निर्णय लिया गया। हिन्दी जैन साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार २० भाग प्रकाशित किये जावेंगे—

प्रकाशन योजना :

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति (प्रकाशित)
२. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि (प्रकाशित)
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं भ० प्रतापकीर्ति (प्रकाशनाधीन)
४. कविवर वीरचन्द एवं महिचन्द
५. विद्याभूषण, ज्ञानसागर एवं जिनदास पाण्डे
६. ब्रह्म यशोधर एवं भट्टारक ज्ञानभूषण
७. भट्टारक रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र एवं समयसुन्दर
८. कविवर रूपचन्द, जगजीवन एवं ब्रह्म कपूरचन्द

९. महाकवि भूधरदास एवं बुलाकीदास
१०. जोधराज गोदीका एवं हेमराज
११. महाकवि द्यानतराय एवं आनन्दघन
१२. पं० भगवतीदास एवं भाउ कवि
१३. कविवर खुशालचन्द काला एवं अजयराज पाटनी
१४. कविवर किशनसिंह, नथमल बिलाला एवं पाण्डे लालचन्द
१५. कविवर बुधजन एवं उनके समकालीन कवि
१६. कविवर नेमिचन्द्र एवं हर्षकीर्त्ति
१७. भैय्या भगवतीदास एवं उनके समकालीन कवि
१८. कविवर दौलतराम एवं छत्तदास
१९. मनराम, मथा साहू एवं लोहट कवि
२०. २० वीं शताब्दी के जैन कवि

उक्त २० भागों को प्रकाशित करने के लिए निम्न प्रकार एक पञ्चवर्षीय योजना बनाई गयी है—

वर्ष	पुस्तक संख्या
१९७८	३
१९७९	४
१९८०	४
१९८१	४
१९८२	५
	२०

उक्त योजना के अन्तर्गत अब तक पांच भाग प्रकाशित हो जाने चाहिए थे लेकिन प्रारम्भिक एक वर्ष योजना के क्रियान्वय के लिए आर्थिक साधन जुटाने में लग गया और सन् १९७८ मे तीन पुस्तको के स्थान पर केवल एक पुस्तक महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का प्रकाशन किया जा सका। प्रस्तुत पुस्तक "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि" उसका दूसरा पुष्प है। इस वर्ष कम से कम दो भाग और प्रकाशित हो सकेंगे।

आर्थिक पक्ष—अकादमी का प्रत्येक भाग कम से कम ३०० पृष्ठों का होगा। इस प्रकार अकादमी करीब ६ हजार पृष्ठों का साहित्य प्रथम पांच वर्षों में अपने सदस्यों को उपलब्ध करावेगी। पूरे २० भागों के प्रकाशन में करीब दो लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है। योजना का प्रमुख आर्थिक पक्ष उसके सदस्यों द्वारा प्राप्त शुल्क होगा।

सदस्यता—अकादमी के दो प्रकार के सदस्य होंगे जो संचालन समिति के सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य कहलायेंगे। संचालन समिति के सदस्यों की संख्या १०१ होगी जिसमें संरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं निदेशक के अतिरिक्त शेष सम्माननीय सदस्य होंगे। संचालन समिति का संरक्षक के लिए ५००१) रु०, अध्यक्ष एवं कार्यकारी अध्यक्ष के लिए २५०१) रु०, उपाध्यक्ष के लिए १५०१) रु० तथा निदेशक एवं सम्माननीय सदस्यों के लिए ५०१) रु० अकादमी को सहायतार्थ देना रखा गया है। विशिष्ट सदस्यों से २०१) रु० लिये जावेंगे। सभी सदस्यों को अकादमी द्वारा प्रकाशित होने वाले २० भाग भेंट स्वरूप दिये जावेंगे। अब तक अकादमी की सचालन समिति के पदाधिकारियों सहित ४५ सदस्यों तथा १२५ विशिष्ट सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि समाज मे साहित्य प्रकाशन की इस योजना का अच्छा स्वागत हुआ है।

पदाधिकारी अकादमी के प्रथम संरक्षक समाज के युवक नेता साहु अशोक कुमार जैन हैं जिनसे समाज भली भांति परिचित है। इसी तरह अकादमी के अध्यक्ष श्री सेठ कन्हैयालाल जी पहाडिया मद्रास वाले हैं जो अपनी सेवा के लिए उत्तर भारत से भी अधिक दक्षिण भारत मे अधिक लोकप्रिय हैं। उपाध्यक्ष के रूप में हमें अभी तक सात महानुभावों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। सभी समाज के जाने माने व्यक्ति हैं और अपनी उदार मनोवृत्ति तथा साहित्यिक प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। उपाध्यक्षों के नाम हैं: सर्व श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल, रेनवाल (जयपुर) श्री अजितप्रसाद जी जैन ठेकेदार (देहली), श्री कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर, श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्री पदमचन्द जी तोतूका जयपुर, श्री फूलचन्द जी विनायक्या डीमापुर, एवं श्री त्रिलोकचन्द जी कोठारी कोटा। इन सभी महानुभावों के हम आभारी हैं।

सहयोग—अकादमी के सदस्य बनाने के कार्य में सभी महानुभावों का सहयोग मिलता रहता है। इनमें सर्व श्री सुरेश जैन डिप्टी कलेक्टर इन्दौर, श्री मूलचन्द जी पाटनी बम्बई, डा० भागचन्द जैन दमोह, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर, श्रीमती कोकिला सेठी जयपुर, श्री गुलाबचन्द जी गंगवाल रेनवाल, प्रो० नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद, वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल एवं पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि जैसे-जैसे इसके भाग छपते जावेंगे इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि होती रहेगी। इस वर्ष के अन्त तक इसके कम से कम ३०० सदस्य बन जायें ऐसा सभी से सहयोग अपेक्षित है। सबके सहयोग के आधार पर ही अकादमी अपनी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना मे सफल हो सकेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रथम प्रकाशन पर अभिमत—साहित्य प्रकाशन के इस यज्ञ में कितने ही विद्वानों ने सम्पादक के रूप मे और कितने ही विद्वानों ने लेखक के रूप में अपना सहयोग देना स्वीकार किया है। अब तक ३० से भी अधिक विद्वानों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। अकादमी के प्रथम भाग पर राष्ट्रीय एवं सामाजिक सभी पत्रों में जो समालोचना प्रकाशित हुई है उससे हमे प्रोत्साहन मिला है। यही नहीं साहित्य प्रकाशन की इस योजना को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, एलाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज एवं आचार्य कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज जैसे तपस्वियों का आशीर्वाद मिला है तथा भट्टारक जी महाराज श्री चारुकीर्ति जी मूडविद्री, एवं श्रवणबेलगोला, भट्टारक जी महाराज कोल्हापुर, डा० सत्येन्द्र जी जयपुर, पंडित प्रवर कैलाशचन्द जी शास्त्री, डा० दरबारीलाल जी कोठिया, डा० महेन्द्रसागर प्रचडिया, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री एवं डा० हुकमचन्द जी भारिल्ल जैसे विद्वानों ने इसके प्रकाशन की प्रशसा की है।

भावी प्रकाशन—सन् १६७६ में ही प्रकाशित होने वाला तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं प्रतापकीर्त्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और उसे शीघ्र ही प्रेस मे दे दिया जावेगा। इसके लेखक डा० प्रेमचन्द रावका हैं। इसी तरह चतुर्थ पुष्प "महाकवि वीरचन्द एव महिचन्द" वर्ष के अन्त तक प्रकाशित हो जाने की पूरी आशा है।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को पजीकृत कराने की कार्यवाही चल रही है। जो इस वर्ष के अन्त तक पूर्ण हो जाने की आशा है।

अन्त में समाज के सभी साहित्य प्रेमियो से सादर अनुरोध है कि वे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के अधिक से अधिक सदस्य बन कर जैन साहित्य के प्रचार प्रसार में अपना योगदान देने का कष्ट करे। हमे यह प्रयास करना चाहिए कि ये पुस्तकें देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय में पहुँचें जिससे वहा और भी विद्यार्थी जैन साहित्य पर शोध कार्य कर सके। यही नही हिन्दी जैन कवियों को हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उचित स्थान भी प्राप्त हो सके।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एव प्रधान सम्पादक

अध्यक्ष की कलम से

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का द्वितीय पुष्प "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि" को पाठकों के हाथ में देते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके पूर्व गत वर्ष इसका प्रथम पुष्प "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" प्रकाशित किया जा चुका है। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि अकादमी के इस प्रथम प्रकाशन का सभी क्षेत्रों मे जोरदार स्वागत हुआ है और सभी ने अकादमी की प्रकाशन योजना को अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।

इस दूसरे पुष्प मे सवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ५ प्रमुख जैन कवियों का प्रथम बार मूल्यांकन एवं उनकी कृतियों का प्रकाशन किया गया है। इस प्रकार श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी समूचे हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के जिस उद्देश्य को लेकर स्थापित की गयी थी उसमें वह निरन्तर आगे बढ रही है। प्रथम पुष्प के समान इस पुष्प के भी लेखक एवं सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल हैं जो अकादमी के निदेशक भी हैं। डा० साहब ने बड़े परिश्रम पूर्वक राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो मे संग्रहीत कृतियों की खोज एवं अध्ययन करके उन्हें प्रथम बार प्रकाशित किया है। ४० वर्षों की अवधि में होने वाले ५ प्रमुख कवियों—ब्रह्म बूचराज, कविवर छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी जैसे जैन कवियों का विस्तृत परिचय, मूल्यांकन एव उनकी कृतियों का प्रकाशन आज अकादमी के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। ये ऐसे कवि हैं जिनके बारे मे हमें बहुत कम जानकारी थी तथा चतुरुमल एव गारवदास तो एकदम अज्ञात से थे। प्रस्तुत भाग मे डा० कासलीवाल ने पाच कवियों का तो विस्तृत परिचय दिया ही है साथ में १३ अन्य हिन्दी जैन कवियों का भी संक्षिप्त परिचय उपस्थित करके अज्ञात कवियों को प्रकाश मे लाने का प्रशसनीय कार्य किया है। वैसे तो श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना ही डा० कासलीवाल की सूझबूझ एवं सतत् साहित्य साधना का प्रतिफल है। डा० साहब ने अब तो अपना समस्त जीवन साहित्य सेवा में ही समर्पित कर रखा है यह हमारे लिए कम गौरव की बात नही है।

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को समाज द्वारा धीरे-धीरे सहयोग मिल रहा है लेकिन अभी हमें जितने सहयोग की अपेक्षा थी

उसे हम अभी तक प्राप्त नहीं कर सके हैं। अब तक संचालन समिति की सदस्यता के लिए ४५ महानुभावों की एव विशिष्ट सदस्यता के लिए १२५ महानुभावों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। हम चाहते हैं कि सन् १९७९ में इसके कम से कम १०० सदस्य और बन जावें तो हमे आगे के ग्रन्थों का प्रकाशन में सुविधा मिलेगी। अकादमी श्री साहु अशोककुमार जी जैन को संरक्षक के रूप मे पाकर तथा श्री गुलाबचन्द गगवाल रेनवाल, श्री अजितप्रसाद जैन ठेकेदार देहली, श्री सेठ कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्रीमान् सेठ पदमचन्द जी तोतूका जौहरी जयपुर, सेठ फूलचन्द जी साहब बिनायक्या डीमापुर एव त्रिलोकचन्द जी साहब कोठ्यारी कोटा, का उपाध्यक्ष के रूप मे सहयोग पाकर अकादमी गौरव का अनुभव करती है। इसलिए मेरा समाज के सभी साहित्य प्रेमियों से प्रार्थना है कि वे इस सस्था के संचालन समिति के सदस्य अथवा अधिक से अधिक सख्या मे विशिष्ट सदस्यता स्वीकार कर साहित्य प्रकाशन की इस अकादमी की असाधारण योजना के क्रियान्विति में सहयोग देकर अपूर्व पुण्य का लाभ प्राप्त करें।

इसी वर्ष हम कम से कम तृतीय एवं चतुर्थ पुष्प और प्रकाशित कर सकेंगे। तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एव भट्टारक प्रतापकीर्त्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसे हम अक्टूबर ७९ तक अवश्य प्रकाशित कर सकेंगे।

प्रस्तुत पुष्प के सम्पादक मण्डल के अन्य तीन सम्पादकों— डा० ज्योतिप्रसाद जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य, वाराणसी, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर का भी मै आभारी हूँ जिन्होंने डा० कासलीवाल जी को पुस्तक के सम्पादन में सहयोग दिया है। आशा है भविष्य मे भी उनका अकादमी को इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मद्रास

कन्हैयालाल जैन पहाड़िया

विषय-सूची

सम्पादकीय

भाषा निबद्ध पूजा-पाठों, स्तवन-विनती-पद-भजनों, छहढाला, समाधिमरण, जोगीरासा प्रभृति पाठों, पुराणों की तथा कई एक सैद्धान्तिक एवं चारणानुयोगिक ग्रन्थों की भाषा वचनिकाओं के नित्यपाठ, स्वाध्याय अथवा शास्त्र प्रवचनों में बहुत उपयोग के कारण वर्तमान शताब्दी ई० के प्राथमिक दशकों में, कम से कम उत्तर भारत के जैनी जन मध्योत्तर कालीन अनेक हिन्दी जैन कवियों एवं साहित्यकारों के नाम और कृतियों से परिचित रहते आये थे। किन्तु उस समय हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास की कोई रूपरेखा नहीं थी। कतिपय नाम आदि के अतिरिक्त पुरातन कवियों एवं लेखकों के विषय मे विशेष कुछ ज्ञात नहीं था। उनका पूर्वापर भी ज्ञात नहीं था। लोकप्रियता के बल पर ही उनकी रचनाओं का प्रचलन था। मुद्रणकला के प्रयोग ने भी वैसी रचनाओं के व्यापक प्रचार-प्रसार में योग दिया। किन्तु उक्त रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन नही हो पाया था। जैनेतर हिन्दी जगत् तो हिन्दी जैन साहित्य से प्राय: अपरिचित ही था, अत: समग्र हिन्दी साहित्य में उसका क्या कुछ स्थान है, यह प्रश्न ही नहीं उठा था। केवल 'मिश्रबन्धु विनोद' में कुछएक जैन कवियों का नामोल्लेख मात्र हुआ था।

जबलपुर में हुए सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन में स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने निबन्ध पाठ द्वारा हिन्दी जगत का ध्यान हिन्दी जैन साहित्य की ओर सर्वप्रथम आकर्षित किया। सन् १९१७ में वह निबन्ध "हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास" नाम से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो गया। शनै: शनै: हिन्दी साहित्य के इतिहासों एवं आलोचनात्मक ग्रन्थों में जैन साहित्य की ओर भी क्वचित संकेत किये जाने लगे। शास्त्र भण्डारों की खोज चालू हुई। हस्तलिखित प्रतियों के मुद्रण-प्रकाशन का क्रम भी चलता रहा। सन् १९४७ में स्व० बा० कामता प्रसाद जैन का 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' और सन् १९५६ में पं० नेमिचन्द्र शास्त्री का 'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन' (२ भाग) प्रकाशित हुए। विभिन्न शास्त्र भण्डारों की छानबीन और ग्रन्थ सूचियाँ प्रकाशित होने लगीं। अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर आदि पत्रिकाओं में हिन्दी के पुरातन जैन लेखकों और उनकी कृतियों पर लेख प्रकाशित होने लगे। परिणाम स्वरूप हिन्दी जैन साहित्य ने अपना स्वरूप और इतिहास प्राप्त कर लिया और अनेक विश्वविद्यालयों ने पी० एच० डी० आदि के

लिए की जाने वाली शोध-खोज के लिए इस क्षेत्र की क्षमताओं ए। सम्भावनाओं को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। गत दो दशकों में लगभग आधी दर्जन स्वीकृत शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं, तथा वर्तमान मे पचीसों शोध छात्र छात्राएँ हिन्दी जैन साहित्य के विविध अंगों या पक्षों पर शोध कार्य में रत हैं।

इस सब के बावजूद इस क्षेत्र में कई खटकने वाली कमियां अभी भी हैं, यथा—(१) हिन्दी के जैन साहित्यकारों की सूची अभी पूर्ण नही है—शोध खोज के फलस्वरूप उसमें कई नवीन नाम जोड़े जाने की सम्भावना है। (२) ज्ञात साहित्यकारों की भी सभी रचनाएँ ज्ञात नही हैं—उनमे वृद्धि होते रहने की सम्भावना है। (३) ज्ञात रचनाओं में से भी सब उपलब्ध नहीं है और उपलब्ध रचनाओं मे से अनेक अभी भीं अप्रकाशित हैं। (४) जो कृतियां प्रकाशित भी हैं उनमे से बहुभाग के सुसम्पादित स्तरीय संस्करण नहीं हैं। (५) सभी साहित्यकारों के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रमाणिक, विशद आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक प्रकाश डाला जाना अपेक्षित है। (६) रचनाओं का भी विस्तृत साहित्यिक एव समीक्षात्मक अध्ययन अपेक्षित है, और (७) महत्वपूर्ण जैन साहित्यकारो तथा उनकी प्रमुख कृतियों का उनके समसामयिक जैनेतर हिन्दी साहित्यकारो तथा उनकी कृतियो के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके उनका उचित मूल्याकन करने और समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका समुचित स्थान निर्धारित करने की आवश्यकता है।

प्रसन्नता का विषय है कि जयपुर के साहित्य प्रेमियो ने श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की है, जिसके प्राण सुप्रसिद्ध अनुसंन्धित्सु बन्धुवर डा० कस्तूरचद जी कासलीवाल हैं। उन्ही के उत्साहपूर्ण अध्यवसाय और श्लाघनीय सद्प्रयास से श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी उपरोक्त अभावों की बहुत कुछ पूर्ति में सलग्न हो गई प्रतीत होती है। उसका प्रथम पुष्प 'महाकवि ब्रह्म रायमल्ल और भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति" था, जिसमें उक्त दोनों साहित्यकारो के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रभूत प्रकाश डालते हुए उनकी रचनाओं को भी सुसम्पादित रूप मे प्रकाशित कर दिया है। प्रस्तुत द्वितीय पुष्प में १६ वीं शती ई० के पूर्वार्ध के पाच प्रतिनिधि कवियों—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास और ठक्कुरसी के व्यक्तित्व एवं कृतीत्व पर यथासम्भव विस्तृत प्रकाश डालते हुए और सम्यक् मूल्यांकन करते हुए उनकी सभीं उपलब्ध ४४ रचनाएँ भी प्रकाशित कर दी हैं। डा० कासलीवाल जी की इस अभूतपूर्व सेवा के लिए साहित्य जगत् चिरऋणी रहेगा। संवत् १५६१ से १६०० तक की अर्द्ध शती एक सन्धिकाल था। राजस्थान को छोडकर प्राय. सम्पूर्ण उत्तर भारत में मुस्लिम शासन था। उक्त अवधि में राजधानी दिल्ली से सिकन्दर और इब्राहीम लोदी, बाबर और हुमायुँ, मुगल तथा शेरशाह एवं सलीमशाह सूर ने क्रमशः शासन

किया । अपभ्रंश में साहित्य सृजन का युग समाप्त हो रहा था, और पिछले लगभग दोसौ वर्षों से जो हिन्दी शनैः-शनैः उसका स्थान लेती आ रही थी, उसने अपने स्वरूप को स्थैर्य बहुत कुछ प्राप्त कर लिया था । मुगल सम्राट अकबर का शासन अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था—उसके शासनकाल में ही हिन्दी जैन साहित्य का स्वर्णयुग प्रारम्भ हुआ जो अगले लगभग तीन सौ वर्ष तक चलता रहा ।

अस्तु इस ग्रन्थ मे चर्चित अपने युग के उक्त प्रतिनिधि कवियो का, न केवल हिन्दी जैन साहित्य के वरन् समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अपना एक महत्त्व है, जिसे समझने में अकादमी का यह प्रकाशन सहायक होगा । खोज निरन्तर चलती रहती है, और भावी लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखकों की उपलब्धियो के सहारे ही आगे बढते हैं । आशा है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की यह पुष्प शृंखला चालू रहेगी और हिन्दी जैन साहित्य के अध्ययन एवं समुचित मूल्यांकन की प्रगति में अतीव सहायक होगी । योजना की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामना है ।

ज्योतिप्रसाद जैन
दरबारीलाल कोठिया
मिलापचन्द शास्त्री

लेखक की ओर से

हिन्दी साहित्य कितना विशाल एवं विविध धरक है इसका अनुमान लगाना ही कठिन है। इस हिन्दी साहित्य को अंकुरित, पल्लवित एवं विकसित करने में जैन कवियों ने जो योगदान दिया है उसके शतांश का भी प्रकाशन एवं मूल्यांकन नहीं हो सका है। काव्य के विविध क्षेत्रों में उन्होंने जो अपनी लेखनी चलायी वह अद्भुत है। जैसे-जैसे वे अज्ञात कवि हमारे सामने आते जाते हैं हम उनके महत्व से परिचित होते जाते हैं तथा दांतों तले अंगुली दबाने लगते हैं।

प्रस्तुत पुष्प में संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ४० वर्षों के पांच प्रमुख कवियों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। ये कवि हैं—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी। वैसे इन वर्षों में और भी कवि हुए जिनकी संख्या १३ है। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रारम्भ में दिया गया है। लेकिन इन पांच कवियों को हम इन ४० वर्षों का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। इन कवियों में से गारवदास को छोडकर किसी ने भी यद्यपि प्रबन्ध काव्य नहीं लिखे किन्तु उस समय की मांग के अनुसार छोटे-छोटे काव्यों की रचना कर जन साधारण को हिन्दी की ओर आकर्षित किया। अभी तक इन कवियों के सामान्य परिचय के अतिरिक्त न उनका विस्तृत मूल्यांकन ही हो सका तथा न उनकी मूल रचनाओं को पढ़ने का पाठकों को अवसर प्राप्त हो सका। इसलिए इन कवियों द्वारा रचित सभी रचनाएँ जिनकी संख्या ४४ है प्रथम बार पाठकों के सम्मुख आ रही है। इनके अतिरिक्त इनमें से कम से कम १५ रचनाएँ तो ऐसी हैं जिनका नामोल्लेख भी प्रथम बार ही प्राप्त होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १५६१ से १६०० तक के काल को भक्ति काल माना है किन्तु जैन कवि किसी काल अथवा सीमा विशेष में नहीं बंधे। उन्होंने जन सामान्य को अच्छा से अच्छा साहित्य देने का प्रयास किया। ब्रह्म बूचराज रूपक काव्यों के निर्माता थे। उनका 'मयणजुज्झ' एवं 'संतोषजयतिलकु' दोनों ही सुन्दर एवं महत्वपूर्ण रूपक काव्य हैं। जिनका पाठक प्रस्तुत पुस्तक में रसास्वादन कर सकेंगे। इसी तरह बूचराज की "चेतन पुद्गल धमाल" उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में लिखी हुई बहुत ही उत्तम रचना है। चेतन एव पुद्गल के मध्य

जो रोचक वाद-विवाद होता है और दोनों एक-दूसरे को दोषी ठहराने का प्रयास करते हैं। कवि ने एक से एक सुन्दर युक्ति द्वारा चेतन एवं पुद्गल के पक्ष को प्रस्तुत किया है वह उसकी अगाध विद्वत्ता का परिचायक है साथ ही कवि के आध्यात्मिक होने का संकेत है। सारे जैन साहित्य मे इस प्रकार की यह प्रथम रचना है। इन तीन कृतियों के अतिरिक्त 'नेमीश्वर का बारहमासा' लिख कर कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जैन कवि जब वियोग शृगार काव्य लिखने बैठते हैं तो उसमें भी वे पीछे नही रहते। इसी तरह 'नेमिनाथ वसन्तु', 'टंडाणा गीत' एवं अन्य गीत हैं। अब तक कवि की ११ कृतियो का मैंने 'राजस्थान के जैन सन्त' मे उल्लेख किया था किन्तु बड़ी प्रसन्नता है कि कवि की आठ और कृतियो को खोज निकाला गया है और सभी के पाठ इसमे दिये गये हैं।

इस पुष्प के द्वितीय कवि हैं छीहल, जिनके सम्बन्ध में रामचन्द्र शुक्ल से लेकर सभी आधुनिक विद्वनों ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे चर्चा की है। छीहल कवि एक ओर "पंच सहेली गीत" जैसी लौकिक रचना करते है तो दूसरी ओर 'बावनी' जैसी विविध विषय परक रचना लिखने में सिद्धहस्त हैं। छीहल की 'पच सहेली गीत' रचना बहुत ही मार्मिक रचना है। प्रस्तुत पुष्प में हम छीहल की सभी छह रचनाओं को प्रकाशित कर सके हैं।

चतुरुमल तीसरे कवि हैं। कवि के अभी तक चार गीत एवं एक "नेमीश्वर को उरगानो" कृति मिल सकी है। ये ग्वालियर के निवासी थे। संवत् १५७१ मे निबद्ध 'नेमीश्वर का उरगानो' कवि की सुन्दर कृति है। अब तक चतुरु की केवल एकमात्र रचना का ही उल्लेख हुआ था लेकिन अब उसके चार गीत और प्राप्त हो गये हैं जो हमारे इस पुष्प की शोभा बढ़ा रहे है।

गारवदास हमारे चतुर्थ कवि हैं जिनकी एकमात्र रचना "यशोधर चौपई" अभी तक प्राप्त हो सकी है। लेकिन यह एक रचना ही उनकी अमर यशोगाथा के लिए पर्याप्त है। महाकवि तुलसी के रामचरित मानस के पूरे १०० वर्ष पूर्व चौपई छन्द में निबद्ध यशोधर चौपई हिन्दी की बेजोड रचना है। अभी तक गारवदास हिन्दी जगत् के लिये ही नहीं, जैन जगत् के लिए भी अज्ञात से ही थे। चौपई में ५४० पद्य हैं जिनमें कुछ संस्कृत एवं प्राकृत गाथाएँ भी हैं।

ठक्कुरसी इस पुष्प के पांचवें एवं अन्तिम कवि हैं। ठक्कुरसी ढूंढाहड प्रदेश के प्रमुख नगर चम्पावती के निवासी थे। इनके पिता घेल्ह भी कवि थे। इसलिए ठक्कुरसी को काव्य रचना की रुचि जन्म से ही मिली थी। ठक्कुरसी की अभी तक १५ रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें "मेघमाला कहा" अपभ्रंश की कृति है बाकी सब

राजस्थानी भाषा की कृतियां हैं। कवि की ७ रचनाओं के नाम तो प्रथम बार सुनने को मिलेंगे। कवि की पञ्चेन्द्रिय वेलि, नेमिराजमति वेलि एवं कृपण छन्द, पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी, सप्त व्यसन वेलि बहुत ही लोकप्रिय रचनाएँ हैं।

उक्त पांच प्रतिनिधि कवियों के अतिरिक्त संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले कविवर क्षिमलमूर्त्ति, मेलिग, पं० धर्मदास, ब्र० शुभचन्द्र, ब्रह्म यशोधर, ईश्वर सूरि, बालचन्द, राजहंस उपाध्याय, धर्मसमुद्र, सहजसुन्दर, पार्श्वचन्द्र सूरि, भक्तिलाभ एवं विनय समुद्र का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस प्रकार ४० वर्षों मे देश में करीब १८ जैन कवि हुए जिन्होंने जैन साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की।

इस प्रकार प्रस्तुत पुष्प में पाच कवियों का जीवन परिचय, उनकी कृतियों का मूल्यांकन एवं उनकी कृतियों के पूरे पाठ दिये गये हैं जिनकी संख्या ४४ है। ये सभी रचनाएँ भाषा एव शैली की दृष्टि से अपने समय की प्रमुख रचनाएँ हैं जिनमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी पक्षों के दर्शन होते हैं। सामाजिक कृतियों में 'पञ्च सहेली गीत', 'मयणजुज्झ', 'सन्तोष जयतिलकु', 'सप्त व्यसन वेलि' के नाम उल्लेखनीय हैं जिनमें तत्कालीन समाज की दशा का सजीव वर्णन किया गया है। 'कृपण छन्द' सुन्दर सामाजिक रचना है जिसमे एक कृपण व्यक्ति का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त उस समय की प्रचलित सामाजिक रीति रिवाज, जैसे सामूहिक ज्योनार, यात्रा सघ निकालना आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। राजनैतिक दृष्टि से 'पारसनाथ सकुन सत्तावीसी' का नाम लिया जा सकता है जिसमें मुस्लिम आक्रमण के समय होने वाली भगदड़, अशान्ति का वर्णन है। साथ ही ऐसे समय मे भी जिनेन्द्र भक्ति से ही अशान्ति निवारण की कल्पना ही नही अपितु उसी का सहारा लिया जाता था इसका भी उल्लेख मिलता है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का विशेषत: उसके संरक्षक, अध्यक्ष, उपाध्यक्षों तथा सभी माननीय सदस्यों का मैं पूर्ण आभारी हूं जिनके सहयोग के कारण ही हम प्रकाशन योजना में आगे बढ़ सके हैं। हिन्दी जैन कवियों के मूल्यांकन एवं उनकी मूल रचनाओ के प्रकाशन का यह प्रथम योजनाबद्ध प्रयास है। आशा है समाज के सभी महानुभावों की शुभकामनाओं एव आशीर्वाद से इसमें हम सफल होंगे।

मैं सम्पादक मण्डल के सभी तीनों विद्वान सम्पादकों—आदरणीय डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी सा० कोठिया वाराणसी एवं पं० मिलापचन्द जी सा० शास्त्री जयपुर का, उनके पूर्ण सहयोग के लिए आभारी हूं। डा० कोठिया सा० तो अकादमी की सचालन समिति के भी माननीय सदस्य हैं।

तीनों ही सम्पादकों का अकादमी की योजना को आशीर्वाद प्राप्त है तथा समय-समय पर उनसे सम्पादन के अतिरिक्त सदस्यता अभियान में सहयोग मिलता रहा है।

सम्पादन के लिए पाण्डुलिपियां उपलब्ध कराने में श्रीमान् केशरीलाल जी गंगवाल बूंदी का मैं पूर्ण आभारी हूं। जिन्होंने नागदी मन्दिर बूंदी का गुटका उपलब्ध कराकर ब्रह्म बूचराज की अधिकांश रचनाओं के सम्पादन से पूर्ण सहयोग दिया। इसी तरह श्री लूणकरण जी पाण्ड्या के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्द जी बागायत वाले, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरहपन्थी के व्यवस्थापक श्री प्रेमचन्द जी सोगानी, शास्त्र भण्डार मन्दिर गोधान के व्यवस्थापक श्री राजमल जी संघी तथा शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पाटोदियान के व्यवस्थापक श्री भंवरलाल जी बज तथा शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के व्यवस्थापक श्री अनूपचन्द जी दीवान का मैं पूर्ण आभारी हूं जिन्होंने पाण्डु-लिपियां उपलब्ध करवाकर उसके सम्पादन एव प्रकाशन मे योग दिया है। अजमेर के भट्टारकीय मन्दिर के श्री माणकचन्द जी सोगानी एडवोकेट का भी मै पूर्ण रूप से आभारी हूं जिन्होंने अजमेर के भट्टारकीय भण्डार से ग्रन्थ उपलब्ध कराये।

मैं श्रीमती कोकिला सेठी एम० ए० रिसर्च स्कालर का, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की 'शब्दानुक्रमणिका तैयार की, आभारी हूं। अन्त में मनोज प्रिंटर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्द जी जैन का आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक की अत्यन्त सुन्दर ढंग से छपाई की है।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

१

कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि

इतिहास

हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १५६० से संवत् १६०० तक के काल को किसी विशिष्ट नाम से सम्बोधित नहीं करके उसे भक्ति काल में ही समाहित किया गया है। इस भक्तिकाल में निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति इन दोनों की ही प्रधानता रही और दोनो ही धाराओं के कवि होते रहे। इस समय देश मे एक ओर अष्ट छाप के कवियों की सगुण भक्ति धारा की गंगा बह रही थी तो दूसरी ओर महाकवि कबीर की निर्गुण भक्ति का प्रभाव भी जन सामान्य पर छाया हुआ था। संवत् १५६० से १६०० तक के ४० वर्ष के काल में १५ से भी अधिक वैष्णव कवि हुए जिन्होंने अष्ट छाप की कविता के ढग पर कृष्ण भक्ति से ओतप्रोत कृतियों को निबद्ध किया। भक्ति धारा को प्रवाहित करने वाले ऐसे कवियों में नरवाहन (स० १५६५), हितकृष्ण गोस्वामी (सं० १५६७), गोपीनाथ (स० १५६८), विट्ठलदास (सं १५६८), अजबेम भट्ट (सं० १५६९), महाराजा केशव (सं० १५६९), मलिक मुहम्मद जायसी (स० १५९३), मंझन (स० १५९७), लालदास (सं० १५८५–८८), स्वामी निपट निरजन (सं० १५९५), गोस्वामी विट्ठलनाथ (स० १५९५), कृपाराम (सं० १५९८) के नाम उल्लेखनीय हैं।[1]

लेकिन इन ४० वर्षों मे जैन हिन्दी कवियों की सख्या जैनेतर कवियों से भी अधिक रही। मिश्र बन्धु विनोद ने ऐसे कवियों मे ईश्वरसूरि, छीहल, गारवदास जैन, ठक्कुरसी एवं बालचन्द ये पाच नाम गिनाये हैं।

"हिन्दी रासो काव्य परम्परा" में जिन जैन कवियों की रासा कृतियों का उल्लेख किया गया है उनमें उदयभानु, विमल मूर्त्ति, मेलिग, मुनि चन्द्रलाभ, सिवसुख सहजसुन्दर एवं पार्श्वचन्द्र सूरि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन उक्त जैन कवियों के अतिरिक्त भ० ज्ञानभूषण, ब्रह्म बूचराज, ब्रह्म यशोधर, भ० शुभचन्द्र, चतुरुमल,

---

१. विस्तृत परिचय के लिए देखिये मिश्रबन्धु विनोद पृष्ठ १३० से १५०।

धर्मदास, पूनो जैसे और भी प्रसिद्ध जैन कवि हुए, जिन्होंने हिन्दी भाषा में कितनी ही रचनाएँ निबद्ध की और उसके प्रचार प्रसार में अपना पूर्ण योग दिया। जैन कवि किसी काल विशेष की धारा मे नहीं बहे। वे जनरुचि के अनुसार हिन्दी में काव्य रचना करते रहे। प्रारम्भ में उन्होंने रास काव्य लिखे। रास काव्य लिखने की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से १७ वी शताब्दी तक चलती रही। १६ वीं शताब्दी के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध तक महाकवि ब्रह्म जिनदास अकेले ने पचास से भी अधिक रासकाव्यों की रचना करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। जैन कवि रास काव्यों के अतिरिक्त फागु, वेलि एव चरित काव्य भी लिखते रहे। सवत् १३५४ मे लिखित जिणदत्त चरित तथा सवत् १४११ मे निबद्ध प्रद्युम्न चरित जैसे काव्य इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है।

सवत् १५६० से १६०० तक का ४० वर्षो का काल लघु काव्यों की रचनाओ का काल रहा। इन वर्षों में होने वाले बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एवं गारवदास सभी ने छोटे-छोटे काव्य लिखकर जन सामान्य मे हिन्दी भाषा के प्रति रुचि जागृत की। इन वर्षों के जैन कवि दोनो ही वर्ग के रहे। यदि भट्टारक ज्ञानभूषण शुभचन्द्र, बूचराज: यशोधर एव सहजसुन्दर सन्त थे तो छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु जैसे कवि श्रावक थे। सभी कवि एक ही धारा मे बहे। उन्होने या तो उपदेशात्मक काव्य लिखे, नेमिराजुल मे सम्बन्धित विरहात्मक बारहमासा लिखे या फिर रूपक काव्य एव सवादात्मक काव्य लिखे। उन्होने मानव की बुराइयों की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। बावनियो के माध्यम से विविध विषयो की उनमे चर्चा की। यद्यपि इन ४० वर्षों मे सगुण भक्ति धारा का अधिक जोर था और उत्तर भारत मे उसने घर-घर में अपने पाव जमा लिए थे। लेकिन अभी जैन कवि उससे अछूते ही थे। उन्होने पद लिखना तो प्रारम्भ कर दिया था, लेकिन तीर्थंकर भक्ति मे वे इतने अधिक प्रवेश नही कर पाये थे। इसलिए इन वर्षो मे भक्ति साहित्य अधिक नही लिखा जा सका।

फिर भी चालीस वर्षों मे बूचराज, ठक्कुरसी, छीहल जैसे श्रेष्ठ कवि हुए। जिन्होने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य मे अपना स्थान बनाये रखा तथा आगे आने वाले कवियों के लिए मार्ग दर्शन का कार्य किया। प्रस्तुत भाग में ब्रह्म बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एव गारवदास का जीवन परिचय, मूल्याकन एवं उनके काव्य पाठ दिये जा रहे हैं। इसलिए उक्त कवियों के अतिरिक्त अवशिष्ट जैन कवियों का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

१. विमल मूर्ति

विमल मूर्ति कृत पुण्यसार रास संवत् १५७१ की रचना है ।[1] इसे कवि ने घूंघक नगर में समाप्त किया था । विमलमूर्ति आगमगच्छ के हेमरत्न सूरि के शिष्य थे ।[2] रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि—

केवल ज्ञान अलंकारी सेवइ अमर नरेस
सयल जनुं हितकारी जिणवाणी पमणेस
हेमसूरि गुरु बुझिविउ कुमारपाल भूपाल
जेह समु जगि को नही जीव दया प्रतिपाल

अन्त—

तसु सानिध्यइ ए अवकास
साभलता हुइ पुण्य प्रकास ।।८३।।

२. मेलिग

मेलिग कवि १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे । वे तपागच्छ के मुनि सुन्दरसूरि के शिष्य थे । उन्ही की आज्ञा से उन्होने प्रस्तुत रास की रचना की थी ।[3] संवत् १५७१ मे इन्होने 'सुदर्शन रास' की रचना अपने गुरु की आज्ञा से समाप्त की थी । सुदर्शन रास की एक प्रति पाटण के जैन भण्डार मे तथा एक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान मे सुरक्षित है ।[4]

---

१. संवत् पनर एकोतरइ पोस बदि इग्यारसि अंतरइ ।
घूंधकइ पुरि पास समध्य, सोमवार रचिउं अवध्य ।।८०।।
हिन्दी रासो काव्य परम्परा, पृष्ठ सं० १६१ ।

२. आगम गछ प्रकास दिणंद
श्री हेमरत्न गुरु सूरि गुणचन्द ।।८१।।
हिन्दी रासो काव्य परम्परा पृष्ठ सं० १६१

३. संवत पनर एकोतरइ एम्हा, जेठह वउपि विशुद्ध-सुणि ।
पुण्य नक्षत्र गुरु बारिसें ए. म्हा चरित्र ए पुहवि प्रसिद्ध सुणि ।।२२२।।

४. आदि भाग—पहिलउं प्रणमिसु अनुक्रमिइए जिणवर चुबीस ।
पछइ शासीन देवताए तहिं नामुं सीस ।

क्रमशः

३. पं० धर्मदास

पं० धर्मदास उन कवियों में से हैं जिनके साहित्य और जीवन से हिन्दी जगत अपरिचित सा है। हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास में भी इनका केवल नामोल्लेख ही हुआ है। धर्मदास का जन्म कब और कहां हुआ था इसका उल्लेख न तो स्वयं कवि ने ही अपनी रचना में किया है और न अन्यत्र ही मिलता है। लेकिन संवत् १५७८ वैशाख सुदि ३ बुधवार के दिन इन्होंने 'धर्मोपदेशश्रावकाचार' को समाप्त किया था।[1] इस आधार पर इनके जन्म काल का अनुमान किया जा सकता है। कवि की अभी तक एक ही रचना मिल सकी है। अतः यह सम्भव है कि उन्होंने यही एक रचना लिखी हो।

धर्मदास ने सम्पन्न घराने में जन्म लिया था। इनके वंशज दानी परोपकारी तथा दयावान थे। ये 'साहु' कहलाते थे। साहु शब्द प्राचीन काल में प्रतिष्ठित और धनाढ्य पुरुषों के लिए प्रयोग हुआ है तथा जो साहूकारी का कार्य करते थे वे भी साहू कहलाते थे। कवि के पिता का नाम रामदास और माता का नाम शिवी था। इनके पितामह का नाम 'पदम' था। ये विद्वान् तथा चतुर पुरुष समझे जाते थे। सज्जनता इसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। स्वयं विधाता ने ही मानों इनको परोपकारी बनाया था। देश-देश के बहुत से मित्र इनसे सभी प्रकारके कार्यों के लिए सलाह लिया करते थे। ये कवियों और विद्वानों को खूब सम्मान देते थे। कवि की वंशावली इस प्रकार है[2]—

समरीअ सामिणि सारदा सामिणि संभारु।
आगइ पालउ प्रतिपय कवितएं कारु ।।

अन्त भाग—शील प्रबन्ध जे सांभलिए ए म्हाः ते नर नारि धनधन्य सु।
सुदर्शन रिषि कवलीए म्हाः चउविह संघ सुप्रसन्न ।।२५।।

१. पन्द्रहसे अट्ठहत्तरि वरिसु सवच्छर कुसलह कन सरसु।
निर्मल वैशाखी अखतीज बुधवार गुनियहु आनोज ।।

२. जिन पय भत्तउ होरिल साहू. सो जु दान पूज कौ यवाहू।
तासु तू मनु सत्य जस गेहू, धर्मशील व्रत जानेहू।
तासु पुत्र जेठो करमसी, जिनमति सुमति जासु मन बसी।
दया आदि दे धर्म हि लीन. परम विवेकी पाप विहीन।

क्रमशः

हौरिल साहू
↓
करमसी
↓
पदम
↓
रामदास
↓
धर्मदास

धर्मदास को जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धान था। वह शुद्ध श्रावक था तथा श्रावक धर्म को जीवन में उतार लिया था। यद्यपि कवि गृहस्थ था। व्यापार करके आजीविकोपार्जन करता था फिर भी उसका अधिक समय शास्त्रों के पठन-पाठन में व्यतीत होता था।

जैनधर्म सेवै नित्त, अरु दहु लक्षण भाव पवित्त।
नित निर्ग्रन्थ गुरनि मांनउ, जिन आगम कहू पठउ सुंनहू।

धर्मोपदेशश्रावकाचार में दैनिक जीवन में जन साधारण के मन में उतारने योग्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण के अतिरिक्त आठ मद, दस धर्म, बारह भावना और सप्त व्यसन पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

कवि ने रचना में अपना कोई पांडित्य का प्रदर्शन नहीं करके साधारण भाषा में विषय का वर्णन किया है। शब्दों को तोड़ मरोड़ कर प्रयोग करने की आदत कवि में नहीं पायी जाती और न आलंकारिक भाषा मे पाठको के चित्त को उलझन में डालने की चेष्टा की गयी है।

पदम नाम ताकै भौ पूत, कवियनु वेवकु कला संजूत।
अवर बहुत गुन गहिर समान, महा सुमति अति चतुर सुजानु।
अरु सो सज्जनता गुण लीन, पर उपगारी विक्षमा कीन।
बहू मिन्त्री तस भर्जाव कोइ, सलह ही देस वेस की लोइ।
राम सिवी तसू तनिय कलत्त, परम सील वे पस्य पवित्र।
तासु उवर सुत उपनौ वेवि, जिनु तिजि पवचन धार्वहि ते वि।
जै को धर्म जिनुह सिरमनी, जिहि घर राम अवांगनी।
बयालीस जिनवर पय धुनी, पर पायो धनु धूलि सम गिनै।

संसारी जीव का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है जो युवावस्था में विलासिता में फंसा रहता है, इन्द्रियों ने जिस पर विजय प्राप्त करली है जिसका जीवन इन्द्रियों की लालसा तथा वासना को पूर्ण करने मे ही व्यतीत होता है। ऐसा मनुष्य संसारी कहलाने योग्य है उस मनुष्य को लौकिक जीवन के सुधारने में कभी सफलता नहीं मिलती ।

राग लीन जोबन महि रहे इन्द्री जिते परीसा सहै ।
ता कहू सिद्धि कदाचित होइ ससारी तिन जानहु सोइ ।।

पण्डित अथवा विवेकी मनुष्य वही है जो पुत्र, मित्र, स्त्री, धन आदि पर अनुचित मोह नही करता है तथा उनके उपयोग के अनुसार ही उन पर मोह करता है—

पुत्र, मित्र नारी धन धानु, बधु सरीर जु कुल असमान ।
अवरु प्रीय वस्तु अनुसरै ता पर राग न पण्डित करै ।

वेश्यागमन मनुष्य के लिए अति भयंकर है। वह उसे कर्त्तव्य मार्ग से विमुख कर देता है। इस जीवन को तो दुखमय बना ही देता है किन्तु पारलौकिक जीवन को भी दुख में डाल देता है। सच्चरित्र पुरुष वेश्या के पास जाते हुए डरते हैं। क्योंकि व्यसनो मे फसाना ही उसका काम होता है—

वेश्या सग धर्म को हरै, वेश्या सग नर्क को करै।
जाते होइ सुगति कौ भंगु, नहि ते तज नौ वेश्या सगु ।।

मनुष्य जीवन बार-बार नही मिलता। जो इस जीवन का सदुपयोग नही करता उसको अन्त मे पश्चाताप के सिवा कुछ नही मिलता। जैसे समुद्र मे फेंके गये माणक को फिर से प्राप्त करना मुश्किल है उसी प्रकार मनुष्य जीवन दुर्लभ है। लेकिन प्राप्त हुए मानव जीवन को व्यर्थ खोना सबसे बड़ी मूर्खता है। वह मनुष्य उस मूर्ख के समान है जो हाथ मे आये हुए माणक को कौए को उड़ाने मे फेंक देता है—

समुद माइ माणिक गिरि जाइ, बूडत उछरत हाथ चढाइ ।
पुनु सो काग उडावन काज, राख्यौ रतन मूढ वे काज ।
तेम जीव भव सागर माहि, पायो मानुस जन्म अनाहि ।

श्रेष्ठ मनुष्यों की सगति ही जीवन को उन्नत करती है। कुसंगति से मनुष्य व्यसनी बन जाता है। कुसगति से गुणी-निर्गुणी, साधु असाधु तथा धर्मात्मा पापी बन जाता है। यह उस दावानल के समान है जो हरे-भरे वन को जला कर राख कर देती है।

ज्वरी मांसाहारी जीव प्रबगनु, जिन्हि चोरी की भीव ।
पर तिय लीन करहि मद पान, तिन सौं सत्रुम दूजो आन ।
करै कुमित्र संगु जौ कोइ, गुनवन्तौ जो निर्गुण होइ ।
सूखं दाद संग ज्यौ हर्यौ दावानल महि पुनु सो पर्यो ।

इस प्रकार कवि समाज के शिक्षक के रूप में हमारे समक्ष आता है । उसने यह दर्शाया है कि गृहस्थी रहकर भी मानव अपने जीवन को उन्नत बना सकता है । उसे साधु सन्यासी बनने की आवश्यकता नहीं है ।

कवि की रचना मे ब्रजभाषा तथा अवधी भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है । इससे तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर उक्त दोनों भाषाओं का प्रभाव झलकता है । अलंकारिक भाषा न होते हुए भी उदाहरणों के प्रयोग से रचना सुन्दर बन गयी है ।

४. भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे । वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य प्रेमी, धर्म प्रचारक एव शास्त्रों के प्रबल विद्वान थे । इनका जन्म संवत् १५३०–४० के मध्य हुआ था । जब वे बालक थे तभी इनका भट्टारको से सम्पर्क हो गया । पहले इन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया । तत्पश्चात् व्याकरण एवं छन्द शास्त्र मे निपुणता प्राप्त की ।

संवत् १५७३ मे ये भट्टारक के सम्माननीय पद पर आसीन हो गये । इनकी कीर्ति धीरे-धीरे देश मे फैल गयी । ये राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब एवं उत्तर प्रदेश सभी प्रदेशों में लोकप्रिय बन गये । ये वक्तृत्व कला में पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे । इन्होंने जो साहित्य-सेवा की थी वह अभूतपूर्व एवं अद्वितीय है । भट्टारक के उत्तरदायित्व एवं सम्माननीय पद पर होते हुए भी इनका विशाल साहित्य सर्जन अनुकरणीय है ।

शुभचन्द्र ४० वर्षों तक भट्टारक पद पर रहे । चालीस वर्षों मे इन्होने संस्कृत की ४० रचनाएं एवं हिन्दी की ७ रचनाओं का सर्जन किया । हिन्दी रचनाओ मे "तत्वसार दूहा", "दान छन्द", "गुरु छन्द", "महावीर छन्द", नेमिनाथ छन्द, विजयकीर्ति छन्द एव अष्टाह्निका गीत के नाम उल्लेखनीय हैं । तत्वसार दूहा के अतिरिक्त सभी लघु कृतियां हैं । तत्वसार दूहा सैद्धान्तिक रचना है, जो जैन सिद्धान्त पर आधारित है । इसमें ९१ दूहे हैं । इसे श्रावक दुलहा के अनुरोध से लिखा था । महावीर छन्द में २७ पद्य हैं, इसी तरह विजयकीर्ति छन्द में २९ पद्य हैं । गुरु छन्द

में ११ तथा नेमिनाथ छन्द में २५ पद्य हैं।[1]

५. ब्रह्म यशोधर

ब्रह्म यशोधर का जन्म कब और कहाँ हुआ इस विषय में कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं होती। लेकिन एक तो ये भट्टारक सोमकीर्ति (संवत् १५२६ से १५४०) के शिष्य थे तथा दूसरी इनकी रचनाओं में संवत् १५८१ एवं १५८५ ये दो रचना-काल दिये हुए हैं इसलिए इनका समय भी सवत् १५४० से १६०० तक के मध्य तक निश्चित किया जा सकता है। इनकी रचनाओं वाला एक गुटका नैणवा (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हुआ है। उसमे इनकी बहुत सी रचनाए दी हुई हैं तथा वह इनके स्वयं के हाथ का लिखा हुआ है।

अब तक कवि के नेमिनाथ गीत (तीन) मल्लिनाथ गीत, बलिभद्र चौपई के अतिरिक्त अन्य कितने ही गीत उपलब्ध हुए हैं, जो विभिन्न शास्त्र भण्डारों मे सग्रहीत हैं। बलिभद्र चौपई इनकी सबसे बड़ी कृति है जो १८९ पद्यो मे समाप्त होती है। कवि ने इसे संवत् १५८५ मे स्कन्ध नगर के अजितनाथ के मन्दिर मे पूरी की थी। कवि की सभी रचनाएं भाव भाषा एवं शैली की दृष्टि से उच्चस्तरीय रचनाएं हैं।[2]

६. ईश्वर सूरि

ये शान्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी एकमात्र कृति 'ललिताङ्ग चरित्र' का उल्लेख मिश्रबन्धु ने किया है।[3] ललिताङ्ग चरित्र का रचना काल सवत् १५६१ है।

सालकार समत्थं सच्छन्दं सरस सुगुण सजुत्त।
ललियग कम चरियं ललणा ललियव निसुणेह।
महि महति मालव देस घण कणय लच्छि निवेस।
तिह नयर मांडव दुग्ग महि नवउ जाणकि सग्ग।
नव रस विलास उल्लोल नवगाह गेह कलोल।
निज बुद्धि बहुअ बिनाणि, गुरु धम्म कफ बहु जाणि।

---

१. कवि का विस्तृत परिचय के लिए देखिये लेखक की कृति "वीर शासन के प्रभावक आचार्य"—पृष्ठ संख्या १७८ से १८८ तक।

२. विशेष परिचय के लिए लेखक की कृति—'राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पृष्ठ संख्या ८३ से ९२।

३. मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ संख्या १३४।

इम पुण्य चरिय संबन्ध ललियंग नृप संबंध ।
पढ़ पास चरियह चित्त उद्धरिय एह चरित्त ॥

७. बालचन्द्र

इन्होंने संवत् १५८० में राम-सीता चरित्र की रचना की थी ।[1]

८. राजशील उपाध्याय

खतरगच्छ के साधु हर्ष के शिष्य थे । इन्होंने संवत् १५६३ में चित्तौड़ नगर में 'विक्रम चरित्र चौपई' की रचना की थी । रचना काल एवं रचना स्थान का वर्णन निम्न प्रकार दिया हुआ है ।[2]

पनरसइ त्रिसठी सुविचारी जेठ मासि उज्जल पाखि सारी ।
चित्रकूट गढ तास मझाई भणता भवियण जय जयकारी ।

९. वाचक धर्मसमुद्र

धर्मसमुद्र वाचक विवेकसिंह के शिष्य थे । अब तक इनकी निम्न रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं[3]—

सुमित्रकुमार रास	—	संवत् १५६७
गुणाकर चौपई	—	संवत् १५७३
कुलध्वज कुमार	—	संवत् १५८४
सुदर्शन रास	—	
सज्झाय	—	

१०. सहजसुन्दर

ये उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य थे । संवत् १५७० से १५९६ तक लिखी हुई इनकी २० रचनायें प्राप्त होती हैं । इनमें इलातीपुत्र सज्झाय, गुणरत्नाकर छन्द (सं० १५७२), ऋषिदत्ता रास, आत्मराज रास के नाम उल्लेखनीय है ।

११. पार्श्वचन्द्र सूरि

पार्श्वचन्द्र सूरि का राजस्थानी जैन कवियों में उल्लेखनीय स्थान है । इन्हीं के नाम से पार्श्वचन्द्र गच्छ प्रसिद्ध हुआ था । ९ वर्ष की आयु में ये मुनि बन गए ।

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ संख्या १४४ ।
२. राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ संख्या १३२ ।
३. राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ संख्या १७३ ।

गहन अध्ययन के पश्चात् १७ वर्ष की आयु में ये उपाध्याय बन गये । जब २८ वर्ष के थे तो ये आचार्य पद से सम्मानित किये गये । साहित्य निर्माण में इन्होंने गहन रुचि ली और पर्याप्त सख्या मे ग्रन्थ निर्माण करके एक कीर्तिमान स्थापित किया । इनकी भाषा टीकायें प्रसिद्ध हैं जिनमे राजस्थानी गद्य के दर्शन होते हैं ।[1] सवत् १५९७ मे इन्होंने वस्तुपाल तेजपाल रास की रचना समाप्त की थी ।[2]

१२. भक्तिलाभ एव चारुचन्द्र

भक्तिलाभ एव चारुचन्द्र दोनो गुरु शिष्य थे । राजस्थानी भाषा मे इन्होने कितने ही स्तवन लिखे थे । ये संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे । चारुचन्द्र ने सवत् १५७२ मे बीकानेर मे उत्तमकुमार चरित्र की रचना की थी ।[3]

१३. वाचक विनयसमुद्र

ये उपकेशीय गच्छ वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे । अब तक इनकी ३० रचनाए उपलब्ध हो चुकी है जिनका रचना काल सवत् १५८३ से १६१४ तक का है । इनकी विक्रम पचदड चौपई (स० १५८३) आराम शोभा चौपई (स० १५८३) अम्बड चौपई (स० १५९९) मृगावती चौपई (स० १६०२) पद्मावती रास (स० १६०४) पद्म चरित्र (स० १६०४) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।[4]

उक्त कवियो के अतिरिक्त इन ४० वर्षो मे और भी जैन कवि हुये है जिन्होने हिन्दी में विपुल साहित्य का निर्माण किया था । देश के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे ऐसे कवियो की खोज जारी है ।

ब्रह्म बूचराज

कविवर ब्रह्म बूचराज विक्रम की १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे । वे भट्टारकीय परम्परा के साधु थे तथा ब्रह्मचारी पद को सुशोभित करते थे । कवि ने अपना सबसे अधिक जीवन राजस्थान मे ही व्यतीत किया था और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बराबर विहार करके यहाँ की साहित्यिक जाग्रति मे अपना योग दिया था । रूपक काव्यो के निर्माण मे उन्होने सबसे अधिक रुचि ली साथ ही जन सामान्य मे अपने काव्यो के माध्यम से आध्यात्मिकता का प्रचार प्रसार किया ।

---

१ राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३ ।

२ हिन्दी रासो काव्य परम्परा-पृष्ठ १९६-९७ ।

३. राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३ ।

४. विस्तृत परिचय के लिए—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल—पृष्ठ ६६-७६.

ब्रह्म बूचराज भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य थे।[1] जो अपने समय के सम्माननीय भट्टारक थे। वे सकलकीर्ति जैसे भट्टारक के पश्चात् भट्टारक पद पर विराजमान हुए थे। बूचराज ने भुवनकीर्ति गीत में भट्टारक रत्नकीर्ति का भी उल्लेख किया है जिससे जान पड़ता है कि कवि को अपने अन्तिम समय में कभी-कभी भट्टारक रत्नकीर्ति के पास रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। इसीलिए उन्होंने भुवनकीर्ति गीत में 'बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ संगु कलिया सुरतरो" रत्नकीर्ति के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है।

कवि राजस्थानी विद्वान थे। लेकिन इनका पर्याप्त समय पंजाब के नगरों मे व्यतीत हुआ था। इन्होंने स्वयं अपने जन्म-स्थान, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, आयु आदि के बारे में कुछ भी परिचय नही दिया। इनकी अधिकांश रचनाएँ राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में ही उपलब्ध हुई है। इसलिए इन्हे राजस्थानी विद्वान् कहा जा सकता है। इन्होंने अपनी दो रचनाओं मे रचना संवत् का उल्लेख किया है। जो संवत् १५८६ एव संवत् १५६१ है। सवत् १५८६ मे रचित मयणजुज्झ में इन्होंने न किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया है और न किसी व्यक्ति विशेष का परिचय दिया। इसी तरह संवत् १५६१ मे रचित 'संतोष जय तिलकु' मे केवल हिसार नगर में काव्य रचना समाप्त करने का उल्लेख किया है। अत. वश एवं माता-पिता का परिचय प्रस्तुत करना कठिन है।

बूचराज का प्रथम नामोल्लेख संवत् १५८२ की एक प्रशस्ति में मिलता है। यह प्रशस्ति 'सम्यकत्व कौमुदी' के लिपि कर्त्ता द्वारा लिखी हुई है। उसमे भट्टारक प्रभाचन्द्र देव के आम्नाय का, चम्पावती (चाकसू, जयपुर) नगर का, वहाँ के शासक महाराजा रामचन्द्र का उल्लेख किया गया है। चम्पावती के श्रावक खण्डेलवाल वशीय साह गोत्र वाले साह काधिल एवं उनके परिवार के सदस्यों ने सम्यक्त्व कौमुदी की प्रति लिखवाकर ब्रह्म बूचराज को प्रदान की थी। इससे ज्ञात होता है कि संवत् १५८२ में कवि चम्पावती मे थे। वहा मूल संघ के भट्टारकों का जोर था और ये भी उन्ही के सघ मे रहते थे।[2] चम्पावती उस समय भट्टारक प्रभाचन्द्र

---

१. श्री भुवनकीर्ति चरण प्रणमोहू सखी आज बधावहो। भुवनकीर्ति गीत

२. सवत् १५८२ वर्षे फाल्गुन सुदी १४ शुभदिने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नंद्याम्नाये श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि-देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्र देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे

क्रमशः

एव ब्रह्मचारी शिष्यों का केन्द्र थी। इसी संवत् में राजवार्तिक जैसे ग्रन्थ की प्रति करवाकर ब्रह्म लाल को दी गयी थी।[1] संवत् १५७५ से १५८५ तक जितनी प्रशस्तियाँ हमारे सग्रह में उपलब्ध होती है उन सभी के ग्रन्थ किसी न किसी भट्टारक अथवा उनके शिष्य, ब्रह्मचारी या साधु को भेंट किये गये थे। उस समय बूचराज की भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रिय शिष्यों में गिनती थी। इनकी सम्भवतः वह साधु बनने की प्रारम्भिक अवस्था थी। भट्टारक संघ में संस्कृत एवं प्राकृत के ग्रन्थों का अध्ययन चलता था। इसीलिए भट्टारक प्रभाचन्द्र अपने शिष्यों के पठनार्थ ग्रन्थों की प्रतियाँ भेंट स्वरूप प्राप्त करते रहते थे।

चाटसू (चम्पावती) से इनका विहार किधर हुआ इसका स्पष्ट निर्देश तो नहीं किया जा सकता लेकिन सवत् १५८९ में ये राजस्थान के किसी नगर में थे। वही रहते हुए इन्होंने अपनी प्रथम कृति 'मयणजुज्झ' को समाप्त की थी। यह अपभ्रंश प्रभावित कृति है।

सवत् १५९१ में वे हिसार पहुँच गये और वहाँ हिन्दी में इन्होंने 'संतोषजय-तिलकु' की रचना समाप्त की। उस दिन भादवा सुदी पंचमी थी। पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन था। बूचराज ने अपनी कृति दशलक्षण पर्व मे स्वाध्याय के लिए समाज को समर्पित की। संवतोल्लेख वाली कवि की यह दूसरी व अन्तिम कृति है। इस कृति के पश्चात् कवि की जितनी भी शेष कृतियाँ प्राप्त हुई है उनमें किसी मे सवत् दिया हुआ नही है।

हस्तिनापुर गमन

कवि ने अपने एक गीत मे हस्तिनापुर के मन्दिर एव शान्तिनाथ स्वामी के मन्दिर का वर्णन किया है तथा वहाँ पर होने वाले कथा पाठ का उल्लेख किया है। इससे मालूम पड़ता है कि कवि हस्तिनापुर दर्शनार्थ गये थे।

भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तदाम्नाये चपावती नामनगरे महाराव श्री रामचन्द्रराज्ये खंडेलवालान्वये साह गोत्रे संघभार धुरंधर सा० काजिल भार्या काजलदे तस्य पुत्र जिनपूजापुरन्दर सा० गूजर भार्या प्रथम लाछी तृतीय। सरो..........एतान् इव शास्त्र कौमुदी लिखाप्य कर्मक्षय निमित्त ब्रह्म बूचाय दत्तं।

(प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डा० कासलीवाल पृष्ठ, ६३)

१. देखिये प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० ५४।

कृतियाँ

उक्त दोनों कृतियों सहित बूचराज की अब तक निम्न रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं—

१. मयणजुज्झ
२. सन्तोष जयतिलकु
३. बारहमासा नेमीस्वर का
४ चेतनपुद्गल धमाल
५. नेमिनाथ बसंतु
६ टंडाणा गीत
७ भुवनकीर्ति गीत
८. नेमि गीत
९. विभिन्न रागों में निबद्ध ११ गीत एवं पद

इस प्रकार कवि की अब तक १९ कृतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं जो भाषा, शैली एव भावों की दृष्टि से हिन्दी की अच्छी रचनाएं हैं। कवि के पदो पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रभाव है जिससे मालूम पड़ता है कि कवि पंजाबी भाषा भाषी भी थे।

विभिन्न नाम

कविवर बूचराज के और भी नाम मिलते हैं। बूचराज के अतिरिक्त ये नाम हैं बूचा, वल्ह, वील्ह, बल्हव। कहीं-कहीं एक ही कृति मे दोनों प्रकार के नामो का प्रयोग हुआ है। इससे लगता है कि बूचराज अपने समय के लोकप्रिय कवि थे और विभिन्न नामों से जन सामान्य को अपनी कविताओं का रसास्वादन कराया करते थे। वैसे उनका बूचा अथवा बूचराज सबसे अधिक लोकप्रिय नाम रहा था।

समय

कवि के समय के बारे में निश्चित तो कुछ भी नही कहा जा सकता। लेकिन यदि उनकी आयु ७० वर्ष की भी मान ली जावे तो हम उनका समय संवत् १५३०–१६०० तक का निश्चित कर सकते हैं। आखिर संवत् १५९१ के बाद उन्होंने जितनी कृतियों को छन्दोबद्ध किया था उसमें कुछ वर्ष तो लगे ही होंगे। इसके अतिरिक्त ऐसा लगता है उन्होंने साहित्य लेखन का कार्य जीवन के अन्तिम १५–२० वर्षों में ब्रह्मचारी की दीक्षा लेने और संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश का गहरा अध्ययन करने के पश्चात् ही किया था।

कवि ने अपनी किसी भी कृति में तत्कालीन शासक का उल्लेख नहीं किया और न उनके अच्छे बुरे शासन के बारे में लिखा। जान पडता है कि उस समय देश में कोई भी शासक कवि को प्रभावित नही कर सका था इसलिए कवि ने उनका नामोल्लेख करने की आवश्यकता ही नही समझी।

मयणजुज्भ (मदन युद्ध)

मयणजुज्भ कवि की सवतोल्लेख वाली प्रथम रचना है। यह अपभ्रंश भाषा प्रभावित हिन्दी कृति है। हिन्दी अपभ्रंश का किस प्रकार स्थान ले रही थी यह कृति इसका स्पष्ट उदाहरण है। मदनयुद्ध एक रूपक काव्य है जिसमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं कामदेव के मध्य युद्ध होने पर भगवान ऋषभदेव की उस पर विजय बतलाई गयी है।

मदनयुद्ध कवि की प्रथम रचना है यह तो स्पष्ट नही कहा जा सकता क्योंकि उनकी अधिकाश रचनाओं मे रचना काल दिया हुआ नहीं हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि यह उनकी प्रारम्भिक रचना है जिसमे उन्होने अपभ्रश भाषा का प्रयोग किया है और इसके पश्चात् जब केवल हिन्दी की ही रचनाओ की माग हुई तो कवि ने अन्य रचनाओ में केवल हिन्दी का ही प्रयोग किया। इस काव्य का रचना काल सवत् १५८९ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा शनिवार है।[1] कृति मे रचना स्थान का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इस रूपक काव्य मे १५९ पद्य हैं। जो विभिन्न छन्दो मे निबद्ध है। इन छन्दों मे गाथा, रड मडिल्ल, दोहा, रगिका, षट्पद कवित्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भाषा की दृष्टि से हम इसे डिंगल की रचना कह सकते हैं। शब्दो पर जोर देने की दृष्टि से उन्हें युगलात्मक बनाया गया है। जैसे निर्वाण के लिए णिव्वाणि, पैदा होने के लिए उपज्जइ, एक के लिए इक्कु (१७) अधर्म के लिए अधम्म आदि इसके उदाहरण हैं। काव्य की कथा बडी रोचक एव शिक्षाप्रद है। कथा भाग का साराश निम्न प्रकार है।

कथा

प्रारम्भिक मगलाचरण के पश्चात् कवि ने कहा हैं कि काया रूपी दुर्ग में चेतन राजा निवास करते हैं। मन उनका मत्री है। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो उसकी स्त्रियाँ हैं। दोनों के ही एक-एक पुत्र उत्पन्न होता है जिनके नाम मोह एव

---

१. राइ विक्कम तणउ संवतु नवासिय पनरहसै सरद रुति आसवज बखाणिउ।
लिथि पडवा सुकलु पलु, सनि सुबारु कर नखित्त आणिउ॥
मयण जुज्भ

विवेक हैं। चेतन राजा से दोनों को ही बराबर स्नेह मिलता है। मोह के घर में माया रानी होती है जो जगत को सहज ही में फुसला लेती है। निवृत्ति विवेक को साथ लेकर नगर छोड़ देती है। वे दोनों आगे चलकर पुण्य नगर पहुँचते हैं जहाँ चेतन राजा राज्य करते थे। वहाँ उन दोनों को बहुत आदर दिया गया। सुमति का विवाह विवेक के साथ हो जाता है। विवेक का वहाँ राज्य हो जाता है।

इससे मोह को बहुत निराशा होती है। उसने पुण्य नगर में अपने चार दूत भेजे। उनमें से तीन तो वापिस चले आये केवल वहाँ कपट बचा जो सरोवर पर पानी भरने वाली महिलाओं के पास जाकर बैठ गया। नगर में ज्ञान जल सरोवर भरा हुआ था। वहाँ जो वृक्ष थे वे मानों व्रत रूप ही थे। उस पर जो पक्षी बैठते थे वे मानों रिद्धि रूप में ही थे। कपट ने साधु का वेष धारण करके नगर में प्रवेश किया। वहाँ उसने न्याय नीति का मार्ग देखा तथा इन्द्र लोक के समान सुख देखे। वहाँ से वह अधर्मपुरी पहुँचा तथा मोह से सब वृतान्त कह सुनाया।

अपने दूत द्वारा सब वृतान्त सुनकर उसे बड़ा विषाद हुआ और उसने शीघ्र ही रोष, झूठ, शोक सताप, संकल्प विकल्प, चिंता, दुराव, क्लेश आदि सभी को अपने दरबार मे बुलाया और निम्न वाक्य कहे—

करिवि सभा तब मोह मदु, इव चितइ मन माहि।
जब लग जीवइ विवेक इहु, तब लगु सुख हम नाहि ॥२३॥

मोह की बात सुनकर उसका पुत्र कामदेव उठा और उसने निवृत्ति के पुत्र विवेक को बाध कर लाने का वचन दिया। इससे सभी ओर प्रसन्नता छा गयी। साथ मे उसने कुमति, कुसील एव कुबुद्धि को साथ लिया।

कामदेव को अपनी विजय पर पूर्ण भरोसा था। सर्वप्रथम उसने बसन्त को भेजा। बसन्त के आगमन से चारों ओर वृक्ष एव लताए नवपल्लव एव पुष्पों से लद गयी। कोयल कुहू कुहू की मधुर तान छेडने लगी तथा भ्रमर गुंजार करने लगे। सुरभित मलयानिल, सुन्दर मधुर गीत एवं वीणा आदि वाद्यों के मधुर गीत सुनायी देने लगे। चारों ओर अजीब मादकता दिखाई देने लगी। मदनराज आ गये हैं यह चर्चा होने लगी। कामदेव ने बहुत से ऋषि मुनियों को तप से गिरा दिया। बड़े-बड़े योद्धा जिन्हें अब तक मदोन्मत्त हाथी एवं सिंह भी डरा नहीं सके थे वे सब कामदेव के वशीभूत होकर चारों खाने चित्त पड़ गये। इस प्रकार कामदेव सब पर विजय प्राप्त करता हुआ उस वन में पहुँचा जहाँ भगवान ऋषभदेव ध्यानस्थ थे।

वह धर्मपुरी थी। विवेक ने सयमश्री का विवाह आदिनाथ से कर दिया था। लेकिन जब उसने कामदेव का आगमन सुना तो शत्रु को पीठ दिखा कर भागने

की अपेक्षा लड़ना उचित समझा। मदन सब देशों पर विजय प्राप्त करके स्वच्छन्द विचरने लगा। नट व भाट उसकी जय जयकार कर रहे थे। पिशाच एवं गंधर्व गीत गा रहे थे। कामदेव जब विजय प्राप्त करके लौटा तो उसका अच्छा स्वागत हुआ। रति ने भी कामदेव का खूब स्वागत किया और उसको विजय पर बधाई दी। लेकिन साथ मे यह भी प्रश्न किया कि उसने कौन-कौन से देश पर विजय प्राप्त की है। इस पर कामदेव ने निम्न प्रकार उत्तर दिया—

> जिणि सकरू इंदु हरि बंभु, वासिग्ग पयालि जिसु।
> इंदु चंदु गहगण तारायण विद्याधर यक्ष सु गंधब्ब सहि देव गण इण।
> जोगी जंगम कापडी सन्यासी रस छंदि
> ले ले तपु वण महि दुडिय ते मइं घाले बंदि ॥६२॥

रति ने अपने पति कामदेव की प्रशंसा करते हुए कहा कि धर्मपुरी को अभी और जीतना है जहाँ भगवान का ऋषभदेव का साम्राज्य है। रति की बात सुनकर कामदेव को बहुत क्रोध आया और वह तत्काल धर्मपुरी को विजय करने के लिए चल पड़ा। उसने आदीश्वर को शीघ्र ही वश में करने की घोषणा की। कामदेव ने अपने साथी क्रोध, मोह, मान एवं माया सभी को साथ लिया और धर्मपुरी पर आक्रमण कर दिया। अपने विपुल हावभाव एव विलास रूपी शस्त्रो से उन्हे जीतने का उपक्रम किया।

दोनो ओर युद्ध के लिए खूब तैयारी की गयी तथा एक ओर सभी विकारों ने ऋषभदेव के गुणों पर आक्रमण कर दिया। अज्ञान ने ज्ञान को पछाड़ने का उपक्रम किया। मिथ्यात्व जैसे सुभट ने पूरे वेग से आक्रमण किया। लेकिन सम्यक्त्व रूपी योद्धा ने अपनी पूरी ताकत से मिथ्यात्व का सामना किया। जैसे सूर्य को देख-कर अन्धकार छिप जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व भी सम्यकत्व के सामने नहीं टिक सका। राग ने गरज कर अपना अस्त्र चलाया लेकिन वैराग्य ने इसके वार को वेकार कर दिया। मद ने अपने आठ साथियो के साथ ऋषभदेव पर एकसाथ आक्रमण किया लेकिन ऋषभदेव ने उन्हे मार्दव धर्म से सहज ही में जीत लिया। इसके पश्चात् माया ने अपना जाल फेंका और बाईस परिषहों ने एक साथ आक्रमण किया। लेकिन ऋषभदेव ने माया को आर्जव से तथा बाईस परिषहों को अपने 'धीरज' सुभट से सहज ही में जीत लिया। इसके पश्चात् 'कलह' ने पूरे वेग से अपना अधिकार जमाना चाहा लेकिन क्षमा के सामने वह भी भाग गया। जब मोह का कोई वश नहीं चला और वह मुख फेर कर चल दिया तो लोभ ने अपनी पूरी सामर्थ्य से विजय प्राप्त करना चाहा। उसका प्रभाव सारे विश्व मे व्याप्त है, कभी वह आगे बढ़ता और कभी पीछे हट जाता। लेकिन जब सन्तोष ने पूरे वेग से प्रत्याक्रमण किया तो वह ठहर नही सका। कुशील पर ब्रह्मचर्य ने विजय प्राप्त की।

ऋषभदेव ने कुमति को तो पहिले ही छोड़ दिया था इसलिए सुमति ही विवेक के साथ हो गयी। लेकिन मोह ने अपने सभी साथियों की हार सुनी तो उसकी आँखें लाल हो गयी तथा वह दांत पीसने लगा तथा अपने रौद्र रूप से उसने आक्रमण कर दिया। ऋषभदेव ने विवेक रूपी सुभट को बुलाया और स्वय अपूर्वकरण गुणस्थान में विचरने लगे। मोह की एक भी चाल नहीं चली और अन्त में वह भी मुख मोड़ कर चल दिया।

जब कामदेव ने मोह को भी भागते देखा तो वह अपनी पूरी सेना के साथ मैदान में उतर गया। लेकिन ऋषभदेव सयम रूपी रूप में सवार हो गये थे। तीन गुप्तियाँ उनके रथ के घोड़े थे। पंच महाव्रत एव क्षमा उनके योद्धा थे। ज्ञान रूपी तलवार को हाथ मे लेकर सम्यक्त्व का छत्र तान कर वे मैदान मे उतरे। रणभूमि से कामदेव के सहायक एक-एक करके भागना चाहा। लेकिन ऋषभदेव ने युद्ध भूमि का घेरा इतना तीव्र किया कि कोई भी वहाँ से भाग नही सका और सबको एक-एक करके जीत लिया गया। चारो कषायों को जीत लिया, मिथ्यात्व का पता भी नहीं चला। ऋषभदेव को कैवल्य होते ही देवो ने दुदुंभि बजानी प्रारम्भ कर दी तथा चारो दिशाओं में ऋषभदेव के गुणगान होने लगे।

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काव्य मे काम विकार एवं उसके साथियों पर जिस प्रकार गुणो की विजय बतलायी है वह अपने आप मे अपूर्व है। इस प्रकार के रूपक काव्यों का निर्माण करके जैन कवि अपने पाठकों को तत्कालीन युद्ध के वातावरण से परिचित भी रखते थे तथा उन्हे आध्यात्मिकता से दूर भी नही होने देते थे।

भाषा एव शैली

मयणजुज्झ यद्यपि अपभ्रंश प्रभावित कृति है लेकिन इसमें हिन्दी के शब्दों का एवं उसके दोहा एवं रड, षट्पद, वस्तुबंध एव कवित्त जैसे छन्दों का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि देशवासियों का मानस हिन्दी की ओर हो रहा था तथा वे हिन्दी की कृतियों के पढ़ने के लिए लालायित थे। हिन्दी का प्रारम्भिक विकास जानने के लिए मयण जुज्झ अच्छी कृति है।

कवि ने कुछ तत्कालीन प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। उसने सेना के स्थान पर फौज शब्द का[1] तथा तुरही के स्थान पर नफीरी का प्रयोग किया है।

---

१ ले फौज सब्बु संकहि करि, इव विवेक अहु आइयउ।

इससे पता चलता है कि कवि प्रचलित शब्दों के प्रयोग का मोह नहीं त्याग सका और उसने अपने काव्य को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके उनको भी अपनाने का प्रयास किया।

मयणजुज्झ की राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में कितनी ही प्रतियाँ संग्रहीत है। इनमें निम्न उल्लेखनीय हैं।

१. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर	गुटका स० २३२	पद्य स० १५८	लिपि सवत् १६१६
२. दि० जैन मन्दिर दीवानजी कामां[1]	,, ६	—	—
३. दि० जैन मन्दिर लश्कर, जयपुर	,, १६	—	—
४. दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी जयपुर[2]	,, २४२	—	लिपि स० १७०५
५. दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी, जयपुर	,, २७६	—	,, १७०७
६. महावीर भवन, जयपुर[3]	,, ४६	,, १५६	—
७ दि० जैन मन्दिर नागदी, बूंदी	१०४	१४२	—

२. सतोष जयतिलकु

बूचराज की यह दूसरी रचना है जिसमे उसने रचना समाप्ति का उल्लेख किया है। सतोष जयतिलकु का रचना काल सवत् १५६१ भाद्रपद शुक्ला ५ है अर्थात् मयण जुज्झ के ठीक २ वर्ष पश्चात् कवि ने प्रस्तुत कृति को समाप्त किया था।[4] दो वर्ष के मध्य मे कवि केवल एकमात्र रचना लिख सके अथवा अन्य लघु रचनाओं को भी स्थान दिया इसके सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी नही मिलती है। लेकिन कवि राजस्थान से पजाब चले गये थे यह अवश्य सत्य है। प्रस्तुत कृति को उन्होंने हिसार मे छन्दोबद्ध की थी। जैसा कि स्वयं कवि ने उल्लेख किया है

> सतोषह जय तिलउ जपिउ हिसार नयर मझ में।
> जे सुणहि भविय इक्क मनि ते पावहि वछिय सुक्ख ॥

सतोष जय तिलकु भी एक रूपक काव्य है जिसमे लोभ पर संतोष की विजय बतलायी

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची पंचम भाग पृष्ठ ६८४, १०८८, ११०६।
२ वही, द्वितीय भाग।
३ वही, प्रथम भाग।
४. संवति पनरइ इक्याणा भद्दवि सिय पक्खि पंचमी दिवसे।
सुक्कवारि स्वाति वृखे जेउ तह जाणि बंभणामेण ॥१२२॥

गयी है। मयरण जुज्झ में जिस प्रकार ऋषभदेव नायक एवं कामदेव प्रतिनायक है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य में संतोष नायक एवं लोभ प्रतिनायक है। ऐसा लगता है कि कवि आत्मिक विकारों की वास्तविकता को पाठकों के सामने प्रस्तुत करके उन्हें आत्मिक गुणों की ओर लगाना चाहता था तथा आत्मिक गुणों की महत्ता को रूपक काव्यों के माध्यम से प्रकट करना उसको अधिक रुचिकर प्रतीत होता था।

प्रस्तुत रूपक काव्य में १२३ पद्य हैं जो साटिक, रड़, गाथा षट्पद, दोहा, पद्धडी छंद, मडिल्ल, चंदाइरण छन्द, गीतिका छन्द, तोटक छन्द, रंगिका छन्द, जैसे छन्दों में विभक्त है। छोटे से काव्य में विभिन्न ११ छन्दों का प्रयोग कवि के छन्द ज्ञान की ओर तो प्रकाश डालता ही है साथ ही में तत्कालीन पाठकों की रुचि का भी हमें बोध कराता है कि पाठक ऐसे काव्यों का सगीत के माध्यम से सुनना अधिक पसन्द करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय सगुण भक्ति के गुणानुवाद से भी पाठक गरण ऊब चुके थे इसलिए भी वे अध्यात्म की ओर झुक रहे थे।

प्रस्तुत काव्य की संक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है।

मगलाचरण के पश्चात् कवि लिखता है कि भगवान महावीर का समवसरण पावापुरी मे आता है। भगवान की जब दिव्य ध्वनि नहीं खिरती तब इन्द्र गौतम ऋषि के पास जाता है और कहता है कि महावीर ने तो मौन धारण कर रखा है इसलिए "त्रैकाल्यं द्रव्य षटकं नव पद सहितं' आदि पद्य का अर्थ कौन समझा सकता है? तब गौतम तत्काल इन्द्र के साथ जाने को तैयार हो जाते हैं। जब वे दोनो महावीर के समवसरण मे स्थित मानस्तम्भ के पास पहुँचते हैं तो मानस्तम्भ को देखते ही गौतम का मान द्रवित हो जाता है।

देखत मानथंभो गलियउ तिसु मानु मनह मज्झमे।
हूवउ सरल पणामो पुछ गोइमु चित्ति सदेहो ।।१०।।

गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा कि स्वामी, यह जीव ससार मे लोभ के वशीभूत रहता है तो उसके बचने के क्या उपाय हैं? क्योंकि लोभ के कारण ही मानव प्राणिवध करता है, लोभ के कारण ही वह झूठ बोलता है। लोभ से ही वह दूसरों के द्रव्य ग्रहण करता है। सब परिग्रहों के संग्रह मे भी लोभ ही कारण है। जिस प्रकार तेल की बूंद पानी में फैल जाती है उसी प्रकार यह लोभ भी फैलता रहता है। एक इन्द्रिय के वश में आने से यह प्राणी इतने दुःख पाता है तो पांच इन्द्रियों के वशीभूत होने पर उसकी क्या दशा होगी, यह वह स्वयं जान सकता है। लोभी मनुष्य उस कीड़े के समान है जो मधु का सचय ही करता है उसका उपयोग नहीं करता है। क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन चारों मे लोभ ही प्रमुख है।

इसके साथ ही तीन अन्य कषायों का प्रादुर्भाव होता है। जैसे सर्प के गले में गरल विष संयुक्त होता है उसी प्रकार राग एवं द्वेष दोनों ही लोभ के पुत्र हैं। जहां राग सरल स्वभावी एवं द्वेष वक्र स्वभावी होता है। लोभ के इन दोनों पुत्रों ने सभी प्राणियों को अपने वशीभूत कर रखा है फिर चाहे वह योगी हो अथवा यति एवं मुनि हो। भगवान महावीर गौतम ऋषि से कहते हैं कि प्राणी को चारों गति मे डुलाने वाला यह लोभ ही है, इसलिए लोभ से बुरा कोई विकार नहीं है।

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से फिर प्रश्न किया कि लोभ पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है तथा किस महापुरुष ने लोभ पर विजय पायी है। इस प्रकार भगवान महावीर ने निम्न प्रकार कहा—

> सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु,
> यहु सासणु विम्मलइ, सुणतं धम्मु भव बंध तुट्टहि,
> अति सूषिम भेद सुणि, मनि सदेह खिण माहि मिट्टहि।
> काल अनंतिहि ज्ञान यहि कहियउ आदि अनादि।
> लोभु दुसहु इव जिज्जियइ सतोषहु परसादि॥४८॥

लेकिन गौतम ने भगवान से फिर निवेदन किया कि संतोष कैसे पैदा हो, उसके रहने का स्थान कौन सा है। किसके साथ होने से उसमे शक्ति आती है। उसकी कौन-कौन सी सेना दल है तथा संतोष सुभट कैसा है। जब तक ये सब मालूम नही होगा लोभ पर विजय प्राप्त करना सम्भव नही है।

महावीर स्वामी ने कहा कि आत्मा मे संतोष स्वाभाविक रूप से पैदा होता है तथा वह आत्मपुरी मे ही रहता है। धर्म की सेना ही उसका बल है। ज्ञान रूपी बुद्धि से उस पर विजय प्राप्त की जा सकती है। जिस प्राणि ने सतोष को अपने मे उतार लिया बस समझलो कि उसने जगत को ही जीत लिया। जिसके जितना अधिक संतोष होगा उसको उतना ही सुख प्राप्त हो सकेगा। संतोषी प्राणी में राग द्वेष की प्रवृत्ति नही होती तथा वह शत्रु मित्र मे समान भाव रखने वाला होता है। जिनके हृदय में संतोष है उनकी बुद्धि चन्द्रकला के समान होती है तथा उनका हृदय कमल खिल जाता है। संतोष एक चिंतामणि रत्न हैं जिससे चित्त प्रसन्न रहता हैं। वह कामधेनु के समान सबको वाछित फल देता रहता है। जहां सतोष है वहां सब सुख विद्यमान हैं। संतोष से उत्तम ध्यान होता है, परिणामों में सरलता आती है। वांछित सुखों की प्राप्ति होती है। संतोष से संवर तत्व की प्राप्ति होती है जिसके सहारे संसार को पार किया जा सकता है और अन्त में निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है।

इधर जब लोभ को संतोष की बात मालूम हुई तो वह बहुत कोधित हुआ और उसने संतोष को सदा के लिए समाप्त करने की घोषणा कर दी। उसने उस समय झूंठ को अपना प्रधान बनाया। क्रोध एवं द्रोह, कलह एवं क्लेश, पाप एवं संताप सभी को उसने एकत्रित किया। मिथ्यात्व, कुव्यसन, कुशील, कुमति, राग एवं द्वेष सभी वहाँ आ गये और इन सब को अपने साथ देखकर लोभ प्रसन्न हो गया। उसने कपट रूपी नगाड़ों को बजाया तथा विषय रूपी घोड़ों पर बैठकर संतोष पर आक्रमण कर दिया।

संतोष ने जब लोभ रूपी शत्रु का आक्रमण सुना तो उसे प्रसन्नता हुई। उसका सेनापति आत्मा वहीं आ गया और उसने अपनी सेना को भी वहीं बुला लिया। वहाँ १८००० अमरक्षकों के साथ शील सुभट आया। साथ में ही सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, पंच महाव्रत, क्षमा एवं संयम आदि सभी योद्धा वहाँ आ गये। वह अपने सैनिकों को लेकर लोभ से जा टकराया। जिन शासन की जय जयकार होने लगी तो मिथ्यात्व भागने लगा। जय जयकार की महाध्वनि को सुनकर ही कितने ही शत्रु पक्ष के योद्धा लडखड़ा गये। शील का चोला पहनकर रत्नत्रय के हाथी पर सवार होकर विवेक की तलवार लेकर सम्यकत्व रूपी छत्र पहनकर पद्म एवं शुक्ल लेश्या के जिस पर चंवर ढुल रहे थे, ऐसा संतोष राजा रण में लोभ से जा भिडा। उसने अपने दल के अन्दर अध्यात्म का संचार किया। जो शूरवीरों के हृदयों में जाकर बैठ गया। एक ओर लोभ छलकपट से अपनी शक्ति को तोलने लगा तथा दूसरी ओर संतोष ने अपने सुभटों मे सरलता एव निर्मलता के भाव भरे। इस पर दोनों ओर से चतुरगिनी सेना एकत्रित हो गयी। भेरी बजने लगी। तब लोभ ने अपने सैनिकों को सतोष के सैनिको पर आक्रमण करने के लिए ललकारा। संतोष ने लोभ से कहा कि ऐसा लगता है कि उसके सिर पर काल चढ़ गया है। उसके सब साथियों को मूढता सता रही है। जहाँ लोभ है वहाँ रात दिन यह प्राणी दुःख सहता रहता है। लेकिन जहाँ सतोष है वहाँ उसकी इन्द्र एव नरेन्द्र सेवा करते हैं। लोभ ने जगत में अभी तक सभी को सताया है तथा जगत में सभी को जीत रखा है, लेकिन आज संतोष का पौरुष भी देखे। यह सुनकर लोभ ने झूंठ को आगे भेजा। लेकिन संतोष ने सत्य को भेजा और उसने उसका सिर काट लिया। इसके पश्चात् मान को बीड़ा दिया गया और वह जब रणभूमि मे उतरा तो मार्दव ने उसका सामना किया और उसको बलहीन कर दिया। लेकिन फिर भी वह हटा नहीं तो महाव्रतों ने एक साथ उस पर आक्रमण कर दिया और क्षण भर में ही उसे परास्त कर दिया। अब मोह अपने प्रचण्ड हाथी पर बैठ कर आगे बढ़ा। मोह को देखकर विवेक उठा और उसे रणभूमि में से भागने

पर मजबूर कर दिया। माया ने विविध रूप धारण कर लिया और यह समझा कि उससे लड़ने की किसी मे शक्ति नही है। लेकिन आर्जव ने उसे सहज में ही जीत लिया। क्रोध को क्षमा से तथा मिथ्यात्व को सम्यकत्व से जीत लिया गया। आठ कर्मों के प्रखर प्रहार को तप से जीतने में सफलता प्राप्त की। अन्य जितने भी छोटे-छोटे योद्धा थे उनकी एक भी नही चली और उन्हें युद्ध भूमि में ही सुला दिया। लोभ अपने सभी साथियों को युद्ध भूमि में खेत हुआ देखकर माथा धुनने लगा।

लोभ गरज कर अपने हाथी पर सवार हुआ। कपट का उसने छत्र लगाया तथा विषयो की तलवार को हाथ मे ली। लेकिन सामने दसवें गुणस्थान में चढे हुए तपस्वी विराजमान थे। लोभ पूरे विकट स्वभाव मे था। कभी वह बैठता, कभी वह उठता, कभी आकाश में और कभी पृथ्वी पर अपना जाल फैलाने लगता। वह अपने विभिन्न रूप धारण करता। लोभ का रूप ऐसी अग्नि की कणी के समान लगने लगा जो, क्षण भर मे ही सारे जंगल को जला डालती है।

लोभ का सामना करने के लिए सतोष आगे बढा। दसवें गुणस्थान से आगे बढकर शुक्ल ध्यान मे विचरने लगा। अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया और केवल ज्ञान प्रकट हुआ। जिन वचनो को चित्त मे धारण कर संतोष ने लोभ पर विजय प्राप्त की। तेरह प्रकार के व्रतो को, बारह प्रकार के तप को अपने मे समाहित कर लिया।

सतोष की विजय के उपरान्त देवगण दुदुंभि बजाने लगे। ग्यारह अग और चौदह पूर्व का ज्ञान प्रकट हो जाने से मिथ्यात्वियों का गर्व गल गया और चारो ओर आत्मा की जय जयकार होने लगी।

भाषा

प्रस्तुत कृति की भाषा यद्यपि मयणजुज्झ से अधिक परिस्कृत है लेकिन फिर भी वह अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त नही हो सकी है। बीच-बीच मे गाथाओं का प्रयोग हुआ है। शब्दो को उकारान्त बनाकर प्रयोग करने मे कवि को अधिक रुचि दिखलायी देती है।

कवि नाम

कवि ने प्रस्तुत कृति मे अपना नाम 'वल्हि' लिखकर रचना समाप्त की है।[1]

---

१. यहु संतोषहु जय तिलउ जंपइ वल्हि सभाइ।

३. बारहमासा नेमीस्वरका

नेमि राजुल को लेकर प्रायः प्रत्येक जैन कवि किसी न किसी कृति की रचना करता रहा है। हमारे कवि बूचराज ने भी नेमीस्वर का बारहमासा लिखकर इस परम्परा को जीवित रखा। यह बारह मासा श्रावण मास से प्रारम्भ होकर आषाढ़ मास तक चलता है। इसमें रागु वड़हंसु के १२ पद्य हैं जिनमें एक-एक महिने का वर्णन किया गया है। राजुल की विरह वेदना तथा नेमिनाथ के तपस्वी जीवन के प्रति जो उसकी अप्रसन्नता थी वह सब इन पद्यो मे व्यक्त की गयी है।

इसमें न तो रचना काल दिया हुआ है और न रचना स्थान। इससे कृति का निश्चित समय नहीं दिया जा सकता है। फिर भी भाषा एव शैली की दृष्टि से रचना सवत् १५६१ के पश्चात् किसी समय लिखी गयी थी। इसमे कवि ने अपना नाम 'बूचा' कह कर उल्लेख किया है।[1]

बारह मासा सावण माम से प्रारम्भ होता है। सावण मे राजुल नेमिनाथ से अन्यत्र गमन न करने का आग्रह करती है तथा कहती है कि उनके अभाव मे उसका शरीर क्षण क्षण छीज रहा है। जब आकाश में बिजली चमकती है तो उसका विरह असह्य हो जाता है। जब मोर कुह कुह की आवाज करते हैं उस समय नेमि की याद आती है। इसलिए वह सावण मास मे अन्यत्र गमन न करने की प्रार्थना करती है।[2]

कार्तिक का महिना जब आता है तो राजुल हाथों मे दीपक लेकर अपने महल पर चढ़कर नेमिनाथ का मार्ग खोजती है। उसकी आँखें आसुओं से भर जाती हैं। वे दशों दिशाओं की ओर दौड़ती हैं। सरोवर पर सारस पक्षी के जोड़े को देखकर वह कहती है कि नवयौवना एवं तरुणी बाला ऐसे समय मे अपने पति के विरह में कैसे जीवित रह सकती है। इसलिए वह नेमिनाथ से कार्तिक के महिने में वापिस आने की प्रार्थना करती है।

---

१. आषाढ़ चडिया भणइ बूचा नेमि अजउ न आईया।

२. ए रुति सावणे सावणि नेमि जिण गवणो न कीजै वे।
सुणि सारंगा भाव दुसह तनु खिणु खिणु छीजै वे।
छीजंति बाढ़ी विरह व्यापित घुरइ घण मइ मंतिया।
सालूर सरि रड रडहि निसि भरि रयणि बिजु खिवंतिया।
सुरगोपि बहु सुह बसुह मंडल मोर कुह कुहि वणि वणि।
विनवंति राजुल सुणहु नेमिजिन गवउ नो कउ सावणे ।।१।।

इसी प्रकार जब वैशाख का महिना आता है तो नयनों को केवल नेमि की बाट जोहने का काम ही रहता है जब नेमि नही आते हैं तो वे वर्षा ऋतु के समान वे बरसने लगते हैं।[1]

उनके वियोग में उसका वज्र का हृदय नही फटता है इसलिए ए सखि उनके बिना वैसाख महिना अत्यधिक दारुण दुख को देने वाला बन जाता है।[2]

नेमि राजुल को लेकर कितने ही जैन कवियों ने बाराह मासा निबद्ध किये हैं। विरह का एवं षट् ऋतुओं का वर्णन करने के लिए नेमि राजुल का जीवन जैन साहित्य मे सबसे अधिक आकर्षण की सामग्री है।

कविवर बूचराज के प्रस्तुत बारहमासा का हिन्दी बारहमासा साहित्य मे उल्लेखनीय स्थान है। कवि ने इसमे राजुल के मनोगत भावों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे पाठको को प्रभावित किये बिना नही रहते। कवि के प्रत्येक शब्द मे विरह व्यथा छिपी हुई है और वह परिणय की आशा लगाये विरही नव यौवना के विरह का सजीव चित्र उपस्थित करता है। राजुल को प्रत्येक महिने मे विरह वेदना सताती है तथा उस वेदना को वह नेमि के बिना सहन करने मे अपने आपको असमर्थ पाती है। कवि को राजुल की विरह वेदना को सशक्त शब्दों मे प्रस्तुत करने मे पूर्ण सफलता मिली है।

४. चेतन पुद्गल धमाल

कविवर बूचराज की यह महत्त्वपूर्ण कृति है। पूरी कृति में १३६ पद्य है।

---

१. इनु कातेगे कातिगि आगमु की ताडा पालैवा।
चढि मंडपे मंडपि राजुल मग्गो नेहो लैवे।
मग्गो निहालै देखि राजुल नयण वह दिसि धावए।
सर रसहि सारस रयणिभिनी दुसहु विरहु जगावए।
कि बरहउ तुब बिनु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि बालाए।
बाहुडहु नेमि जिण चडिउ कातिगु कियउ आगमु पालए ॥४॥

२. ए यहु आइयडा अब दुसहु सखी बइसाखो वे।
अइवइसेवा इसि जाइ सनेहडा आखोव।
आखो सनेहा आइ बाइस अन्नु नीरु न भावए।
दुइ नयण पावस करहि निसि दिनु खितु भरि भरि आवए।
फुट्टउ न जं बल्लभ वियोगिहि हिया दुखि बज्जिहि घड्या।
बइसाखु तुब बिनु सुणहु सखिए दुसहु अति दारुणु चड्या ॥१०॥

उनमें १३१ पद्य राग दीपगु तथा शेष ५ अष्टपद छप्पय छन्द में निबद्ध है। कवि ने धमाल का रचना काल एवं रचना स्थान दोनों ही नहीं दिये हैं। लेकिन भाषा की दृष्टि से यह रचना उसकी अन्तिम रचनाओं में से दिखती है। कवि ने इस कृति में अपने आप का बल्हपति[1], बल्हु[2], बूचा[3] इन तीन नामों से उल्लेख किया है।

चेतन पुद्गल धमाल एक संवादात्मक कृति है। जिसमें संवाद के माध्यम से चेतन एवं पुद्गल दोनों अपना-अपना पक्ष रखते हैं, एक दूसरे पर दोषारोपण करते करते हैं। संसार में फिराने एवं निर्वाण मार्ग में रुकावट पैदा करने मे कौन कितना सहायक है, इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। इस प्रकार के वर्णन प्रथम बार देखने मे आये हैं और वे वर्णन भी एकदम विस्तृत। चेतन पुद्गल के संवाद इतने रोचक एवं आकर्षक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। प० परमानन्दजी शास्त्री ने अपने एक लेख में इस कृति का नाम अध्यात्म धमाल भी दिया है।[4] लेकिन स्वयं कवि ने इसे संवादात्मक कृति के रूप में प्रस्तुत करने को कहा है।[5]

कवि ने प्रारम्भ में सम्यग्ज्ञान रूपी दीपक की प्रशंसा की है। जिसके द्वारा मिथ्यात्व का पलायन हो जाता है। इसके पश्चात् चौबीस तीर्थंकरों का २५ पद्यों मे स्तवन किया गया है। फिर चेतन को इस प्रकार सम्बोधित करके रचना प्रारम्भ की गयी है।

यह जड़ खिणिहि विघसिणी, ता सिउ संगु निवारु।
चेतन सेती पिरती करु, जिउ पावहि भव पारो।
चेतन गुण ।।३३।।

चेतन और जड़ के विवाद को प्रारम्भ करते हुए कहा गया है कि जिसने जड को अपना मान लिया तथा उससे प्रीति कर ली वह संसार सागर में निश्चय ही डूबता है। क्योंकि विषधर के मुख मे दूध पडने पर उसका विष रूप ही परिणमन होता है। उससे अच्छे फल की आशा करना व्यर्थ है। लेकिन इस मनतव्य का जड ने

१. कवि बल्हपति सुस्वामि के सावउ चललं सिर धारि ।।१।।
२. जिण सासण महि दीवडा वल्ह पया नवकार ।।३।।
३. इव भणइ बूंचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ।।१३६।।
४. अनेकान्त वर्ष १६–१७ पृष्ठ २२६।
५. पंच प्रमिष्टि बल्ह कवि ए पणमी बरिभाउ।
चेतन पुद्गल बहुक सादु बिवादु सुणावो ।। चेयण सुणु ।।३२।।

बहुत सुन्दर खण्डन किया है जो निम्न प्रकार है—

चेतनु चेति न चालई, कहउत मानै रोसु ।
आये बोलत सो फिरै, जड़हि लगावहि दोसु ।। चेयन सुणु ।।३८।।

चेतन षट्रस एवं अन्य विविध पकवानो से शरीर को प्रतिदिन सींचता रहता है तो फिर इन्द्रियों के वशीभूत चेतन से धर्म पर चलने की आशा कैसे की जा सकती है । खेत मे जब समय पर बीज ही नहीं डाला जावेगा तो उसके उगने की आशा भी कैसे की जा सकती है । वास्तव मे देखा जावे तो यह चेतन जब २४ प्रकार के परिग्रह तज कर १५ प्रकार के योग धारण करता है लेकिन वह सब तो जड़ के सहारे से ही है । फिर उसकी निन्दा क्यो की जावे । पुद्गल का विश्वास कर जो प्राणी मन में नि:शंक हो जाता है वह तो निश्चित ही कलंकित होने के समान है । यह मूर्ख मानव आपने आपको जाग्रत नही करता है और विषयों में लुभाए रखता है । वह तो अधे पुरुष द्वारा बटने वाली उस जेवडी के समान है जिसको पीछे से बछड़े खाते रहते हैं ।

मूरख मूलनु चेतई, लाहै रह्या लुभाइ ।
अधा बाटै जेवड़ी, पाछइ बाछा खाइ ।।४५।।

जड़ फिर चेतन को कहता है कि जिसने पाँचों इन्द्रियों को वश में करके आत्मा के दर्शन किये हैं उसी ने निर्वाण पद प्राप्त किया है तथा उसका फिर चतुर्गति मे जन्म नही होता,

पंचै इंदी दडि करि, आपी आप्पणु जोइ ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चोगइ जनमु न होइ
चेयन सुणु ।।४८।।

जैसे काष्ठ मे अग्नि, तिलो में तेल रहता है उसी प्रकार अनादि काल से चेतन और पुद्गल की एकात्मकता रहती है । पुद्गल के उक्त कथन का चेतन निम्न प्रकार उत्तर देता है,

लेहि वैसंदरु कठु तजि लेहि तेनु खलि राडि ।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुद्गल परिहरि बालि ।।
चेतन गुण ।।५५।।

मन का हठ सभी कोई पूरा करते हैं लेकिन चित्त को कोई भी वश में नहीं करता है क्योंकि सिखर के चढ़ने के पश्चात् घबराहट होने पर उसको दूर कैसे की जा सकती है—

मन का हठु सबु कोइ करइ, चितु वसि करइ न कोइ ।
चडि सिखरहु जब खडहडै, तवरु विगुचणि होइ ।। चेयन सुणु ।।

इसका उत्तर चेतन ने निम्न प्रकार दिया,

सिखरहु भूलिन खडहुडै जिण सासण आधारु ।
सूलि ऊपरि सीझियाँ चोरि अप्पा नवकारु ॥ चेयन गुण ॥५६॥

जड़ और पुद्गल मे बहुत सुन्दर एवं तर्कपूर्ण विवाद होता है लेकिन दोनों ही एक दूसरे के गुणों की महत्ता से अपरचित लगते हैं । इसलिए एक दूसरे के अवगुणों को बखारने मे लगे रहते हैं ।

पुद्गल कहता है—कि पहले अपने आपको देखकर संयम लेना चाहिए । जितना ओढ़णा हो उतना ही पांव पसारना चाहिए । इसका पुद्गल उत्तर देता हुआ कहता है कि भला-भला सभी कहते हैं लेकिन उसके मर्म को कोई नहीं जानता । शरीर खोने पर किससे भला हो सकता है—

भला करितहि मीत सुणि, जे हुइ बुरहा जाणि ।
तौ भी भला न छोडिये उत्तिम यहु परवाणु ॥ चेयन सुणु ॥७०॥
भला भला सहु को कहैं, मरमु न जाणै कोइ ।
काया खोई मीत रे भला न किस ही होए ॥ चेयन गुण ॥७१॥

यह शरीर हाड मांस का पिंजरा है । जिस पर चमडी छायी हुई है । यह अन्दर नरकों से भरा हुआ है लेकिन यह मूर्ख मानव उस पर लुभाता रहता है । इसका पुद्गल बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि जैसे वृक्ष स्वयं धूप सहन कर औरो को छाया देता है उसी तरह इस शरीर के संग से यह जीव मोक्ष प्राप्त करता हैं ।

हाडहृ केरा पजरी चरिया चम्मिहि छाइ ।
बहु नरकिहि सो पूरिया, मुरिखु रहिउ लुभाए ॥ चेयन सुणु ॥७२॥
जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाह कराइ ।
तिउ इसु काया सगते, जीयडा मोखिहि जाए ॥ चेयन गुण ॥

जिस तरह चन्द्रमा रात्रि का मण्डल और सूर्य दिन का उसी तरह इस चेतन का मण्डल शरीर है ।

जिउ ससि मंडणु रयणिका, दिन का मडणु भाणु ।
तिम चेतन का मंडणा यहु पुद्गलु तूं जाणु ॥ चेयन सुणु ॥७८॥

काया की निन्दा करना तथा प्रत्येक क्षेत्र में उसे दोषी ठहराना पुद्गल को अच्छा नहीं लगा इसलिए वह कहता है कि चेतन शरीर की तो निन्दा करता है किन्तु अपनी ओर तनिक भी झाक कर नहीं देखता । किसी ने ठीक ही कहा है कि जैसे-जैसे कांवली भीगती है वैसे-वैसे ही वह भारी होती जाती है ।

काया की निन्दा करहि, आपुन देखहि जोइ।
जिउं जिउं भीजइ कावली. तिउ तिउ भारी होइ ।। चेयन सुणु ।।१०।।

चेतन कहता है कि उस जड़ को कौन पानी देगा जिसके न तो फूल है न फल और न पत्ते हैं। उस स्वर्ण का क्या करना है जिसके पहिनने से कान ही कट जावें।

सा जड मूढ न सीचियँ, जिसु फलु फूलु न पातु।
सो सोना क्या फूकिये, जोरु कटावै कान ।। चेयन गुण ।।१०६।।

पुद्गल इसका बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि यौवन, लक्ष्मी, शरीर सुख एवं कुलवती स्त्री ये चारो पुण्य जिसे प्राप्त हैं वे तो देवताओं के इन्द्र ही हैं।

सवादात्मक रूप में कवि कहता है कि जिन्होंने उद्यम, साहस, धीरता, बल, बुद्धि और पराक्रम इन छः बातों की ओर मन को सुदृढ़ कर लिया उन्होने निर्वाण प्राप्त किया है।

उद्दिमु साहसु धीरु बलु, बुद्धि पराकमु जाणि।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहुचा निरवाणि ।।
चेयन सुणु ।।१३०।।

प्रस्तुत कृति मे १३२ से १३६ तक के ५ पद्य अष्ट पद्य छप्पय छन्द के हैं। इनमे दो पद्यो में जड का प्रस्ताव है तथा तीन मे चेतन का उत्तर है। अन्तिम पद्य चेतन द्वारा कहलवाया गया है जिसमें जड़ से प्रतीति नही कहने का उपदेश दिया गया है—

जिय मुकति सरूपी तूं निकलमलु राया।
इसु जड़ कै सग ते भमिया करमि भमाया।
चडि कबल जिवा गुणि तजि कद्दम संसारो।
भजि जिण गुण हीयडै तेरा यहु विवहारो।
विवहारु यहु तुझु जाणि जीयडे करहु इंदिय संवरो।
निरजरहु बंधण करम्म केरे आनत निढुकाजरो।
जे वचन श्री जिण वीरि भासे ताहु नित धारहु हीया।
इव भणइ बूचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ।।१३६ ।।

इस प्रकार चेतन पुद्गल धमाल हिन्दी जगत का प्रथम संवादात्मक रोचक काव्य है जिसमे चेतन एवं जड़ मे परस्पर गहरा किन्तु मैत्री पूर्ण वाद विवाद होता है। इसमें चेतन वादी है और पुद्गल प्रतिवादी है। 'चेयन सुणु' यह पुद्गल कहता है तथा 'चेयन गुण' यह चेतन द्वारा कहा जाता है। पूरा काव्य सुभाषितों

एवं सूक्तियों से भरा पड़ा है। कवि ने जिन सीधे सादे शब्दों में प्रस्तुत किया है वह उसके गहन तत्व ज्ञान एवं व्यावहारिक ज्ञान का परिचायक है। कवि ने लोक प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग करके संवाद को सजीव बनाने का प्रयास किया है।

भाषा, शैली एवं विषय वर्णन आदि सभी दृष्टियों से यह एक उत्तम काव्य है।

५. नेमिनाथ बसन्तु

यह एक लघु रचना है जिसमें बसन्त ऋतु के आगमन का आध्यात्मिक शैली में रोचक वर्णन किया गया है। एक ओर नेमिनाथ तपस्या में लीन है दूसरी ओर मादकता उत्पन्न करने वाली बसन्त ऋतु भी आ जाती है। राजुल ने पहिले ही संयम धारण कर लिया है इसलिये उसका मन रूपी मधुवन सयम रूपी पुष्प से भरा हुआ है। बसन्त ऋतु के कारण बोलसिरी महक रही है। समूचे सौराष्ट्र में कोयल कुहक रही है। भ्रमरों की गु जार हो रही है। गिरनार पर्वत पर गन्धर्व जाति के देव गीत गा रहे है। काम विजय के नगारे क्या बज रहे हैं मानों नेमिनाथ के यश के ढोल बज रहे हैं। और उनकी कीर्ति स्वयं ही नाच रही हो। संयम श्री वहाँ निर्भय होकर घूमती है क्योंकि संयम शिरोमणि नेमिनाथ के शील की १८ हजार सहेलियाँ रक्षा मे तत्पर है। उनके शरीर में ज्ञान रूपी पुष्प महक रहे हैं तथा वे चारित्र चन्दन से मंडित है। मोक्ष लक्ष्मी उनसे फाग खेलती है। नेमिनाथ तो नवरत्नों से युक्त लगते हैं लेकिन बसन्त स्वयं नवरसों से रहित मालूम पड़ता है। नेमि ने छलिया बनकर मानो तीनों लोकों को ही अपने अपने वश में कर लिया है।

संयम श्री राजुल ऐसी सुहावनी ऋतु में अपने नेमि को देखती है जो जब संसार जगता है तब वे सोते हैं और जब वे सोते हैं तो ससार जगता है। जिसने मोह के किवाड़ों को अपने अनिमिष नेत्रों से जला डाला है। स्वय राजुल अपनी सखियों के साथ विभिन्न पुष्पों से नेमिनाथ की वन्दना के लिए सबको कहती रहती है।

रचना काल

कवि ने इस कृति में किसी भी रचना काल का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु मूल सघ के मंडण भट्टारक पद्मनन्दि के प्रसाद से इस कृति का निर्माण हुआ, ऐसा कवि ने उल्लेख किया है।

मूलसंघ मुखमंडण पद्मनन्दि सुपसाइ।
बील्ह बसंतु जि गावइ से सुखि रसीय कराइ॥

६. टंडारणा गीत

कविवर बूचराज ने एक और रूपक काव्य लिखे हैं, संवादात्मक काव्य लिखे हैं, तो दूसरी ओर छोटे-छोटे गीत भी निबद्ध किये हैं। उन्होंने सदैव जनरुचि का ध्यान रखा और अपने पाठकों को अधिक से अधिक आध्यात्मिक खुराक देने का प्रयास किया है। टडाणा गीत उसी धारा का एक गीत है जिसमें कवि ने ससार के स्वरूप का चित्रण किया है। गीत का टंडारणा शब्द टांडे का वाचक है। बनजारे बैलों के समूह पर वस्तुओं को लाद कर ले जाते हैं उसे टाडा कहा जाता है। साथ ही मे संसार के दुःखों से कैसे मुक्ति मिले यह भी बताने का प्रयास किया है।

कवि ने गीत प्रारम्भ करते हुए लिखा है कि यह संसार ही टंडारणा है जो दुःखों का भण्डार है लेकिन पता नही यह जीव उसके किस गुण पर लुब्ध हो रहा है। यह जगत् उसे अनादि काल से ठग रहा है। फिर भी वह उस पर विश्वास करता है। इसलिए वह कुमार्ग मे पड़कर मिथ्यात्व का सेवन करता रहता है और जिनराज की आज्ञा के अनुसार नही चलता है। दूसरे जीवो को सता कर पाप कमाता है और उसका फल तो नरक गति का बन्ध ही तो है।

गीत में कवि ने इस मानव को यह भी चेतावनी दी है कि उसने न व्रतों का पालन किया है और न कोई सयम धारण किया है। यही नही वह न काम पर भी विजय प्राप्त करने में सफल हो सका है। मानव का कुटुम्ब तो उस वृक्ष के समान है जिस पर रात्रि को पक्षी आकर बैठ जाते हैं और प्रातःकाल होते ही उड़ कर चले जाते हैं। यह मानव नर के समान अपने कितने ही नाम रख लेता है।

कवि आगे कहता है कि यह मानव क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर जगत में यो ही भ्रमण करता रहता है। जब वृद्धावस्था आती है तो सब साथी यहाँ तक कि जवानी भी साथ छोड़ कर चली जाती है। कवि ने अन्त मे यही कामना की है कि तू जब अन्तरदृष्टि होकर आत्मध्यान करेगा तब सहज सुख की प्राप्ति होगी।

> सुद्ध सरूप सहज लिव नितिदिन झावहु अन्तर झाणावें।
> जपति बूचा जिम तुम पावहु वंछित सुख निरवाणावें।

इस गीत मे कवि ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त रचना काल एवं रचना स्थान नही दिया है।

७. भुवन कीर्ति गीत

बूचराज की भुवनकीर्ति गीत एक ऐतिहासिक कृति है। इसमें भट्टारक

भुवनकीर्ति की यशोगाथा गायी गयी है। भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल संवत् १४९९ से संवत् १५३० तक का माना जाता है। भुवनकीर्ति अपने समय के बड़े भारी यशस्वी भट्टारक थे। भ० सकल कीर्ति के पश्चात् इन्होंने देश में भट्टारक परम्परा की गहरी व मजबूत नींव जमा दी थी। बूचराज जैसे आध्यात्मिक कवि ने भुवनकीर्ति की जिन शब्दों में प्रशंसा की है उससे मालूम होता है कि उनकी कीर्ति चारों ओर फैल चुकी थी। कवि ने भुवनकीर्ति के दर्शन मात्र से ही सांसारिक दु.खों से मुक्ति एवं नव निधि को प्राप्त करने का निमित्त माना है। उनके चरणों में चन्दन व केशर लगाने के लिए कहा है। भुवनकीर्ति की विशेषताओं को लिखते हुए कवि ने उन्हें तेरह प्रकार के चारित्र से विभूषित सूर्य के समान तपस्वी तथा सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म का बखान करने वालों में होना लिखा है। वे षट् द्रव्य पंचास्ति काय तत्वों पर प्रकाश डालते है तथा २२ परिषहों को सहन करते हैं। भ० भुवनकीर्ति २८ मूलगुणों का पालन करते हैं। उन्होने जीवन में दश धर्मों को धारण कर रखा है। जिनके लिए शत्रु मित्र समान है। तथा मिथ्यात्व का खण्डन करने जैन धर्म का प्रतिपादन करते हैं। भुवनकीर्ति के नगर प्रवेश पर अनेक उत्सव आयोजित होते थे, कामनियां गीत गाती तथा मन्दिर में पूजा पाठ करती थी।

बूचराज ने भट्टारक के स्थान पर भुवन कीर्ति को आचार्य लिखा है इससे पता चलता है कि वे भट्टारक होते हुए भी नग्न रहते थे और आचार्यों के समान चारित्र पालन करते थे। लेकिन बूचराज की इनकी भेंट कब हुई हुई इसका उन्होने कोई उल्लेख नहीं किया। इसके अतिरिक्त इसी गीत में उन्होंने भट्टारक रत्नकीर्ति के नाम का उल्लेख किया है और अपने आपको रत्नकीर्ति के पट्ट से सम्बन्धित माना है। रत्नकीर्ति भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल संवत् १५७१ से १५८१ तक का रहा है।

८. नेमि गीत

बूचराज ने अपने लघु नाम वल्हण से एक नेमीश्वर गीत की रचना की थी। यह भी अपभ्रंश प्रभावित रचना है जिसमें १५ पद्य हैं। सवत् १६५० में लिपिबद्ध पाण्डुलिपि दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत थी।

लघु गीतों का निर्माण

कविवर बूचराज ने एक ओर मयणजुज्झ एवं चेतन पुद्गल धमाल जैसी रचनाओं द्वारा अपने पाठकों को आध्यात्मिक सन्देश दिया तो वहाँ नेमीश्वर

बारहमासा, नेमिनाथ बसंत जैसी रचनाओं द्वारा विरह रस का वर्णन किया और अपने पाठकों को वैराग्य रस की ओर प्रेरित किया। किन्तु इसके अतिरिक्त छोटे-गीतों द्वारा मानव के हृदय में जिनेन्द्र भक्ति के भाव भरे, जगत की नि सारता बतलायी और अपने कर्तव्यों की ओर संकेत किया। लेकिन ये अधिकांश गीत पंजाबी शैली से प्रभावित हैं। जिससे स्पष्ट है कि कवि ने ये सब गीत हिसार की ओर विहार करने के पश्चात् लिखे थे। ऐसा अनुमान किया जा सकता है। सभी गीत यद्यपि भिन्न-भिन्न रागों मे लिखे हुए हैं लेकिन मूलतः सबका उपदेशात्मक विषय है। मानव को जगत की बुराइयों से दूर हटा कर सन्मार्ग की ओर ले जाना तथा ससार का स्वरूप उपस्थित करना ही इन गीतों का मुख्य उद्देश्य है। कभी-कभी स्वय को भी अपने मन की चपलता के बारे में ज्ञान प्राप्त हो जाता है और इसके लिए वह चिन्ता करने लगता है। सयम रूपी रथ में नही चढ़ने की उसको सबसे अधिक निराशा होती है। लेकिन उसका क्या किया जावे। अब तो सयम पालन एव सम्यकत्व साधना उसके लिए एकमात्र मार्ग बचता है और उसी पर जाने से वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

अब तक कवि के ११ गीत एवं पद मिल चुके हैं। इन गीतों के अतिरिक्त और भी गीत मिल सकते हैं इससे इन्कार नही किया जा सकता। सभी गीत गुटकों मे उपलब्ध हुए हैं। इसलिए गुटको के पाठों की विशेष छानबीन की विशेष आवश्यककता है। यहाँ सभी गीतों का साराश दिया जा रहा है।

९. **गीत** (ए सखी मेरा मनु चपलु दसं दिसे ध्यावँ वेहा)

प्रस्तुत गीत में उस महिला की आत्म कथा है जिसे अपने चचल मन से बडी भारी शिकायत है। वह चंचल मन लोभ रस में डूबा हुआ है और उसे शुभ ध्यान का तनिक भी ख्याल नही है। यह पाचों इन्द्रियों के सग फंसा रहता है। इस जीव ने नरकों के भारी दुःख सहे हैं। मिथ्यात्व के चक्कर मे फस कर उसने अपना सम्पूर्ण जन्म ही गवा दिया है। उसका मन भवसागर रूपी भूल भुलैया मे पडकर सब कुछ भुला बैठा है, यही नही उसे दु.ख होने लगता है कि वह अपनी आत्मा को छोडकर दूसरी आत्मा के वश मे हो गया। इसलिए अब उसने वीतराग प्रभु की शरण ली है जो जन्म मरण के चक्कर से मुक्त है तथा रत्नत्रय से युक्त है।

गीत मे ४ पद हैं और प्रत्येक पद ६-६ पंक्तियों का है गीत की भाषा राजस्थानी है। जिस पर पंजाबी बोली का प्रभाव है। गीत राग वडहस में निबद्ध है। इसकी प्रति दि० जैन मन्दिर नेमिनाथ (नागदी) बूंदी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में उपलब्ध है।

१० गीत (सुणिम पचानु मेरे जीय वे की सुभ ध्यानि आवहि)

यह गीत राग धनाश्री में लिखा हुआ है। गीत में ४ पद हैं तथा प्रत्येक पद में ६ पंक्तियाँ हैं।

प्रस्तुत गीत में इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि यह मनुष्य सच्चे धर्म का पालन नहीं करता है इसलिए उसे व्यर्थ में ही गतियों में फिरना पड़ता है। मोहिनी कर्म के उदय से वह सत्तर कोडाकोडी सागर तक भ्रमता रहता है फिर भी बन्धन से नही छूटता। संपत्ति, स्वजन, सुत एवं मनुष्य देह सब कर्म संयोग से मिल जाते हैं। मनुष्य जीवन रूपी रत्न मिलने पर भी वह उसे यों ही खो देता है तथा मधु बिन्दु प्राप्ति की आशा में ही पड़ा रहता है। निर्ग्रन्थ अर्हन्त देव ने जो कहा है वही सच है। उसी से जन्म मरण के बन्धन से छूट सकता है।

११. गीत (पट मेरी का चोलणा लालो, लौग मोती का हार वे लालो)

राग धनाश्री मे लिखा हुआ यह दूसरा गीत है जिसमें ४ पद हैं तथा पहिले वाले गीत के समान ही प्रत्येक पद मे ६ पंक्तियाँ हैं।

प्रस्तुत गीत मे हस्तिनापुर क्षेत्र के शान्तिनाथ स्वामी के पूजा के महात्म्य का वर्णन किया गया है। अभिषेक व पूजा की पूरी विधि दी हुई है। शान्तिनाथ की पूजा पीत वस्त्र पहनकर तथा अपने आप का शृंगार करके करना चाहिए। कवि ने उन सभी पुष्पों के नाम गिनाये हैं जिन्हे भगवान के चरणों में समर्पित करना चाहिए। ऐसे पुष्पों में रायचपा, केवड़ा, मरुवा, जुही, कुंद, मचकुंद आदि के नाम गिनाये हैं। कवि ने लिखा है कि जब मालिन इन पुष्पो की माला गूंथ कर लाती है तो मन से बड़ी प्रसन्नता होती है। उस माला को भगवान के चरणो मे समर्पित कर फिर पांच कलशो से भगवान शान्तिनाथ का अभिषेक किया जाना चाहिए। अन्त में कवि ने भगवान शान्तिनाथ की स्तुति भी की है—

> मुकति दाता नयणि दीठा, रोगु सोगु निकंदणो।
> अवतारु अचला देवि कुक्षिहि, राइ विससेण नंदणो।
> जगदीस तू सुणु भणइ बूचा जनम दुखु दालिद हरो।
> सिरि संति जिणवर देउ तूठा थानु गढ़ि हथिनापुरी।

१२, गीत—रंग हो रंग हो रंगु करि जिणवरु ध्याइयै।

प्रस्तुत गीत राग गौडी में निबद्ध है जिसके ४ अन्तरे हैं। कवि ने इस गीत में मानव से जिनदेव के रंग में रंगे जाने का उपदेश दिया है। क्योंकि उन्होंने आठ कर्मों पर तथा पंचेन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है इसलिए झूंठ एवं लालच

में नहीं फंसकर जिनेन्द्र देव का ध्यान करना चाहिए। इसमें कवि ने अपना नाम बूचराज के स्थान पर 'वल्ह' दिया है।

१३. **गीत**—(न जाणौ तिसु वेल कौ वे चेतनु रह्या लभाई वे लाल)

इस गीत की राग दीपु है। यह प्राणी किस कारण संसार में फंसा हुआ है। इसका स्वयं चेतन को भी आश्चर्य होता है। इस जीव को कितनी ही बार शिक्षा दी जाय पर यह कभी मानता ही नहीं। अब तक वह न जाने कितनी बार शिक्षाएँ ले चुका है लेकिन उन्हें वह तत्काल भूल जाता है। यौवनावस्था में स्त्री सुखों में फस जाता है तथा साथ ही मरना साथ ही जीना इस चाह मे फंसा रहता है। अन्त में कवि कहता है कि इस मानव को इस माया जाल के सागर में से कैसे निकाला जावे यह सोचना चाहिए।

१४. **गीत**—(वाले वलि वेहु मावे मनु माया वुलि रात्तावे।)
वाले वलि वेहु मावे रहइ आठ मादि मात्तावे॥

प्रस्तुत गीत सूहड राग में निबद्ध है। इसमें ४ अन्तरे हैं। यह भी उपदेशात्मक गीत है जिसमे ससार का स्वरूप बताया गया है। पाचो इन्द्रियों द्वारा ठगा जाने पर और चारों गतियों मे फिरने पर भी यह मानव जरा भी नही सम्भलता और अन्त मे यों ही चला जाता है।

१५. **गीत**—(ए मेरै अंगणे बाच वावा सोचवे को वल कलि यावा।)

जिनेन्द्र की अष्टविध पूजा से भव के दुःख दूर हो जाते हैं। इसी भक्ति भावना के साथ इस गीत की रचना की गयी है। यह राग विहागडा मे निबद्ध है। जिसमे ४ अन्तरे हैं। प्रत्येक अन्तरा मे ६ पंक्तियां है।

१६. **गीत**—(संजमि प्रोहणि ना चडे भए अनंत संसारि।)

यह गीत आसावरी राग मे है। प्रथम दोहा है। इस गीत में लिखा है कि सयम रूपी रथ नही चढने के कारण अनन्त ससार मे घूमना पड़ रहा है। यह प्राणी इस संसार मे घूमते-घूमते थक गया है। किन्तु न धर्म सेवन किया और न सम्यकत्व की आराधना की। नरकों की घोर यातना सही, वहा शीत एवं उष्ण की बाधा सही, कुगुरु एव कुदेव की सेवा की लेकिन सम्यकत्व भाव पैदा नहीं हुआ। इसलिए कवि जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है कि उनके दर्शन से ही उसे सम्यक् मार्ग मिल जावे यही उसकी हार्दिक इच्छा है।

१७. **गीत**—(नित नित नवली देहड़ी नित नित अवइ कम्मु।)

प्रस्तुत गीत में भी ४ अन्तरे हैं। गीत में कवि ने कहा है कि जीव को न तो बार-बार मनुष्य जीवन मिलता है और न अपनी इच्छानुसार भोग मिलते हैं इसलिए जब तक यौवनावस्था है, वृद्धावस्था नहीं आती है, देह को रोग नहीं सताते हैं तब तक उसे सम्भल जाना चाहिए।

राजद्वार पर लगी हुई झालरी रात्रि दिन यही शब्द सुनाती रहती है कि शुभ एवं अशुभ जैसे भी दिन इस मानव के निकल जाते हैं वे फिर कभी नहीं आते। इसलिए अब किञ्चित भी विलम्ब नहीं करके जीवन को संयमित बना लेना चाहिए। जिस प्रकार सर्वज्ञ देव ने कहा है उसी प्रकार हमें जीवन में उत्तम धर्म का पालन करना चाहिए।

प्रस्तुत गीत शास्त्र भण्डार मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर के गुटका संख्या ६७१ में संग्रहीत है।

१८. पद—ए मनुषि लियडा कवल विगस्सेवा।
ए जिरा देखीयडा पाप पणस्सेवा॥

प्रस्तुत पद मे भगवान महावीर के आगमन पर अपार हर्ष व्यक्त किया गया है। महावीर के पधारने से चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है। उनके दर्शन मात्र से जीवन सफल हो जाता है तथा धर्म की ओर मन लगने लगता है। मालाकार भगवान के चरणों में विभिन्न पुष्पों से गुंथी हुई माला अर्पण करता है। उनके चरणो में ध्यान ही मानव को जन्म मरण के बन्धनो से छुड़ाने वाला है।

प्रस्तुत पद बूंदी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत गुटके के ५७–५८ पृष्ठ पर लिपिबद्ध है।

१९. धम्मो दुग्गय हरणो करणो सह धम्मु मंगल मूल।
जो भास्यो जिरा वीरो, सो धम्मो नरहु पालेहु॥१॥

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म दुर्गति को हरण करने वाला तथा मगलीक फल का देने वाला है इसलिए मानव को उसी धर्म का पालन करना चाहिए ये ही भाव उक्त कुछ छन्दों में निबद्ध है। सभी छन्द अशुद्ध लिखे हुए है तथा लिपिकार स्वयं अनपढ़ सा मालूम देता है। फिर ये सभी छन्द तथा १८ वा संख्या वाला पद अभी तक अज्ञात था इसलिए इसका पाठ भी यहाँ दिया जा रहा है।

प्रस्तुत पद बूंदी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत गुटके मे लिपिबद्ध है।

विषय प्रतिपादन

बूचराज जैन सन्त थे इसलिए उनके जीवन के दो ही उद्देश्य थे। प्रथम अपना आत्म विकास द्वितीय अपने भक्तो को सही मार्ग का निर्देशन। वे स्वयं जिन-धर्म के अनुयायी थे इसलिए उन्होंने पहिले अपने जीवन को सुधारा फिर जनता को काव्यों के माध्यम से तथा उपदेशों से बुराइयों से बचने का उपदेश दिया। उनके समय मे देश की राजनीति अस्थिर थी। हिन्दुओ एव जैनों पर भीषण अत्याचार होते थे। यहा के निवासियो को ठेस पहुँचाना मुस्लिम शासकों का प्रमुख काम था। तत्कालीन मुस्लिम शासक विषयान्ध थे। उन्ही के समान यहा के राजपूत शासक भी हो गये थे। महाराजा पृथ्वीराज की वासना पूर्ति के लिए इस देश को गुलाम बनना पड़ा। मुहम्मद खिलजी ने अपनी वासना पूर्ति के लिए लाखो निरपराधियों का सहार किया।

कविवर बूचराज ने ब्रह्मचारी का पद ग्रहण करके सबसे पहले काम वासना पर विजय प्राप्त की तथा साधु वेष धारण कर ब्रह्मचारी का जीवन बिताने लगे। काम से अपने आप का पिण्ड छुड़ाया। इसलिए सर्वप्रथम कवि ने 'मयणजुज्झ' नामक एक रूपक काव्य लिख कर तत्कालीन वासनामय वातावरण के विरुद्ध अपनी लेखनी उठायी। यद्यपि उनके काव्य मे कही किसी शासक अथवा उनकी वासना विषयक कमजोरियों का नामोल्लेख नहीं है। लेकिन कृति तत्कालीन सामाजिक दुर्बलताओं के लिए एक खुली पुस्तक है। १६ वी शताब्दी अथवा इसके पूर्व नारियों को लेकर जो युद्ध होते थे वे सब देश एव समाज के लिए कलक थे। इनसे नारी समाज का मनोबल तो गिर ही चुका था उनमें अशिक्षा एव पर्दा प्रथा ने भी घर कर लिया था। काम वासना से अन्धा पुरुष समाज अपना विवेक खो बैठा था। और पशु के समान आचरण करने लगा था। कवि ने 'मदन युद्ध' रूपक काव्य में काम वासना पूर्ति के लिए जिन-जिन बुराइयों को अपनाना पड़ता है उनका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

कवि ने अपनी दूसरी कृति सन्तोषजयतिलकु में 'लोभ' रूपी बुराई पर करारी चोट की है। इस पूरे रूपक काव्य मे लोभ के साथ-साथ अन्य कौन-कौन सी बुराई घर कर जाती है उनका विस्तृत वर्णन किया है। लोभ पर विजय पाना सरल काम नही है। बड़े-बड़े राजा महाराजा साधु महात्मा भी लोभ के चगुल में फंसे रहते हैं इसलिए कवि ने कहा है—

> दुसउ लोभु काया गढ अंतरि, रयणि दिवस संतवइ निरंतरि।
> करइ ढीठु अप्पणु वलु मंडइ, लज्या न्यातु सीलु कुल खंडइ ॥

लोभ पर विजय प्राप्त किये बिना चतुर्गति में लगातार भ्रमण करना पड़ता है। लोभ अकेला नहीं है उसका पूरा परिवार है। राग एवं द्वेष इसके दो पुत्र हैं। झूंठ इसका प्रधान अमात्य है क्रोध और लोभ उसके सेनापति हैं। माया, कुव्यसन एवं कुशील उसके अंग रक्षक हैं। कपट उसके ध्वज का निशान है तथा इन्द्रियों के विषय उसके घोड़े हैं। दूसरी ओर सन्तोष राजा के समाधि नारी है तथा संवर पुत्र है। अठारह हजार शील के भेद उसके सिपाही हैं। सुधर्म, सम्यकत्व, ज्ञान एवं चारित्र, वैराग्य, तप एवं करुणा, क्षमा, संयम, महाव्रत ये सभी सन्तोष के अंग रक्षक हैं। सन्तोष राजा है। वह रत्नमय हाथी पर सवार है। हाथ में विवेक की तलवार है तथा सम्यक्त्व का छत्र सिर पर रखा हुआ है। दोनों ओर पद्म एवं शुक्ल लेश्या ही मानों चंवर ढोल रही हैं।

कवि ने इस प्रकार दोनों ओर की सेना में घमासान युद्ध कराया है। एक ओर नीति है नैतिकता है तथा सम्यक् आचरण है दूसरी ओर लोभ है, झूठ है, माया एव कपट सभी अनैतिक। सन्तोष और लोभ के मध्य कवि ने अच्छा युद्ध करा दिया है। रण भूमि में उतरते ही दोनों नायक प्रतिनायक में वाद-विवाद तथा एक दूसरे को चैलेंज देते है जिससे पता चलता है कि स्वयं कवि को युद्ध भूमि का अच्छा ज्ञान था चाहे स्वयं ने कभी युद्ध नहीं लड़ा हो। लेकिन जब वाद-विवाद में लोभ सन्तोष पर विजय प्राप्त नही पा सका तो उसने तत्काल ही अपने अमात्य एवं सेनापति को युद्ध प्रारम्भ करने के आदेश दिये। इसके बाद दोनों ओर से घमासान युद्ध होता है। जो अत्यधिक रोमांचक एवं वीर रसात्मक है। युद्ध भूमि मे एक दूसरे पर घात प्रतिघात तथा जय पराजय का जो वर्णन किया गया है उसमे कवि की काव्य प्रतिभा का पता चलता है। लोभ ने जब झूंठ का शस्त्र फेंका तो सन्तोष ने उस पर सत्य के अस्त्र से वार किया। और उसे परास्त करने मे सफलता प्राप्त की। लोभ ने तत्काल मान को रण में लड़ने के लिए भेज दिया। सन्तोष ने उसका जवाब मार्दव से दिया। साथ ही महाव्रतों को भी रणभूमि में भेज दिया। दानो मे भयानक युद्ध होता है।

इस प्रकार कवि सत्य-असत्य के मध्य, मान और मार्दव तथा सम्यक् आचरण और मिथ्या-आचरण के मध्य युद्ध करा कर जगत को यह दिखाने मे सफल हो सका है कि चाहे प्रारम्भ में असत्य एवं मिथ्याचरण की कितनी ही विजय दिखलाई देती हो लेकिन अन्त में विजय होती है सन्तोष, सम्यक् आचरण एवं मार्दव की। और वही स्थायी विजय होती हैं।

कवि की इस कृति में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मनुष्यत्व प्राप्त

करने के लिए विवेक से काम लिया जाना चाहिए। एक ओर मोह है जिसने अपने माया जाल से सारे जगत को फसा रखा है और जो कोई इससे टक्कर लेना चाहता है उसे किसी न किसी की सहायता से वह गिरा देता है। वह नहीं चाहता कि मानव गुणों से पूर्ण रहे। सम्यक्त्वी हो और व्रतों के धारक हो। विवेक का वह महान शत्रु है।

सत् असत् की यह लडाई यद्यपि आज की नहीं किन्तु युगों से चली आ रही है। कवि ने इस लोभ रूपी बुराई से बचने के लिए जो उपाय बतलाये हैं वे ठोस प्रमाण पर आधारित हैं।

कवि की 'चेतन पुद्गल धमाल' तीसरी बड़ी रचना है। चेतन (जीव) और पुद्गल (जड) का सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। जब तक यह चेतन बन्धन मुक्त नही हो जाता, अष्ट कर्मों से नही छूट जाता तथा मुक्ति पुरी का स्वामी नही बन जाता तब तक दोनो इसी प्रकार एक दूसरे से बंधे रहेंगे। कवि ने इसमे स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारो को प्रस्तुत किया है। दोनो मे (चेतन, पुद्गल) वाद-विवाद होता है एक दूसरे की ओर से वादी प्रतिवादी बन कर कमियों एवं दोषों को प्रस्तुत किया जाता है। सासारिक बन्धन के लिए जब चेतन पुद्गल को उत्तरदायी ठहराता है। तो जड़ बन्धनो का उत्तरदायित्व चेतन पर डालकर दूर हो जाता है। पूरा वर्णन सजीव है। सूझबूझ से युक्त है तथा आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। कवि ने पूरे प्रसग को सरल भाषा मे प्रस्तुत किया है जिससे प्रत्येक पाठक उसके भावों को समझ सके। आत्मा को सचेत रहने तथा पुद्गल द्रव्यों के सेवन से दूर रहने पर कवि ने सुन्दर प्रकाश डाला है।

कबीर ने माया को जिस रूप मे प्रस्तुत किया है बूचराज ने वैसा ही वर्णन पुद्गल का किया है। कबीर ने "माया, मोहनी जैसी मीठी खांड" कह कर माया की भर्त्सना की है। तो बूचराज ने पुद्गल पर विश्वास करने से जो कलक लगता है उसकी पंक्तियाँ निम्न प्रकार है—

इस जड तणा विसासु करि, जो मन भया निसकु।
काले पासि वइट्ठि यह, निश्चै चडइ कलंकु ॥४३॥

लेकिन जड तो शरीर भी है जिसमे यह चेतन निवास करता है। यदि शरीर नही हो तो चेतन कहाँ रहेगा। दोनों का आधार आधेय का सम्बन्ध हैं। उत्तर प्रत्युत्तर देने, एक दूसरे पर दोषारोपण करने तथा कहावतों के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रभावक रीति से प्रस्तुत करने मे कवि ने बड़ी शालीनता से काव्य रचना की है। वाद-विवाद मे कवि ने जड की भी रक्षा की है। चेतन पर दोषारोपण

करने में उसने जरा भी संकोच नहीं किया है।[1] कवि ने चार सुख गिनाये हैं और वे है यौवन, लक्ष्मी, स्वस्थ शरीर एवं शीलवती नारी। जहां ये चारों हैं वहीं स्वर्ग है। लेकिन सांसारिक सुख तो नश्वर है जो दिन दिन घटते रहते हैं अतः संयम ग्रहण ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है।

बूचराज ने केवल आध्यात्मिक तथा उपदेशात्मक काव्य ही नहीं लिखे किन्तु 'बारहमासा' 'नेमिनाथ बसन्त' जैसी रचनाएँ लिखकर अपनी शृंगार प्रियता का भी परिचय दिया है। यद्यपि इन काव्यों के लिखने का उद्देश्य भी वैराग्यात्मक है किन्तु इनके माध्यम से षड् ऋतुओं की प्राकृतिक छटा का तथा राजुल की विरहात्मक दशा का वर्णन स्वतः ही हो गया है और इससे काव्यों के विषयों में कुछ परिवर्तन आ गया है। राजुल नेमिनाथ के आने की प्रतीक्षा करती है। सावन मास से लेकर आषाढ मास तक १२ महिने एक-एक करके निकल जाते हैं। राजुल का विरह बढ़ता रहता है तथा उसे किसी भी महिने मे नेमिनाथ के अभाव में शान्ति नहीं मिलती है। वह अपनी विरह वेदना सहती-सहती थक जाती है। नेमिनाथ अपने वैराग्य में डूबे रहते हैं उन्हें राजुल की चिन्ता कहाँ। यदि चिन्ता होती तो तोरण द्वार से ही क्यों लौटते। घरबार छोड़कर दीक्षा नहीं लेते। लेकिन राजुल को ऐसी बात कैसे समझ मे आती। उसने यौवन मे प्रवेश लिया था विवाह के पूर्व कितने ही स्वर्णिम स्वप्न लिये थे। इसलिए उनको वह टूटता हुआ कैसे देख सकती थी। बारहमासा में इसी सब का तो वर्णन किया हुआ है। सावन में बिजली चमकती है, मोर मेघ से पानी बरसाने को रट लगाते हैं, भाद्रपद में चारों ओर जल भर जाता है और आने जाने का मार्ग भी नष्ट हो जाता है, इसी तरह आसोज में निर्मल जल में कमल खिल उठते हैं ऐसे समय में राजुल को अकेलापन खाने को दौड़ता है, उसकी आंखों से आंसुओं की धारा रुकती नहीं। इसी प्रकार राजुल नेमि के विरह में बारह महिने के एक एक दिन गिनकर निकालती है उनकी प्रतीक्षा करती रहती है। लेकिन उसका रोना, प्रतीक्षा करना, आहें भरना, सभी व्यर्थ जाते हैं। क्योकि नेमिनाथ फिर भी नहीं लौटते और न कुछ सदेशा ही भेजते हैं। कवि ने इस प्रकार इन रचनाओं में पात्रों के आत्म भावों को उडेल कर ही रख दिया है।

कवि ने उक्त रचनाओं के अतिरिक्त पदों के रूप में छोटे-छोटे गीत भी लिखे हैं जो विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। सभी पदों में अर्हत भगवान की भक्ति के लिए पाठकों को प्रेरणा दी गई है साथ ही मे वस्तु तत्व का भी वर्णन किया गया है।

---

१. काया की निंदा करई आपु न देखई जोइ।
जिउं जिउं भीजइ कांवली तिउं तिउं भारी होई ॥४१॥

इस जीव को फिर चतुर्गति में भ्रमण नहीं करना पड़े इसलिए अरिहन्त भगवान की भक्ति में मन लगाना चाहिए। ऐसे उपदेशात्मक पदों में मनुष्य का अथवा इस जीव का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि को बड़ी चिन्ता है कि यह जीवात्मा पता नहीं किस बेला से जगत पर लुभा रहा है। जिसको भी आत्मा में लगन लग जाती है तो उसे कष्टो का भान नही होता।

सयम जीवन के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति संयम रूपी नाव पर नहीं चढ़ता है वह अनन्त ससार में डुलता रहता है। इसलिए एक पद में "संजमि प्रोहणि ना चढ़े भए अनन्त संसारि" के रूप में प्रस्तुत किया है। सभी गीतों में इस जीव को विषय रूपी कलापों से सावधान किया है तथा उसे मोक्ष मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। क्योंकि स्वयं कवि भी उसी मार्ग का पथिक बन गये थे तथा रात्रि दिन आत्म साधना मे ही लगे रहते थे।

इस प्रकार कवि ने अपनी कृतियो में पूर्णत: आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादन किया है जिसको पढ़कर प्रत्येक पाठक बुराई से बचने का प्रयत्न कर सकता है तथा अपने आत्मा विकास की ओर आगे बढ़ सकता है।

भाषा

कविवर बूचराज की कृतियों की भाषा के सम्बन्ध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि बूचराज जन कवि थे। इसलिए जनता की भाषा में ही उन्हे काव्य लिखना अच्छा लगता था। उनके काव्यों की भाषा एक सी नही रही। प्रारम्भ मे उन्होंने मयणजुज्झ लिखा जो अपभ्रंश से प्रभावित कृति है। इसकी भाषा को हम डिंगल राजस्थानी के निकट पाते हैं। जिसमे प्रत्येक शब्द का बड़े जोश के साथ प्रयोग किया गया है जिसका उद्देश्य अपने वर्णन मे जीवन डालना मात्र माना जा सकता है। मैं मयणजुज्झ की भाषा को राजस्थानी डिंगल का ही एक रूप कहना चाहूँगा। जिसमे जननी को जणणी (२), मध्य को मज्झि (७), पुत्र को पुत्त (१०) के रूप मे शब्दों का प्रयोग हुआ है। यही नही राजस्थानी शब्दो का जैसे पूछण लागा (२२), भाग्या (५९), वीडउ (३५) का भी प्रयोग कवि को रुचिकर लगा है। कवि उस समय सम्भवत ढूंढाड़ प्रदेश के किसी नगर मे थे इसलिए उसमें उर्दू शब्द जो उस समय बोलचाल की भाषा के शब्द बन गये थे, आ गये हैं। ऐसे शब्दों में चूतडि (३०), खबरि (३१), फौज (६५) जैसे शब्द उल्लेखनीय हैं।

इस समय अपभ्रंश का जन सामान्य पर सामान्य प्रभाव था। तथा अपभ्रंश की कृतियो का पठन पाठन खूब चलता था। इसलिए बूचराज ने भी अपनी

कृति में अपभ्रंश शब्दों का खुलकर प्रयोग किया । ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

काव्य की भाषा	हिन्दी शब्द
णाण	ज्ञान
रिसहो	ऋषभ
तित्थयरु	तीर्थंकर
जम्मणु मरणु	जन्म मरण
धम्मु	धर्म
दुट्ठ	दुष्ट
तिजंच	तिर्यन्च
गव्वु	गर्व
गोइमु	गौतम

कवि ने कुछ शब्दों के आगे 'ति' लगाकर उनका क्रिया पद शब्दों में प्रयोग किया है । इस दृष्टि मे हाकन्ति, हसंति, कुकति, कुरलति, गायंति, वजति (३४) जैसे शब्दों का प्रयोग उल्लेखनीय है ।

यहाँ पर यह कहना पर्याप्त होगा कि कवि ने प्रारम्भ में अपनी कृतियों की भाषा को अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश कवियों की भाषा के अनुकूल बनाने का प्रयास किया लेकिन इसमें उसने धीरे-धीरे परिवर्तन भी किया जिसे 'सन्तोष जयतिलकु' एवं 'चेतन पुद्गल धमाल' मे देखा जा सकता है । 'चेतन पुद्गल धमाल' कवि की सबसे अधिक परिष्कृत भाषा मे निबद्ध कृति है । जिसे कोई भी पाठक सरलता से समझ सकता है । संवादात्मक कृति के रूप में कवि ने बहुत ही सहज एवं बोलचाल के शब्दो मे गूढ़ से गूढ़ बातों को रखने का प्रयास किया है । इसलिए उसमें कोमल, सरल एवं सुबोध रूप में विषय का प्रतिपादन हो सका है ।

कवि की तीन प्रमुख कृतियों के अतिरिक्त 'नेमिनाथ बसन्तु', 'टंडाणा गीत' जैसे अन्य गीतो की भाषा भी राजस्थानी का ही एक रूप है । इन गीतों की भाषा पूर्वापेक्षा अधिक सरल है तथा शब्दों का सहज रूप मे प्रयोग किया गया है । इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

राज दुवारह झल्लरी, प्रहि निसि सबद सुणावें ।
सुभ असुभ दिनु जो घटइ, बहुडि न सो फिर आवइ ।
आवइ न सो फिरि धाइ जो दिनु, आउ इणि परि छीज्जइ ।
मोहहु अम्माइकु व्रत सजम, खिणु बिलंब न कीजिए ।

पंच परमेष्ठी सदा समणउ हिसइ तिज्ज समिकितु धरेइ ।
खिणाखिरण चितावइ चेत चेतन राज द्वारह भलेरी ।

लेकिन जब कवि ने पंजाब की ओर प्रस्थान किया तथा वहां कुछ समय रहने का अवसर मिला तो अपनी कृतियो को पंजाबी शैली में लिखने में वे पीछे नहीं रहे । इनके कुछ गीतो में पंजाबी पन देखा जा सकता है । शब्दों के आगे वे, वा, वो लगा कर उन्होंने अपने लघु गीतो मे इनका प्रयोग किया है । ए सखी मेरा मरणु चपलु वसै दिसे ध्यावै वेहा' इस पक्ति में कवि ने 'वेहा' शब्द जोडकर पंजाबीपने का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार बूचराज यद्यपि शुद्धतः राजस्थानी कवि है । उसके काव्यों की भाषा राजस्थानी है लेकिन फिर भी किसी कृति पर अपभ्रंश का प्रभाव है तो कोई पजाबी शैली से प्रभावित है । किसी-किसी पद एव गीत की भाषा भी दुरुह हो गयी है और उसमे सहजपना नही रहा है तथा वह सामान्य पाठक की समझ के बाहर हो गयी है ।

छन्द

कविवर बूचराज ने अपनी कृतियो में अनेक छन्दों का प्रयोग करके अपने छन्द-शास्त्र के गम्भीर ज्ञान को प्रस्तुत किया है । मयणजुज्झ मे १५ प्रकार के छन्दो का तथा सन्तोष जयतिलकु मे ११ प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है । केवल एकमात्र चेतन पुद्गल धमाल ही ऐसी कृति है जो केवल दीपक छन्द एव छप्पय छन्द में ही निबद्ध की गयी है । इसके अतिरिक्त बारहमासा राग वडहंसु मे तथा अन्य गीत राग धन्याश्री, गौडी, सूहड, विहागडा एव असावरी मे निबद्ध किये गये हैं । बूचराज को दोहा, मडिल्ल, रड एवं षट्पदु छन्द अत्यधिक प्रिय हैं । वह दोहा को कभी दोहडा नाम देता है । कवि ने रासा छन्द के नाम से छन्द लिखा है जिसमें चार चरण हैं । तथा प्रत्येक चरण मे १५ व १६ अक्षर है । मयणजुज्झ मे ऐसे ८९ से ९२ तक के ४ पद्य हैं ।[1] अपभ्रंश के पद्धडिया छन्द का भी कवि ने प्रयोग किया है । लेकिन इसमे केवल ४ चरण है तथा प्रत्येक चरण में ११ अक्षर हैं ।[2]

---

१. करिवि पलाणउ मोहु भडु चल्लियउ ।
संमुह भखज बाल बधूलउ भुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कुंभ धाह तरुणि दियं ।
ले आइ तह अग्गि धूवंतिय रंडतिय ॥८९॥

२ तमकायउ तिनि भडु मोहु, जाइ, पुगु माया तह बुलाइ ॥
जब बैठे इनउ एक सत्थि, कलिकालु कहइ जब जोडि हत्थु ॥

रड छन्द में भी कवि ने कितने ही पद्य लिखे हैं। यह वस्तुबंध छन्द के समान है और किसी-किसी पाण्डुलिपि में तो रड के स्थान का वस्तुबंध नाम भी दिया है। इसी तरह अडिल्ल छन्द का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। यह चौपई छन्द से मिलता जुलता छन्द है। रगिका छन्द मे आठ चरण होते हैं और यह सबसे बड़ा छन्द है। कविवर बूचराज ने इस छन्द का 'मयणजुज्झ' एव 'सन्तोष जयतिलकु' इन दोनों में ही प्रयोग किया है।

कवि ने मयणजुज्झ एवं अन्य कृतियों मे गाथा छन्द का भी खूब प्रयोग किया है। एक गाथा निम्न प्रकार है—

ए जित्ति चित्त खिल्लउ, आयउ आनदि घरह वद्धारे।
उट्ठ उट्ठ चचल वयणि, आरतउ वेगि उत्तारउ ॥५६॥

पाण्डुलिपि परिचय

मयणजुज्झ की राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे निम्न पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं :

	पत्र सख्या	लेखन काल	पद्य सख्या
१. आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर (महावीर भवन के सग्रह मे) गुटका स० ४६ वेष्टन सं० २८७	२४	—	१५६
२. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार, अजमेर	२०	सवत् १६१६	१५८
३. शास्त्र भण्डार दि० जैन ठोलियान, जयपुर	—	सवत् १७१२	१५८
४. शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा मन्दिर, जयपुर (गुटका सं० ५ वेष्टन सं० २६६४)	४१	—	१५८
५. शास्त्र भण्डार नागदी मन्दिर, बूदी	२२	—	१४२
६. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर, दीवान जी कामा (भरतपुर)	—	—	—

लेकिन प्रस्तुत पुस्तक में दिया जाने वाला पाठ प्रथम, चतुर्थ एवं पंचम पाण्डुलिपियों के आधार पर तैयार किया गया है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली प्रति जीर्ण अवस्था में है। लेकिन उसके पाठ सबसे अधिक शुद्ध है। बूंदी वाली पाण्डुलिपि में ५२।। पद्य एक लिपिकर्त्ता द्वारा तथा शेष पद्य दूसरे लिपिकार द्वारा लिखे हुए हैं। इसको पारा बाई द्वारा लिखवाया गया था। लिखने वाले देवपाल माली मलविरे का था। यहां क प्रति आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि है। ख प्रति बूंदी के शास्त्र भण्डार की है। तथा ग प्रति से तात्पर्य शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी मन्दिर जयपुर से है।

□ □ □

मयणजुज्झ

मंगलाचरण—साटिकु

जो सव्वट्ठविमाणहुंति चविउ तह णाण चितंतरे ।
उवन्नो मरुदेवि कूखि रयणो, स्यांग कुले मंडणो ।
भुक्तं भोग सिरज्ज देस विमलं, पाली पवज्जा पुणो ।
सपसो णिव्वाणि देउ रिसहो, काऊण तुव मंगल ॥१॥

जिण भरहू वागवाणि, पणवउ सुहमति देहि जय जणणी ।
वण्णेसु मयण जुज्भं, किव जित्तिउ श्रीय रिसहेस ॥२॥

रिसह जिणवरु पढम तित्थयरु,
जिणधम्मह उद्धरणु, जुयलु[1] धम्मु सव्वे निवारणु ।
नाभिराइ कुलि कवलु, सरवनु ससारह तारणु ।
जो सुर इंदहि वंदियउ, सवा चलण सिरुधारि ।
किउं किउं रतिपति जित्तिउ, ते गुण कहउ विचारि ॥३॥

सुणहु भवियण एहु परमत्थु,
तजि चिंता परकथा, इकु ध्यानु हुइ कन्नु दिज्जइ ।
मनुषिल्लइ कब लाध्यउं, हुइ समाधियउ भमी उपज्जइ ।
परचै जिन्ह चित्त एहु रसु, चालइ कसमल सोइ ।
पुनरपि तिन्ह संसार महि जम्मणु मरणु न होइ ॥४॥

सुणहि नही जूवइ जे रस,
जे इत्तिय कामरस, बहु उपाय धंधइ जि रत्तीय ।
पर निंदा पर कत्थ जिके, तियवरि उनमाथि मत्तिय ।
पडिय जि घोर समुद्द महि, नहु आवहि सुभ ध्यान ।
सोमा रसु बहु अमीय रस, इतहि न सुणही कान ॥५॥

---

1. जुवल (क प्रति)

दोहा

चेतन एवं उसका परिवार—

पुव्व करम गहि बधिउ, सहइ सु-दुख सताउ ।
इसु काया गढ भितरइं, वसै सचेतन राउ ।।६।।

रङ

राउ चेतन काउ गढ मज्झि,
नहु जाणइ सार किमु, मनु मत्री सपर बल बखाणउ ।
परवत्ति निवत्ति दुइ तासु तीय, ए प्रगट जाणउ ।
जाणउ निवत्ति विवेक सुत, परवत्तिहि भयो मोह ।
सो मल्लि बैठा रजू ले, करइ[1] कपटु सनेह नित दोहु ।।७।।

मडिल्ल

मोह धरहि माया पटरानी, करइ न संक अधिक सबलाणिय ।
करि परपंचु जगतु फुसलावइ, तहि निवत्ति किव आदरु पावइ ।।८।।

दोहा

चलिय निवत्ति विवेकु ले, दीठ्ठै इसिय[2] आचार ।
मोहु राउ तब गरजियउ, दल बल सयन विथार ।।९।।

गाथा

गढ[3] कनकपुरीय[4] नामो, राजा तह सत्त् करहु थिरु रज्जो ।
तह[5] ले पुत्त पहुत्तिया, बहु आदरु पाइयो[6] तेण ।।१०।।
दीनी कन्या सत्त तिसु, सुमति सरस सुविसाल ।
थप्पि रज्जि विवेकु थिरु चालि मलइ गुणमाल ।।११।।

---

१ कर कपटु नित दोहु (क प्रति)
२. इसे (क प्रति)
३. चेतन की स्त्री निवृत्ति अपने विवेक सुत को लेकर कनकपुरी में पहुँच जाती है ।
४ पुण्यपुरी (ग प्रति)
५. तहां लोकत पहुतइ (ख प्रति)
६. पाइउ (ख प्रति)

मोह द्वारा चार दूतों को बुलाना—

सालु विवेकह मोह मनि, सोवइ पाव पसारि ।
येक दिवस इव सोचि करि, दूत बुलावइ चारि ॥१२॥

अडिल्ल

मोह[1] चारि तब दूत बुलाइय, सार लेण कुं वेगि पठाइय ।
कपटु कुसत्त् पापु बखाणउं, अरु[2] तहां दोहु चवथउ जाणउ ॥१३॥
खोजत खोजत देस सवाइय, पुन रगइपट्टण[3] तब आइय ।
करि[4] भरडइ को बेस पठाइय, धीरज कोतवाल तब दिट्ठिय ॥१४॥

दोहा

रंगपट्टण का वर्णन—

धीरज देखि कुं दरसणीय, बहु ताडण तिन्ह होय ।
पैसण मिले न नगर महिं, ले करि भागे जीय ॥१५॥
तीनि गए तिहु वाहुडइ, कपटु कीयउ मनि चिट्ठु ।
तित[5] सरवर तिय भरहि जल, जितुसर जाइ वइट्ठु ॥१६॥

रड

ज्ञान सरोवर ध्यानु तसु पालि, अलुवाणी विमलमइ ।
सघण वरषत व्रत वारहु, थिरु पंखी जोग तिहां ।
नलनि मगर प्रतिमा इग्यारहु, अठतीसउं रिधि तिहां ।
आणद कुंभ भरेहि, इक्क जीहते सुन्दरी बहु थुति जैन करेहु ॥१७॥

दोहा

बहुती जैन पसंसना, करत सुणी इक नारि ।
कपट छल्यउ तब नगर कहु, रूप अतीकउ चारि ॥१८॥

---

१ ख प्रति में १३ से १६ तक के पद्य नहीं हैं ।
२. अवरु ग प्रति
३. रंगपट्टन
४. करि भरडे करउ वेसु पइठे ग प्रति
५. तिस ग प्रति

मडिल्ल

नगरी मांहि कपटु, सचरयउ ठाम ठाम सो देखत फिरयउ ।
देखि विवेक सभा सुविचक्षण, देखि प्रजा बम सुभ लक्षण ॥१६॥
देख्या न्याउ नीति मारग बहु, देख्या तह दुइ लोगु सुख सहु ।
भेद छेदु सर्बहि तिहां पायो, तब सु कपटु उठि पंथिहि पायो ॥२०॥

कपट का वापिस अधर्मपुरी में आना—

आइ अधम्मपुरी सुपहुतउ, जाइ जुहार मोहसिंहु कित्तउ ।
मोह बुलाइ बात तसु पुच्छइ, कहहु विवेकु कवणठुइ अच्छइ ॥२१॥

दोहा

पासि बुलायो कपटु तब, पूछण लागा बात ।
कहा विवेक निवसित कहु, कहु तिन्ह की कुसलात ॥२२॥

कपट का उत्तर—

मोह सुणहु तुम्हि कानु धरि[1], कपटु पयासइ एउ ।
जैसी देखी नयण मइ, तैसी बात कहेउ ॥२३॥

वस्तु बन्ध

धर्मपुरी का वर्णन—

बसइ पट्टणु पुन्नपुरु नयरु ।
तहाँ राजा सत धिरु, तिनि विवेकु गढि सुथिरु थप्पिउ ।
परणाई धीय तिनि, राजु देसु सबइ समप्पिउ ।
दया धम्मु तहां पालीयइ, कीजइ पर उपगारु ।
तह ठइ सुपनन दीसई, चोर अन्याई जारु ॥२४॥

दोहा

पवण छतीस्यु सुखस्यउं बसहि, करइ न को परतीति ।
काचे कचन गलिय महि, पडे रहहि दिनु राति ॥२५॥
तेरे गढ महि फोडि घर, चोर चरड ले जाहि ।
पर तिण कोइण छीपई, उसकी आज्ञा माहि ॥२६॥
तहां परपचु न दीसई, जह छै विसियन कोइ ।
सभै सतोषी मेदनी दीठी मइ अवलोइ ॥२७॥

---

१. वे क प्रति

२. ग प्रति में २८–२६ पद्य को केवल २८ वां पद्य ही माना है ।

मडिल्ल

दीठा नयरु फिरि विचारयउ पखि ।
सुभ वाणी सुणीय सब्बहु मुखि ।
राउ नयरु विषमउं दलु बलु अति ।
इंद नरिंद करहिं जिसु की थुति ॥२८॥
सुणु सुणहो तूं मोह भुवपत्ति, मई दीठा नयर तणी यह गति ।
स्वामि विवेकु चडिउ प्रति चाडइ, तुम्हं ऊपरि गब्बइ दिउ हाडइ ॥२९॥

दोहा

जब पच्चारिउ कपटि तिनि, तब मनि मच्छरु वाधु ।
डालि चडया जणु बाँनरा, चूलडि बीछू खाधु ॥३०॥
तब[1] अहंकार कीयउ तह, लीयउ वेगि बुलाइ ।
खबरि करहु सब सयण कहु, सभा जुडी जिउं आइ ॥३१॥

रड

मोह राजा की सभा—

रोसु आयउ साथि तिसु झूठ,
अरु सोक संतापु तह, संकलपु विकलपु आयउ ।
आर्वत्ति चिंता सहितु, दुखु कलेसु को ध्यायउ ।
कलहु अदेसा छदमु तह, समसरु[2] बलगरु जाइ ।
अैसी राजा मोह की सभा जुडी सभ आइ ॥३२॥

दोहा

करिवि सभा तब मोह भडु, इव चिंतइ मन मांहि ।
जब लगु जीवइ विवेकु इहु[3], तब लगु सुख हम नाहि ॥३३॥

रड

तात मोहहि बयण सुणीयइ,
सुत मनमथु उठियउ, सिरु निवाइ करि जोडि जंपइ ।
दावानलु जिउ जलिउ, थरहराइ करि कोउ कपिउ ।
रहुहिकि कुंजर बापुडे, जितु वनि केहरि गधि ।
आजु निर्वत्ति विवेक सुतु गहि ले आउ बधि ॥३४॥

---

1. तब अहंकारन कीधु तिनि क प्रति
2. प्रबल समसर सब्बलु गरजाये ग प्रति
3. बहु ग प्रति

दोहा

मदन का बीड़ा लेकर प्रस्थान—

मोह राउ तब हाथि करि, बीडउ अप्पइ अप्पु।
कुमति कुबुद्धि कुसीष देइ, चलायिउ कंदप्पु ॥३५॥

गाथा

गुडिय मयण मय मत्त गज्जिउ, सज्जिउ दलु विषमु वहु पयरेण।
हरि बंभु ईसु भज्जिउ, जब वज्जिउ गहिर नीसाणु ॥३६॥

गीतिका छंद

बसन्त का आगमन—

बज्जिउ निसानु बसन्तु आयउ, छल्ल कुंदसु खिल्लियं।
सुगध मलयापवण झुल्लिय, अब कोइल बुल्लियं।
रुण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिहि छाइयं।
गावन्ति गीय बजंति वीणा, तरुणि पाइक आइयं ॥३७॥

जिन्ह कुंडिल केस कलाव कुंतिल, मग मोत्तिय धारियं।
जिन्ह विणा मुवंग रुलति चदमि गुंथि कुसम सवारियं।
जिन्ह भवहं धुणहर धरिय समुह नयण बाण चढाइयं।
गावन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥३८॥

जिन्ह तिलक भ्रिगमय तिक्ख भल्लिय चीर धज फरकंतियं।
जिन्ह कनक कुंडल कंध मनमथ मूढ़ पंडिव भंतियं।
जिन्ह दन्त विज्जु चमकत लग्गहि कुको कोनद वाइयं।
गायन्ति गीत वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥३९॥

जिन्ह सिहणि गिरिवर रोम वण घण, नखसि असिवर करट्ठए।
हुतु मग्गि चलतह समरि तसकर कहउ नर कित्तिय हुए।
वंज्जंति घणरउ खिद्द नूपुर काछ कुसम बणाइयं।
गावन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥४०॥

जिन्ह रागि कटि बंधिय पटबर जिरह उर कंचूक से।
झाकंति हसति कुकंति कुरलति मूढ पट लहरी बसै।
जे कुटिल बुधिहि हरहि परचितु धरत चेतन आणीयं।
गायन्ति गीय बजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥४१॥

देखंतु दरसणु जिन्ह केरा रूप पहिला नासए ।
तिन्ह सामि परसु करंत खिणमहि तेउ तनहु पणासए ।
मोहणु करंतह आउ छीजइ कहहु किमि सुखु पाइयं ।
गायन्ति गीय बजन्ति वीणा, तरुणि पाइक आइयं ।।४२।।

जे वच्छु देखत चित्त रजहि सील सत्त गवावहि ।
जे चहुव गति महि अनत जम लगु बहुतु दुख सहावहि ।
चिंति अवरु चितहि अवरु जंपहि अवरु जुगपति आइयं ।
गायन्ति गीय बजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइयं ।।४३।।[1]

रड्ड[2]

तरुण पय कइंत मंतीस
मिथ्यातीय गय गुडिय विसन सत्त हय तेउ सज्जिय ।
सुनाहु कुसील तिणि पापु कुत निसान वज्जिय ।
छत्त धरियउ परमादु सिरि चमर कषाय ढलंति ।
इव रतिपति संवूह करि चडिउ गहीर गाजंति ।।४४।।

रंगिका

कामदेव का आक्रमण—

चडिउ गहीर गाजंत घोरि मानइ न संक उरि ।
सुभटु आपणु जोरि अतुल बले तिणि कुसम कोवंडलीय ।
भमर पण चकीय देखत तरुणि तिय कि कि न छले ।
सज्जि आणिय कुंत कृपाण साधिये पाचउ बाण ।
फेरिये जगत आण बडिवि रणे, आइया आइया रे मदन राइ ।।
दुसहु लगउ धाइ चलिय सूर पलाइ गहवि तणो ।।४५।।

जिणि मिलिउ[3] संकरु माणु, छोडियउ अंतर ध्यानु ।
गोरी सग हित प्राणु इव नडियं, जिन तपहु बिच टालि ।
घालिउ माया जालि महन रूपि निहालि फद पडियं ।
हरि लियो मदन कसि सोलह सहस बसि रहिउ गूजरि रसि रयण दिणो ।
आइया आइया रे मदनु राइ दुसह लगो धाइ
चलिय सूर पलाइ गहिविलणो ।।४६।।

---

१. क प्रति में यह पद्य तीन पंक्तियों का है ।
२. ग प्रति में इसका नाम वस्तु बंध दिया है ।
३. मलयउ—ग प्रति ।

जमदगनि वे स्वामी तू टालिउ तिन्हा चित्त, छोडि तपु गेहकितु ।
आपु खोइयं, इदु विषय अधिकु व्यापउ अहिल्या टालीयउ आपु ।
गोतमी दिय सरापु, भगउ इयं जिन लंकापति डिगाइ ।
आणिय सीय चुराइ, घाल्या रावणु घाइ कइ जिणो ।
अइया अइया रे मदन राइ चलिय सूर पलाइ गहिवि जिणो ।।४७।।

जिणि सन्यासी जतीय सार, जगम सिर जटा धार ।
जोगीय मडित छार धलिय रसे, जिन मरउ भगववेस ।
विहडी लुंचित केस, काली पोस दरवेस कि कि नगसे ।
जख्य राकस गधव गुरु, सुभट सबल नर पसुव पखिय घर कित्तिय थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसुहु लागा घाइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियावितणो ।।४८।।

कि के जैन के सेवणहार ते तो कीते भिष्टचार ।
भोगिय सुख अपार ससार तणो ।
उहि देखत भये अंध पडिय करम फंध ।
किये कुगत बंध जनम घणो ।
जैसे बंभदत्त चक्कवति काम भोग करि थिति ।
गयउ नरक गति सतमि थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घ्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियावितणो ।।४६।।

जिनि कुंड रिषि ताडि, लीयउ सुभट पाडि ।
सिखर हु दिया राडि तपु तजिय ।
लीए सबल सुसर अगि रहिउ तिय रंगि ।
विषय विषय सगि सुख भजियं ।
वीर चरण सेवक नितु इंदिय लोलप चित्त ।
सेणिकु नरय पत्तु सुख निषणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घ्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहवितणो ।।५०।।

इक अबुह सजम रूवि, छलिय मदन भूप ।
दीनीय संसार कूप दंसण भट्टे ।
नित करहिसि परपचु अनेकह जीव बंचु ।
तजि मान लेहि कचु अप्पणु हट्टे ।

ते तौ रहिय सुचि आरंभ सकिम बरतु ठंभि ।
उवर भरहि डंभि रंजिवि जिणो ।
भइया भइया रे मदन राइ दुसहु लागी ब्याइ ।
चलिव सूर पसाइ गहिचितणो ॥५१॥

षट्पद

जितउ सुभटु बलिवंडु जिन्हु गज सिंघ निवाइय ।
जीतउ दैत्य प्रचंड लोइ जिन्ह कुमगिहि लाइय ।
जितउ देउ बलि लबधि धारि वहु रूप दिखालहि ।
जितउ दुद्ध तिजंच करिवि लघु बणखंड बालहि ।
असपति गजपति नरपतिय भूपतिय भूरहिय भरि ।
ते अच्छ लच्छ ले टालिय प्रटल मयण नृपति परपचु करि ॥५२॥

रड

जीतिये सहि कीयउ मनि हरषु ।
पुन्नपुरि[1] दिसि चलिउ, तब विवेक आवत सुणियो ।
चित्त'तरि चितविउ करिवि मंतुये रिसउ मुणियउ ।
धम्मपुरिहि श्री आदि-जिणु सुणियउ परगट नाउ ।
तत्थ गए हउं उब्बरउ मदन गंबावउं ट्ठाउं ॥५३॥

गाथा

इव करंत गुह्य मंतो, आयउ सुह ध्यान हूव रिसहेसु ।
विवेक बेघि चबहु बुल्लावइ देब सरबन्नि ॥५४॥

दोहा

चलिउ विवेकु आनंदु करि, धम्मपुरी सुपहुत्त ।
परणाई संजमसिरि, सुखु भोगवइ बहुत्त ॥५५॥
जब विवेकु नाठउ सुण्या, चितवइ अनंगु प्रयाणु ।
भाग्या पीठि न घावहि, पुरुषहि इहु परवाणु ॥५६॥[2]

---

1. पुण्यपुरी ।
2. 'ग' प्रति में ५६ वें पद्य की दूसरी पंक्ति नहीं है ।

रड

कामदेव का स्वदेश आगमन—

फिरिउ मनमथु, जित्ति सब देसु,
नट भट जै जै करिहु, विसाष गंधव्व गावहि।
बहु झिल्लिय दुट्टु मरिण, कुजसु पडहु गड महि बजावहि।
माया करइ बधावरणउ, मोह रहसि चित्तु।
सव्वे इछ्या पुज्जिया, जिरण घरि आयउ पुत्तु ॥५७॥

दोहडा

माइ पिता पगि लागि करि, तब मनमथु घरि जाइ।
रहसिउ अगिन मावई, जीते राणा राइ ॥५८॥

गाथा

ए जित्ति चित्ति खिल्लउ, आयउ आनंद घरहु जब बारि।
उट्ठु उट्ठु चद वयरिग, आरतउ बेगि उत्तारउ ॥५९॥
मुहु रहिय मोड मानणि, पुच्छइ तब मयणु कवण कज्जेण।
को सूरु वीरु भटलो कहि सुंदरि मुज्झ सरि भुवणे ॥६०॥

रड

रति एवं कामदेव के मध्य प्रश्नोत्तर—

कत जितउ कवणु तै देसु,
को पट्टणु वरु णयरु, कवणु सबलु भूपत्ति डिगायउ।
किसु छत्तु विहडियउ, करिवि बंधि कहु कासु ल्यायो।
किसु मलिया परतापु, तै कहु कहु फेरी आरण।
रति जपइ हो मदन भड कहु पौरिषु अप्पारणु ॥६१॥
जिरिण सकरु इदु हरि बमु,
वासिगु पयालि जिसु, इदु चदु गहु मरण तारायरण।
विद्याधर यक्षसु गंधव्व सहि देव मण इरण ॥
जोगी जगम कापडी सन्यासी रस छंडि।
ले ले तपु बरण महि दुडिय ते मइ घलि बंधि ॥६२॥

दोहा

सुरिण करि पौरिष मुज्झु तरणा, चाल्यो मरण मरमाई।
समुहु अरिणय न जुज्झयउ, गयउ विवेकु पलाइ ॥६३॥

रड्ड

आरिणमंतु मिक भयउ विवेकु,
धम्मपुरि गउ चडिउ सर्वनि समभाउ दीयउ।
परतापैं गरजियो, सूरजिब उद्योतु कियो।
जीवंतउ वैरी गयउ, देखुजि करिही जोतु।
तां तू मदनु न मोह भडु दुहु ठवावइ थोतु ॥६४॥

दोहा

ढंढोलिव लीन्धो[1] भुवण बलु लिखउ सुहडाइं।
सोमइ कहूँ न दिक्खिउ सो जुज्झु पकडइ बाहु ॥६५॥

बडहू बडेरी पिरथवी, घर महि बल्लहि कासु।
तब बल पौरिष कंत तुब, जे जित्तहिं मादीसु ॥६६॥

जब तिनि नारि बिछोहियउ, तब तमकिउ तिसु जीउ।
जगु पजलंती अग्गि महि, लेकरि चालिउ घीउ ॥६७॥

कबित्तु

कामदेव का धर्मपुरी की ओर प्रस्थान—

रोम रोम उल्लसिया, त्रिकुटि चडिय निल्लाडिय।
गुरणाउ जिउ सिंघु चालि चललिय अंगडाइये ॥
विसहर जिउं फुंकरइ, लहरि ले कोयइ चडियउ।
जिव पावस घण मत्त तिवसु गज्जवि गड अडियउ।
नहु सहिय तमतिसु तिय किय, मछ तुछ जलि जणु तलिउ।
श्री धम्मपुरी पट्टण दिसहि, तवसु दुट्ठ मनमथु चलिउ ॥६८॥

गाथा

चल्लियउ रवइणाहो, सुंदरि वरि वयण चित्त मज्झमि।
कलि कालि तासु सुणियउं, उट्ठियउ मोह भडु जाइ ॥६९॥

उट्ठि उठ्यो मोह राउ, छिट्ठिउ नर सूर बीर परचंडो।
तू कवण कत्थ वासहि, कहू आयो कवण कज्जेण ॥७०॥

---

1. लिणिउ क प्रति, लिणि ख प्रति

रड[1]

सुणहू स्वामीहउ सुकलिकालु
बस खेत्तहि संचरिउ, मइ[2] प्रतापु आपणें कियउ ।
विवेकु दुडाइयउ, मुकति पंथु चलण न दीयो ।
कोडाकोडी अट्ठदस सायर मइवलु कित्त ।
आदीस्वर भय भम्मियउ, इव तुम्ह सरणि पहूत्त ।।७१।।

दोहा

आइ पडिय तिहि[3] अवसरिहि, पुरषहि सीझहि काम ।
कलीकालि पच्चारिउ, मोहू तमक्किउ ताम ।।७२।।

पद्धडीय छंदु

तमकायउ तिनि भडु मोहू जाइ, पुणु माया तह ठेलै बुलाइ ।
जब बैठे दूनउ एक सत्थु, कलिकालु कहइ जब जोडि हत्थु ।।७३।।
तुम्ह पूत मदन अति चडिउ तेजि, मन माहि न देखिउ सो आगेजि ।
घर माहि वडत तिनि नारि दुट्ठि, मारत्तउ न कियउ वेगि उट्ठि ।।७४।।

कामदेव का प्रभाव—

नहु सहीय तमक मनमथ प्रचडु, उत्तरिउ जाइ तितु घोर कुडु ।
सो घोर कुंड दुद्धरु अगाहु, जलु रुहिरु पूई भरियो अथाहु ।।७५।।
मय भीम भयकर पालि जाहु, आसाता वेयणि नलनि ताहु ।
जह बिरख तिक्ख करवाल पत्त, झडि पडहि तुट्टि छेदहि सिगात्त ।।७६।।
जह ढख कंख पखियन नेहु, जिन्ह चुंच संडासिय भखहु देह ।
जितु लहरि अगनि झाला तपाइ, खिणुमहि सतनु घालहि जलाइ ।।७७।।
करि मगर मछ ए दुट्ठ जीय, तिसु भीतरि ते पुण लेइ दीय ।
वै परमाधरमी बधिक जाणि, ते घालि जालु काढति ताणि ।।७८।।
इक लो कुहाड कूकहि गहीर[4], ते खड खड करि घालहि सरीरु ।
जह तपा तपहि नित लोह थंभ, जिन्ह लावहि अगिजि घलिय बभ ।।७९।।

---

१ ग प्रति में रड के स्थान पर वस्तु बन्ध छन्द का नाम दिया है ।
२ मैनू (ख प्रति)
३. तित्त (क, ख प्रति)
१. अहीर (क प्रति)

थाइयइ सु ता बालाइ सुद्ध, मदि मासि जिहुं तिय जीव लुद्ध ।
तह घाट विषम कुंभी गहीर, तिसु माहि पचावहि ले सरीर ॥८०॥
सिरु तलै करहि उपरि सि पाउ, वै घालहि सबल निसंक घाउ ।
भाले करि पीडहि घाण माहि, रड बडहि रडहि बहु दुखु सहाइ ॥८१॥
वैं छेयण भेयण ताडणह ताप, वैसहहि जीय जिनि कीय पाप ।
जिनि अन्यामानी मोह राइ, तिवु सुर मज्जहि तेह जाइ ॥८२॥
तह स्वामि उत्तारिउ मयण कीय, मइ आइ सारथयह तुम्ह दीय,
धम्म[२]पुरु गढु अति विषम ठाणु, तिस उप्परि चलिउ करि बिताणु ॥८३॥
इव आइ जुडियइहु विषम संधि, उहूं सक न मानइ जीति कधि ।
उहु अप्पु अप्पु अप्पउ भणाइ, उहु अवरि कोडि नबडि गिणाइ ॥८४॥
आदीसुरस्यउ मिल्लिउ बिबेकु, उहुं वैसि कियउ दूहु मंतु एकु ।
अप्पणउ दाउ सहुको गणंति, को जाणइ पासा किं ढलति ॥८५॥

दोहा

इती बाय सुणेबि करि, चित्ति उप्पणउ कोहु ।
सधनु सवै संवूहि करि, इव भडु चल्लिउ मोहु ॥८६॥

रड

मोह का साथ होना —

मोहु चल्लिउ साथि कलिकालु,
तहहूं तउ मदन भडु, तह सु जाइ कुमतु कियउ ।
गढु विषमउ धम्मुपुरु, तहसु सधनु सवूहि लियउ ।
दोनउ चल्ले पैज करि, गव्वु धरिउ मन माहि ।
पवण प्रबल जव उछलहि, घण घट केम रहाहि ॥८७॥

गाथा

रहहि सुकिउ घण घट्टं, जुडिया जह सबल गजि थट्ट ।
सवखिडि चले सुभट, पयाणउं कियउ भड मोहं ॥८८॥

रासाछंदु

करिवि पयाणउं मोहु भड चल्लियउ ।
समुह भखाज बालबधूलउ झुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कुंभ घ्याह तरुणि दिय ।
ले आइ तहु अग्गि घूघतिय रडतिय ॥८९॥

---

२. धर्मपुरी

अपशकुन होना—

मुंडिय सिरु नर न कटउ हथि कपालु जिसु ।
समुहुई छीक पयाणउं करत तिसु ।
तिण तुस चम्म कपास कद्दम्म गुड लवणा ।
मोहु चलतं तिसु नगर हू दीठे ए सवणा ॥६०॥

प्रथम मजलि चलत सुफौही फौकरई ।
नाइक बाझहु मालउ बत्तीसी अगुसरइ ।
वावइ काला विसहरु मैसिहूं फगु हुणई ।
सुक्क विरषतहि जुगिणि बोलइ दाहिणए ॥६१॥

सवणन सुपिनउ मानइ, चडिउ गविभ्रते ।
कज्ज बिणासण भ्रवसरि पुरुषहु डिगय मते ।

धर्मपुरी के दर्शन होना—

मजलि मजलि करि चलिउ, धम्मपुरी दिसहि ।
आगम ध्यातम सार जणाइय वेचरहि ॥६२॥

दोहा

आगम ध्यातम बिभ्रिचर तिन्ह जणायउं ।
आइ तुम्ह उप्परि पल्याण्यो, स्वामी मनमथु राइ ॥६३॥

गाथा

सुणिय बात मणरसु उपायउ ।
मरुवत्तणु न वकीवु बुलायउ ।
सार देइ बिव्वेक बुलावहु ।
सभा जोडि सुहु मतु उप्पावहु ॥६४॥

कवित्तु

विवेक की सेना—

सम दम सबरु ढुकु ढुकु वैरागु सवलु दलु ।
बोहि तत्तु परमत्थु सहण सतोष गब्भवभर ।
षिमा सु अज्जउ मिलिउ मिलिउ मद्दउ मुत्तिसउ ।
सजमु सुत्तु सउच्चु आयउ किंचणु बंभवउ ।
बलु मडि मिलिय करुणा भटलु मासण बिण बधाइयउं ।
ले फौज सबलु सवूहि करि इव विवेक भडु आइयउ ॥६५॥

हक्कारिउ सुभट चारितु सज्जिउ तपु सैनु सवलु संबूहि ।
गहु गहुउ जैत चित्ति, इव चल्लिउ रिसहु जिणराहि ।।९६।।

चल्लिउ रिसहु जिणदु स्वामी, विहिसिया मनु कवलु ।
तिसु पंथि सनमुष आइया, नाथि यामै मतु धवलु ।
मृदग तूरा संष भेरी झल्लरी झंकारु ।
दाहिणइ सुंदरि सबद मंगल, गीय करहि उचारु ।।९७।।

ले हत्थि पूरणु कलसु लक्षिमी, मीलिय सनमुष आइ ।
पावकु दीपग्गु जोति समसरि देषिया जिण राइ ।
सव रच्छ सुरही अति अनूपमु, काढ तासु गुवालु ।
पयसंतु पवलिहि दिट्ठु नरवइ, करगहै करवालु ।।९८।।

निलटतु वावइ वोलिया चढि सुफल बिरखहि वाइ ।
इकु निवलु जुगलु पलोइया सावडू चडिया आइ ।
गरजत सुणिया केसरी सिरि धस्या चवरु उठाई ।।९९।।

दुइ दिट्ठ गयवर अति सउज्जल करत गल गरजारु ।
आवंत फल नारिंग निहाले अवर कुसमहि हारु ।
सब सवण सुपन संजोग उतिमालबधि पीतइ जाम ।
जे नीति मारग पुरष चालहि तिनहि सीझइ काम ।।१००।।

रड

हुइय उत्तिम सवेरा जाम
गढ पाषलि उत्तरिउ, सुमति पंच सा बाण छाइयं ।
मनुसूरहु गह गहिउ, जाम नीसाण परगढ बजाइय ।
दोनउ ढुक्किय सवल दल, जुडिय सुभट मुख मोडि ।
रण दिट्ठहि जे नर खिसहि, तिनकी जननी खोडि ।।१०१।।

पद्धडीय छन्दु

तिन्ह जननि खोडि जे भजि जाहि, पच्चारिय नर पौरिषु कराहि ।
रण अगणु देखहि सूरवीर, पे रुणिय जेव नच्चहि गहीरु ।।१०२।।

आइयउ पहिल अन्यान घोरि, उट्ठि न्यान पछाडिउ करिवि जोरु ।
मिथ्यातु उठिउ तव अति करालु, जिनि जीउ रुलाउ अनत कालु ।।१०३।।

चल्लिउ कुमग्गहि लोउ तासु, तिनि मुसिउ न कोको को विस्वासु ।
अनादि काल जो नरहु सल्लु, उहु मिडइ सुभटुए कल्लु मल्लु ।।१०४।।

युद्ध का वर्णन —

लोगालोगोचरु　दुहु　पयार ।
जिसु सेवत भमियइ गति चयारि ।
समिकतु सुसूरु तब दिट्ठु होइ ।
बलु मंडि रणहि जुट्टियो सोइ ॥१०५॥

फाटियो तिमरु जब देखि भानु ।
भगियो छोडि सो पढम ठाणु ।
उठि रागु चलिउ गरजत गहीर ।
वैरागि हणिउं तणि तासु तीरु ॥१०६॥

उठि धाइ दुसहु तव विषइ लगु ।
पचखाणु देवलु परइ भगु ।
उठि कोहु चलिउ झाला करालु ।
तब उपसमु ले हणियो करवालु ॥१०७॥

मद् भट्ठु सहित गजिउ मानु ।
जिनि मद्दवि जित्ति कर बिताणु ।
तब माया भति उट्ठी करूर ।
मलि अजज बिदिन्नी होट्ठु चूरि ॥१०८॥

बाईस परीसह उठेय गज्जि ।
दिखि देखि धीरजु सुभटु जि गईय भज्जि ।
आइयउ कलहु तह कलकलाइ ।
दुडि गयउ दुसहु तिसु खिमा धाइ ॥१०९॥

हुक्कियउ झूट्ठु मूरिखु अगेजु ।
सति राइ गवायो तासु तेजु ।
कुसीलु जु होत दुट्ठु चित्ति ।
बलु करि बिदारिउ बभदत्त ॥११०॥

दलु चलियउ मोहहु मुख फिराइ ।
तब लोभु सुभटु भो जुडिउ आइ ।
तिणि दारुणि बलु मडिउ बहुतु ।
उन बिकट बुधि सिहू दिनी सुधुत्त ॥१११॥

उहु बुषी करइ नित पुरिष सत ।
उहु व्यापि रह्या सहु जीव जंता ।

उहु लडइ खिणहु खिणि भज्जि जाइ ।
बलु करइ बहुडि संवरइ माइ ॥११२॥

दसमें गुणठाणो लगु चडेइ ।
बलु करइ अधिकु बहु जाण देइ ।
तिसु देखि पराक्रमु खलिय राइ ।
संतोषु तबसु उद्विअउ रिसाइ ॥११३॥

तिसु सीसु हण्या ले बज्ज दंडु ।
खंड हुडिउ लोभु पडियो प्रचंडु ।
एहु देखि जूदधु सो कलियकालु ।
खिण माहि फिरिउ नारदु बितालु ॥११४॥

तिनि तजिय कुमति सुहमति उपाइ ।
बिव्वेकु सहाई हुयउ आइ ।
जो चलन न दित्तउ मुत्ति मग्गु ।
कर जोडि सुस्वामी चलण लग्गु ॥११५॥

आसरउ उठिउ सव विधि समत्थु ।
रण मज्झि भउ करि उब्भ हत्थु ।
संवर वलु आणिउ ताम चित्ति ।
तिमु खोइय मूलि उप्पाडि घित्ति ॥११६॥

बहु भिडिय सुभट रण महि पचारि ।
के भग्गिय के घल्लियसि मारि ।
दल माहि जु क्रम हुतिय प्रचडु ।
तप सूर किये ते खड खड ॥११७॥

जब बात सुणीयहु मोह राइ ।
तब जलिउ बलिउ उट्ठिउ रिसाइ ।
करि रत्त नयण बहु दंत पीसि ।
अनिहाउ पडिउ जण तुट्टि सीसि ॥११८॥

बहु कहि रूपि स्मे डह्यो आप्पु ।
सो बहुल करइ जीयहु संतापु ।
रै मडिउ सु रणमहि दुसहु धाइ ।
उस समुहु न ढुक्कइ कोइ आइ ॥११९॥

वस्तु बन्ध

को न ढुक्कइ समुद्द तिसु आइ ।
बलु पौरिषु सबु हरिउ मलइ—
अमल सो अचल चालइ ।
बैरागहु चरितहु तपहु अवरु संजमहु टालइ ।
अट्ठाइसै पगल जिसु लगाइ जिस कहू धाइ ।
सो नरु जम्मणु मरणु करि बहूतं जोणि भमाइ ।।१२०।।

तब बुलाय देवु आदीसु,
बिव्वेकु सबलु भडु' अप्पुवकारणि थानिकि बइट्ठिउ ।
अवगजनु मोहको, न्यान बुद्धि अवलोइ देषिउ ।
पेरिउ तब तिनि सीख कहि, दे असिवरु मुहु भाणु ।
वेगि वियारहु धुत्त दुइ, जिउ प्रगटै निव्वाणु ।।१२१।।

गाथा

प्रगटावण पहुमतो, चडियो वव्वेकु सज्जि भोवालो ।
लो सरर्यान्न चलणि लग्गिवि, लेउ नमतु चलियउ एव ।।१२२।।

चौपाई

उन्मतु लै चल्लिउ मनमहि खिल्लिउ ।
उपजी बहुत समाधि रणि रगणि आयो ।
साधहु भायो नाठी कुमति कुव्याधि ।
रजिय सुहु सज्जणि जिव पावस घण ।
दुज्जण मथै तालो मोहहु मौषंडनु ।
न्यानहु मडनु चडिउ बिवेकु मुवालो ।।१२३।।[1]

उस बाभहु जे नर, दीसहि रत खर किर्त्त किसहि न काजे ।
जिन्ह कहु प्रसन्ना पुछिल्ल पुन्ना, ते राणे ते राजे ।
ते अविहउ मित्तहु निम्मल चित्तहु, बिगसत बचन रसालो ।
मोहहु मौषडणु न्यानहु मंडनु चडिउ बिवेकु मुवालो ।।१२४।।

---

१ क और ग प्रति की छन्द संख्या में अन्तर है

जो दलि बलि पूरा, सव विघिसूरा, पंचह महि प्रवीणो।
परमत्थह बुज्झइ आगमु सुज्झइ बम्भि ध्यानि नित लीणो।
जो फेडइ दुर्गति आर्णी सुहगति बहु जीवह रखवालो।
मोहहु मौखडनु न्यायुह मंडनु चडिउ विवेकु भुवालो ॥१२५॥

जो दव्वह खित्तहि, जाणँ छित्तिहि काल भावसु विचारइ।
नयसुत्तिहि सत्थहि भेयहि ग्रत्थहि संकट विकट निवारइ।
जो आगम विमासइ निरतउ भासइ मदन खनन कुद्दालो।
मोहहु मौखडनु न्यानह मडनु चडिउ विवेकु भुवालो ॥१२६॥

छप्पदु

पाप पटलु निद्दलनु जोति परमप्पय कासणु।
चिंता मणियहु रमणु भवियण जण मन उल्हासणु।
सकल कल्याण कोसु, सवइ आरति भय खिल्लणु।
जडिगत जीव अवठंभि, भार घम्म धुर भुल्लणु।
सतुट्ठ होइ जि सुर नर, मिलिउ तासु न पडइ कम्मपहु।
चडिउ विवेकु इव सज्जि भडु, करण प्रगट निव्वाण पहु ॥१२७॥

पद्धडिय छंदु

मोह एवं विवेक के मध्य युद्ध—

परगटणु मग्गु निव्वाणु कज्जि।
विवेकु सुभटु तव चडिउ सज्जि।
तव ढोयो कीयो तेनि आइ।
मुहु मोडि चलिउ तब मोहु राइ ॥१२८॥

देखिउ मदनु जव खिसत मोहु।
तव चल्लिउ अप्पु मनि करि विछोहु।
उइ दोनउ दुक्किय काल कंघि।
तव भिडिय रणागणि फौज बंघि ॥१२९॥

वै अणिय जोडि जुज्झिय भुवाल।
तब पडहि खग्गजणु असणु झाल।
ए तेजल्हेस्या गोलै मिलंति।
सिसीय उल्हेस्या झाला झलंति ॥१३०॥

वैर हीय सुभट्ट अच्चल्ल होइ ।
दुहु माहि नपिछौड खिसई कोइ ।
जब देखिउ बलु दुधरु अगाहु ।
तब सजमि रथि चडि चलिउ नाहु ।।१३१।।

छंदु रंगिका

आदिनाथ की कामदेव पर विजय—

जिणु सजमु रथहि चडि तिन्नि गुत्ति गय गुडि ।
मिलिय सुभट जुडि पच वरत खिमा आडणु समुहु धरि ।
ग्यानु करवालु करि समिकतु तारिण सिरि तवि उत्थित ।
छुटि अगम सकल सार कुमति कथानर कपति घणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट, आदिनाहु सिरिसट ।
देइ कर दहु वट प्रथम जिणो ।।१३२।[1]

सेतुरचा भावन भाइ, मत्त धु जलहकाइ ।
मिलिय राणिय राइ, छत्तीस गुण अनुप्रेक्षा पाइ कवार ।
सील सहस अगठार, बस विधि धम्मचार ।
सवल घण वैठो ओदसमे गुणगणु ।
देखिय अन्तर ध्यानि गति थि सब जाणि कहइ गुणो ।
भागु भाजु रे मदन भट आदिनाहु सिरि सरट····जिणो।।१३३।।

तिनि रतन जो से निकसि बभु बरत धारि असि ।
नफीरी बाजहि जसि, गहिर सरोदयारहिय पोरिख पूरि ।
भागिय हिंसा दूरि बलु उपसनु सूरि कियो ।
नरो ए जु अतीसह .तीसधारि, परि जेति बंध कारि ।
मतु सुध्यानु धरि राखिउ मणो, भाजु भाजु रे मदन भट ।
आदिनाहु सिरसट देइ कर दहु बट प्रथम जिणो ।।१३४।।

घालिउ समर कटकु फंदि, मोहु राउ कियो बंदि ।
कसाइ चारि निन्द बहिहा भडमद मैगल किय निपातु ।
चालिय भागि मिथ्यातु मुडिय घडा धम्म सुरति भाट पढति ।
दु दही देव बाजति सुरहु तीय गावति सासण गुणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट·········प्रथम जिणो ।।१३५।।

---

१. क प्रति में १३२ की सख्या नहीं दी गई है ।

कवित्त

चडिउ कोह कंदप्पु, अप्पु बलु अवर न मानइ।
कुंदइ कुरलइ तसइ, हसइ सुभटह अवगण्णइ।
ताणि कुसमु कोवंड भवरडह संडह दल।
बंभई सहरि दैत तिन्ह रखिय तिन्हक।

कवि बल्हणु जयंतु जंभमु घटलु।
सरकिय अवरु तिसु सरइ कोइ।
असि झाण हणिउं श्री आदिजिण।
गयउ मयणु दह वट्ट कुहुइ ॥१३६॥

वस्तु बन्ध

दुसहु बद्धउ मोहु प्रचंडु, भडु मयणु निविसयउ।
कलिय कालि तव पाडि लियउ, आनंदु निर्वत्ति मनि।
विवेक जसु तिलकु दीयउ, जे वडवडे धम्म के ते सव।
घाले बंदि चेयणुराउ छुडाइयउ, स्वामी आदि जिणंदु ॥१३७॥
छुट्टि चेयणु हुवउ मणु महजि,
सह खुल्लिय धम्मदर, समाधि आगम जाणियउ।
रवि कोट अनत गुण, प्रगट जोत्ति केवलि दिपायउ।
सुरपति नरपति, नागपति मिलिय सैन सब आइ।
अन्या फेरन देसमहि दियउ विवेकु पठाइ ॥१३८॥
स्वामि पठायउ राउ विवेकु
सो देसहि सचरिउ, उसभ सेणिकहु वेगि बुलावहु।
सो थप्पिउ गणहपत्ति, सुत्तु अत्थु तिसु कहु सुणायउ।
इकु धम्मु दुहु बिधि कह्यो, सागारी अणगारु दे।
संखेपहि इव कहियउ, भवियहु सणहु बिचारु ॥१३९॥

कर्म का विवेचन—

मिलि चउबिहु संघहु आइ,
बहू देवी देवसह, तिय आंचमि हुइय इक्कट्ठिय।
करि बारहु परिखधा, ठामि ठामि मंडिवि वइट्ठिय।
वाणीय निम्मल अमियमै, सुणि उपजै सुह झाणु।
भवियणु मनु गहि गहिउ स्वामी करइ बखाणु ॥१४०॥

थिति पर्यासिय लोउ अलोउ,
पुणु भासिय अथि जो, नत्थि हु ति ते नत्थि भासिय ।
पुण्णि कारणि बहु बिधि कहिउ, जो जो जिसीय करेइ ।
सो सो तिवहि मेलि दल, सा सा गति भोगेइ ।।१४१।।

महारंभ पारभ करि परिग्गहु मिलवहि ।
पच इंदिय वसि करहि मद मासि चितु लावहि ।
इसे सुख के फल पाप न पुन्न विचारहि ।
सो नरु नर गेहि जाइ मणुव जम्मतरु हारइ ।।१४२।।

बहु माया केवलहि कपटु करि पर मनु रंजइ ।
अति कूडिहि अवगूढ़ करिवि छल परजीवह वचइ ।
मुहि मीछा मनि मलिन पंच महि भला कहावइ ।
इन कम्महि नरु जाणि जूनि तियजचह पावइ ।।१४३।।

भद्द प्रवृत्ति जे होहि ध्यान आरति न चहुँटहि ।
अनुकपा चिति करहि विनउ रति मुखा भाषइ ।
पचदह दहइ सरल प्रणामि, मनि न आणहि मछर गति ।
कहहि खरवन्नि पावहि सुगति राग सजम दहु पालहि ।।१४४।।

सावय धम्म जे लीण दिस समूह निहालइ ।
विण रुचि जे निजरहि वालयण तवु साधहि ।
इनु भाइ जिणराइ कह्यउ देवह एति वाधहि ।।१४५।।

रड छद

मणहु सवै चित्त धरि भाउ,
निज समकितु सद्दहहु, देउ इक अरहत सेवहु ।
आरंभ पारंभ बिनु, सुगुरु जाणि निग्रन्थ सेवहु ।
भासिउ धम्मु जु केवलिय, सो निश्चइ जाणेउ ।
तिन्ह बरत सजम नेमि तिन्ह, जिन्ह पहिला थिरु एहु ।।१४६।।

थूल पाण मम भखहू थूल कूडउ मम भासहु ।
थूलु अकत्तु मलेहु देखि परतिय वितु तासहु ।
परिगहु दिउह पमाणु, भोगउपभोग संखेवहु ।
अनर्थदंडिबिमाछु, नमउहू सामाइकु सेवहु ।।१४७।।
ख प्रति

थूल पाण मम वहहु, थूल कूडवो मम भासहु ।
थूल अदत्तमलेहु, देखि परतिय तन तासहु ।
परिगहु विगहु पमाणु, भोग उपभोग संखवेहु ।
अनथदंड प्रमाण, नित्य सामाइकु सेवहु ।
पसंरसु सुमनु दसमहि दमहु, पोसहु एकादसि धरहु ।
आहार सुद्ध चित्त निम्मलइ, असंविभाग सावहु करहु ।।१४७।।

मडिल्ल

पहिली प्रतिमा दंसण धारहु, बीजी व्रत निम्मल उच्चारहु ।
तीजी तिहुं कालहि सामाइक, चौथी पोसहु सिव सुख दायक ।।१४८।।
पंचमी सकल सचित्त विवज्जइ, राईभोयणु छट्ठीयन किज्जइ ।
सप्तमी बंभ वरत दिढु पालहु, अट्ठमी आपणु आरमु टालहु ।।१४९।।
नवमी परगहु परइ मिलीजइ, सावध वचनु दसमी दीजइ ।
एकादसमी पडिमा कहि परि, रिषि जाउ ले भिक्षा पर घर फिरि ।।१५०।।

दोहा

इव जे पालहि भावस्युं इहु उत्तिम जिण धम्मु ।
जग महि हूवउ तिन्ह तणउं, नर सकयत्थउ जम्मु ।।१५१।।

रड

जंपि सक्कइ करहु तउ तिसउ
वलु मंडिवि देहस्यउ, अहव किपि जे नर सक्कहु ।
ता सद्दहु ध्यानु निजु, हीयइ धरत खिणु इक न थक्कहु ।
अते करहु सलेखणा, सव्वे जीव खमाइ ।
पालहु सावय सुख लहहु आण जिणेसुर राइ ।।१५२।।
सुणहु सावहु धम्मु हित करणु,
सो पालहु अलख मणि, सुग्गइ होइ दुग्गइ निवारइ ।
बुडत ससार महि, होइ तरंड खिण महि तारइ ।
बधियइ कम्म जि सुह असुह, जीय अनंतइ कालि ।
ते तप बलि सव निद्दलहु, जिव तरु कुंद कुदालि ।।१५३।।

षट् पद

छोडि इमकु आरंभु राग दोषह विहु तजहु ।
तीनि सल्ल परिहरउ, चारि कषाय विवज्जहु ।

पंच प्रमाद निवारि, छोडि पीडगु छक्काइहि ।
पंच सत्ति भय ठाणु, अट्ठ मद पडि सभा इहि ।
अवंभुत नव विधि आचहु, मिथ्या दस विधि परहरहु ।
रिषि सुणहु एव सरवन्नि कहिउं, इकु अप्पणु पउ उवरहु ।।१५४।।

इकु वसि करि आतमउ, विनि थावर तेग पालहु ।
आरहहु तैर थगा दिट्ठि, ते समिय निहालहु ।
पचइ चार चरहु दव्व छह विद्धि न लिज्जहु ।
सुत्त सत्त नय जाणि, मातु अडसमें गहिज्जहु ।
नव बंभ वडि दिढु राखीयइ, दस लक्षण धम्महम्महु ।
जिण भास इव मुनिवर सुणहु, गति न चारि इणि परिभमहु ।।१५५।।

सुमइ पच तिय गुत्त पचहु वैयारित परि ।
सजमु सत्त दह भेय, भेय बारह तपु आचरि ।
पडिमा हुइ दस सहहु, सहहु बाइस परीसहु ।
भावण भाइ पचीस, पापु सुत्त तजि नव वीसहं ।
तेतीस असाइण धल्लियहिं, जिण चौवीसइ थुति करहु ।
अट्ठाईस पगय भडु मोहु जिणु, इय सुसाय सिवपुरि सहहु ।।१५६।।

दिन्नु देसणा एह जिणराइ जह गणहरु सघ जाहु ।
भव्व जिय सबेउ आयउ किघ तित्थु चौविहहि ।
तित्थकरु तव नाउं पापउ, नामु गोतु फुणि वेयही ।
आउ सेसजिहु ति, तेखिउ करि सिवपुरि गयउ ।
सुख भोगवइ अनत ।।१५७।।

षट्पदु

जह न जरा न मरणु जत्थ पुणि व्याधि न वेयणु ।
जह न देहन न नेह जोति मइ तह ठइ चेयणु ।
जह ठइ सुक्ख अनंत न्यान दंसण अवलोवहि ।
कालु विणामइ सयलु सिद्ध पुणि कालहि खोवहि ।
जिसु वणु न गंधु न रसु फरसु, सबदु न जिस किसही लह्यो ।
बूचराजु कहै श्री रिसह जिणु सुथिरु होइ तह ठइ रह्यो ।।१५८।।

राइ विक्कम तणउं संवतु नवासिय पणरहसै ।
सरद[1] रुत्ति आसवज बखाणिउं तिथि पडिवा सुकलु पखु ।
सनि-सुवाद करु नखित्त् जाणिउं तितु दिन बल्ह पसंद्धयउ ।
मयणु जुझ् सुबिसेसु, करत पढत निसुणत नरहु ।
जयउ स्वामि रिसहेसु ।।१५९।।

सुभं भवतु ।। लेखक—पाठकयो ।। लिखांपितं बाई पारा स्वयं पठनार्थं कर्म्मं क्षयनिमित्तं । लिखंत देवपालु माली भलावरे की ।।[2]

□ □ □

---

१. सवद (क प्रति)
२. (ख प्रति)

२

संतोषजयतिलकु

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में 'संतोषजयतिलकु' की एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है। पाण्डुलिपि श्री दि० जैन मन्दिर नागदी, बून्दी के गुटके में कविवर बूचराज के अन्य पाठो के साथ संग्रहीत है जो पत्र संख्या १७ से ३० तक उपलब्ध है। तिलकु मे १२३ पद्य हैं। उसके लिपिकर्त्ता पांडे देवदासु थे जिनका उल्लेख 'चेतन पुद्गल धमाल' के अन्त में दिया हुआ है। पाण्डुलिपि शुद्ध, स्वच्छ एव सुन्दर है।

साटिक

मगलाचरण—

जा अज्ञान अधार फेडि करणं, सन्यानदी वंद्यवे।
जा दुख वहु कम्म एण हरण, दाइकसुग्गे सुहं।
जा देव मगुणा तियच रमणी, भव्विकख तारणी।
सा जै जै जिणवीर वयण सरिय वाणी अते निम्मल ॥१॥

रड

विमल उज्जल सुर सुरसणेहि,
सु भवियण गह गहहि, मनसु सरिजणु कवल खिल्लहि।
कल केवल पयडियहि, पाप पटल मिथ्यात पिल्लहि।
कोटि दिवाकर तेउ तपि निधि गुण रतन करडु।
सो अधमानु प्रसनु नितु तारण तरणु तरडु ॥२॥

तरण तारणु हरणु दुग्गयह,
करुणाकरु जीय सहि, भविय चित्त वहु विधि उल्लासणु।
अठ कम्मह खिउ करणु सुद्द धम्मु दह दिसि पयासणु।
पावापुरि श्री वीर जिणु, जब सुपहुत्तउ आइ।
तव देविहि मिलि सठयउ समोसरण वहु भाइ ॥३॥

इन्द्र का वृद्ध के वेष में गौतम गणधर के पास जाना—

अब सुदेसइ इंदु धरि ध्यानु,
नहु वाणी होइ जिण, तब सुक पट्ट मन महि उपायउ ।
हुइ बंभणु डोकरउ मच्चलोइ सुरपति आयउ ।
गोतमु गोतमु जह वसै अवर सरोतमु वीरु ।
तत्थ पहुतउ आइ करि मघवै गुणिहि गहीरु ।।४।।
थिवरु बोलइ सुणहु हो विप्प,
तुम्ह दीसइ विमलमति, इकु सन्देहु हम मनहि थक्कइ ।
नहु तै साके मिलइ आसुहु तयह गांठि चुक्कइ ।
वीरहु ता मुज्झ गुरु मोनि रह्यालो सोइ ।
हउ सलोकु लीए फिरउ अत्थु न कहइ कोइ ।।५।।

गाथा

हो कहहु थिवर बभण, को अछै तुम्ह चित्ति संदेहो ।
खिण माहि सयल फेडउ, हउ अविरुल्लु बुद्धि पंडित्तु ।।६।।

षट्पदु

तीन काल षटु दव्वि नवसुपद जीय षटुक्कहि ।
रस ल्हेस्या पचास्तिकाइ व्रत समिति सिगक्कहि ।।
ज्ञान अवरि चारित्त भेदु यहु मूलु सु मुत्तिहि ।
तिहुवण-महवै कहिउ वचनु अहु अरिहि न रुत्तिहि ।।
यहु मूलु भेदु निजु जाणियहु सुद्ध भाइ जे के गहहि ।
समक्कत्तदिट्ठि मतिमान ते सिव पद सुख वञ्छित लहहि ।।७।।

गाथा

एय वयण सवणि संभलि, चमकिउ चित मज्झि पुरइ नहु अत्थो ।
उट्ठियउ झत्ति गोइमु चल्लिउ, पुणि तत्थ जय जिणणाहु ।।८।।

रड

तब सु गोइमु चल्लिउ गअंतु,
जणु सिधुरु मसमय तरक छंद व्याकरण अत्थह ।
षटु अगह वेयधुनि, जोतिक्कलंकार सत्थह ।।
तुलइ सु विद्या अतुल वलु चडिउ तेजि अति वंभु ।
मानु गल्या तिसु मन तणा देखत मानथंभु ।।९।।

गाथा

देखंत मान थंभो, गलियउ तिसु मानु मनह मझंम्मे ।
हूवउ सरल पणामो पुछ गोइमु विति संदेहो ॥१०॥

दोहा

गौतम द्वारा प्रश्न—

गोइमु पुछइ जोडिकर स्वामी कहहु विचारि ।
लोभि वियापे जीव सहि, तरिहि केउ संसारि ॥११॥

रड

भगवान महावीर का उत्तर—

लोभ लगगउ पाणवधु करइ,
अलि जपइ लोभिरतु, ले अदत्त जव लोभि आवइ ।
यहु लोभु बंभह हरइ, लोभि पसरि परगहु वधावइ ॥
पचइ वरतह खिउ करइ, देह सदा अनचारु ।
सुणि गोइम इसु लोभ का कहउ प्रगटु विथारु ॥१२॥

मूलह दुक्ख तणउ सनेहु,
सतु विसनह मूलु व कम्मह मूल आसउ भणिज्जइ ।
जिव इंदिय मूलु मनु, नरय मूलु हिंस्या कहिज्जइ ।
जगु विस्वासे कपट मति परजिय वछइ दोहु ।
सुणि गोइम परमारथु यहु, पापह मूलु सुलोहु ॥१३॥

गाथा

भमयउ अनादि काले, चहुंगति मझम्मि जीवु वहु जोनी ।
वसि करि न तेनि सक्कियउ, यह दारणु लोभ प्रचडु ॥१४॥

दोहडा

दारणु लोभ प्रचंडु यहु, फिरि फिरि वहु दुख दीय ।
व्यापि रह्या वलि अप्पइ, लख चउरासी जीय ॥१५॥

पद्धडी छंद

यहु व्यापि रह्या सहि जीय जंत, करि विकट बुद्धि परमय हुडंत ।
करि छलु पयर्त धूरत्त जेंव, परपंचु करिवि जगु मुसइ एव ॥१६॥

संकुडइ मुडइ वढलु कराइ, बगर्जेउ रहइ लिव ध्यान लाइ ।
ठग जेंव ठगी लिय सीसि पाइ, परचित्त विस्वासी विविह भाइ ।।१७।।

मंजार जेउ आसण बहुत्तु, सो करइ जु करणउ नाहि जुत्तु ।
जे वे सजेंव करि विविह ताल, मसि यावइ सुख दे वृद्धवाल ।।१८।।

लोभ का साम्राज्य—

आपणौं न औसरि जाइ जुभिक, तम जेंउ रहइ तलि दीव लुक्कि ।
जव देखइ झिगलइ जोति तासु, तब पसरि करइ अप्पणु प्रगासु ।।१९।।

जो करइ कुमति तब अण विचार, जिसु सागर जिउं लहरी अपार ।
इकि चडहि इक्कि उत्तरिवि जाहि, बहु घाट घडइ नित हीयै माहि ।।२०।।

परपचु करेइ जहरे जगत्तु, पर अप्पु न देखइ सत्तु मित्तु ।
खिण ही अयासि खिण ही पयालि, खिण ही क्रित मंडलि रंग तालि ।।२१।।

जिव तेल बुंद जल माहि पडाइ, सा पसरि रहे भाजनह छाइ ।
तिव लोभु करइ राई सचारु, प्रगटावै जगि में रह विथारु ।।२२।।

जो अघट घाट दुघट फिराइ, जो लगड जेव लंगत धाइ ।
इकि सत्रणि लोभि लग्गिय कुरंग, देहि जीउ आइ पारधि निसंग ।।२३।।

पत्तंग नयण लोभिहि भुलाहि, कंचण रसि दीपग महि पडाहि ।
इक घाणि लोभि मधुकर भमंति, तनु केवइ कटइ वेधियति ।।२४।।

जिह लोभि मछ जल महि फिराहि, ते लग्गि पणव अप्पणु गमहि ।
रसि काम लोभि गयवर भमति, मद अंधसि वध बंधन सहंति ।।२५।।

इक इक्कइ इंदिय तणे सुक्ख, तिन लोभि दिखाए विविह दुक्ख ।
पंच इंदिय लोभिहि तिन रखुत्त, करि जनम मरण ते नर विगुत्त ।।२६।।

जगमसि तपी जोगी प्रचंड, ते लोभी भमाए भमहि खंड ।
इंद्राधिदेव बहु लोभ मत्ति, ते बंछहि मन महि मणुवगत्ति ।।२७।।

चक्कवै महिय हुइ इक्क छत्ति, सुर पदइ बंछहि सदा चित्ति ।
राइ राणो रावत मंडलीय, इनि लोभि वसी के के न कीय ।।२८।।

वण मज्झि मुनीसर जे बसहि, सिव रयणी लोभु तिन हियइ माहि ।
इकि लोभि लग्गि पर भूमि जाहि, पर करहि सेव जीउ जीउ भणाहि ।।२९।।

सकुलीणो निकुलीणह दुवारि, लेहि लोभ झिगाए कर पसारि ।
वसि लोभि न सुणही धम्मु कानि, निसि दिवसि फिरहि आरत्त ध्यानि ।।३०।।

ए कीट पडे लोभिहि भमाहि, संचहि सु अन्नु ले घरणि माहि ।
ले वनरसु हूंतै लोभि रत्त, मखिकासु मधु संचइ बहुत्त ।।३१।।
ते कियन पडिय लोभह मझारि, धनु संचहि तै धरणी मडारि ।
जे दानि धम्मि नहु देहि खाहि, देखत न उठि हाथ झाडि जाहि ।।३२।।

गाथा

जहि हत्थ झाडिकि वणं, धनु संचहि सुलहि करिवि भंडारे ।
तरहि कैव ससारे, मनु बुद्धि ऐ रसी जांह ।।३३।।

रड

वसइ जिन्ह मनि इणिय नित बुद्धि,
धनु विढवहि डहकि जगु, सुगुर वचन चितिहि न भावइ ।
मे मे मे करइ सुणत धम्मु सिरि सूलु आवइ ।।
अप्पणु चित्त न रंजही जणु रजावहि लोइ ।
लोभि वियापे जेइ नर तिन्ह मति अैसी होइ ।।३४।।

गाथा

तिन्ह होइ इसिय मत्ते, चित्ते अय मलिन मुहुर मुहि वाणी ।
विदहि पुन्न न पावो, वसकियो लोभि ते पुरिष ।।३५।।

मडिल्ल

इसउ लोभु काया गढ अंतरि, रयणि दिवस संतवइ निरंतरि ।
करइ ढीठु अप्पणु वलु मंडइ, लज्या न्यानु सीलु कुल खंडइ ।।३६।।

रड

कोहु माया मानु परचड,
तिन्ह मज्झिहि राउ यहु इसु सहाइ तिन्निउ उपज्जहि ।
यहु तिव तिव विप्फुरइ, उइ तेय बलु अधिकु सज्जहि ।।
यहु चहु महि कारणु करणु, अव घट घाट फिरतु ।
एक लोभ विणु वसि किए, चौगय जीउ भमंतु ।।३७।।

जासु तीवइ प्रीति अप्रीति,
ते जग माहि जाणि यहु, जाणिउ रागु तिनि प्रीति नारि ।
अप्रीति हु दोष हुव, दहू कलाप परगट पसारि ।।
अज्ञा फेरी आपणी, घटि घटि रहे समाइ ।
इन्ह दहु वसि करि ना सकै, ता जीउ नरकि हि जाइ ।।३८।।

दोहा

कुम्प उत्रहु जैसे गरल, उपजे विष संजुत्त ।
तैसे जाणहु लोभके, राग दोष दुइ पुत्त ॥३९॥

पद्धडी छंद

दुइ राग दोष तिसु लोभ पुत्त ।
जाणहि प्रगट संसारि धुत्त ॥
जह मित्त तणु तह राग रंगु ।
जह सत्त तहा दोषहु प्रसंगु ॥४०॥

जह रागु तहा सरलउ सहाउ ।
जह दोषु तहां किछु बक्र भाउ ॥
जह रागु तह मनहु प्रवाणि ।
जह दोषु तहा अपमानु जाणि ॥४१॥

जह रागु तहा तह गुणहि श्रुत्ति ।
जह दोषु तहा तह छिद्र चित्ति ॥
जह रागु तहा तह पतिपत्तिट्ठु ।
जह दोषु तहा तह काल विट्ठु ॥४२॥

ए दोनउ रहिय वियापि लोइ ।
इन्ह वाभुन दीसइ महिय कोइ ॥
नित हियइ सिसलहि राग दोष ।
वट वाडे दारण मग्गहु मोख ॥४३॥

रड

पुत्त श्रेसिय लोभ धरि दोइ ।
बलु मंडिइ अप्पणउ, नाद कालि जिन्ह दुक्ख दीयउ ।
इंद आलु विखाइ करि, बसी भूत्त सह लोगु कीयउ ॥
जोगी जंगम जतिय मुनि सभि रक्खे लिवलाइ ।
अटल न टाले जे टलहि फिरि फिरि लग्गहि धाइ ॥४४॥

लोभ का प्रभाव—

लोभु राजउ रहिउ जगु व्यापि ।
चउरासी लखमहि जम जोउ पुणि तस्स सोइय ।
जे देखउ सोधि करि तासु वाझु नहु अरिथ कोइय ॥

विकट बुद्धि जिनि सहि मुसिय घाले कम्मह फंघ ।
लोभ लहरि जिन्ह कहु चडिय, दीसहि ते नर अंध ।।४५।।

दोहा

मणुव तिजंचह नर सुरह, हीडावै गति चारि ।
वीरु भणइ गोइम निसुणि, लोमु बुरा संसारि ।।४६।।

रड

गौतम स्वामी का प्रश्न—

कहिउ स्वामी लोमु बलिवंडु ।।
तव पुछिउ गोइमिहि इसु, समत्त गय जिउ गुजारहि ।
इसु तनिइ तउ वलु, को समथु कहुइ सु विदारइ ।।
कवण बुद्धि मनि सोचियइ कीजइ कवरण उपाउ ।
किसु पौरिषि यहु जीतियइ सरवनि कहहु सभाइ ।।४७।।

भगवान महावीर का उत्तर—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु ।
यह सासणु विम्मलइ, सुणत धम्मु भव वंध तुट्टहि ।
अति सूखिम भेद सुणि, मनि सदेह खिण माहि मिट्टहि ।।
काल अनतिहि ज्ञान यहि, कहियउ आदि अनादि ।
लोमु दुसहु इव जिजत्तयइ, सतोषह परसादि ।।४८।।

कहहु उपजाइ कह सतोषु ।
कह वासइ थानि उहु, किस सहाइ वलु इत्तउ मडइ ।
क्या पौरिषु सैनु तिसु, कासु बुद्धि लोभह विहंडइ ।।
जोरु सखाई भवियहुइ पयडावै यहु मोखु ।
गोइम पुछइ जिण कहहु किसउ सुभटु संतोषु ।।४९।।

संतोष के गुण—

सहजि उप्पजइ चिति संतोषु ।।
सो निमसइ सत्तपुरि, जिण सहाय वलु करइ इत्तउ ।
गुण पौरिषु सैनु धम्मु, ज्ञान बुद्धि लोभह जित्तइ ।।
होति सखाई भवियहुइ टालइ दुरगति दोषु ।
सुणि गोइम सरवनि कहउ, इसउ सूरु संतोषु ।।५०।।

रासा छंद

छूसउ सूर संतोषु जिनिहि घट महि कियउ ।
सकयत्थउ तिन पुरिसह, संसारिहि जियउ ।।
संतोषिहि जे तिपते ते थिर नंदियहि ।
इंदह जिउ ते माणुस महियलि वंदियहि ।।५१।।

जगमहि तिन्ह की लीह जि संतोषिहि रंम्मिय ।
पाप पटल अंधारसि अंतर गति दंम्मिय ।।
राग दोष मन मज्झि न जिणु इकु भाषियइ ।
सत्तु मित्तु मित्त अरि समकरि जाणियइ ।।५२।।

जिन्ह संतोषु सखाई तिन्ह नित चडइ कला ।
नाव कालि सतोष करइ जीयह कुसला ।।
दिनकरु यहु संतोषु विगासइ हिद कमला ।
सुरतरु यहु संतोषु कि वंछित देइ फला ।।५३।।

चिंतामणि सतोषु कि चित्त चितत्तु फुरइ ।
कामधेनु संतोषु कि सब कज्जह सरइ ।।
पारसु यहु संतोषु कि परसिहि दुक्खु मिटइ ।
यहु कुठारु संतोषु कि पापह जड कटइ ।।५४।।

रयणायरु संतोषु कि रतनह रासि निधि ।
जिसु पसाइ सडहि मनोरथ सफल विधि ।।
जे संतोषि समाणे तिन्ह भउ सब्बु गयउ ।
ध्रूमरेह जिउ तिन्ह मनु नितु निश्चल भयउ ।।५५।।

जिन्हहि राउ संतोषु सुलुद्धउ भाउ धरि ।
पर रमणी पर दब्बि न छीपहि तेइ हरि ।।
कूडु कपटु परपंचु तु चित्ति न खेलिहहि ।
तिणु कंचणु मणि लुद्धवि समकरि देलिहहि ।।५६।।

पियउ अमिय संतोषु तिन्हहि नित महा सुखु ।
लहिउ अमरपद ठाणु गया परभमण दुखु ।।
राइहंस जिउ नीर खीर गुण उद्धरइ ।
धम्म अधम्म परिख तेव हीयै करइ ।।५७।।

आवैं सुहमति ध्यानु सुबुद्धि हीयै भज्जइ ।
कलहि कलेसु कुध्यानु कुबुधि हियै तजइ ।।

लेइ न किसही दोसु कि कुए सब्वहु गहइ ।
पडइ न आरति जीउ सदा चेतनु रहइ ।।५८।।
जाहुन वक्क परणाम होहि तिसु सरल गति ।
इप्पजिउ निम्मलउ न, लग्गहि मलाए चित्ति ।।
सीस जिव जिन्हु पर किति सदा सीयलु रहइ ।
धवल जिव मरि कंधु गरुव भारहु सहइ ।।५६।।
सूरधीर वरवीर जिन्हहि संतोषु बलु ।
पुडयणि पति सरीरि न लिपइ दोष जलु ।।
इसउ अहं संतोषु गुणिहि वंनियै जिवा ।
सो लोभहु खिउ करइ कहिउ सरवन्नि इवा ।।६०।।

रड

कहिउ सरवन्नि इसउ संतोषु ।
सो किज्जइ चित्ति विहु जिसु पसाइ सभि सुख उपज्जहि ।
नहु आरति जीउ पडइ, रोर घोर दुख लख भज्जहि ।।
जिसु ते कल वडिम चडइ, होइ सकल जगि प्रीय ।
जिन्ह घटि यहु अवट्टी पिय पुन्न प्रिकिति ते जीय ।।६१।।

मडिल्ल

पुन्न प्रिकिति जिय सवणिहि सुणियहि ।
जै जै जै लोवहि महि भणिवहि ।।
मोहम सिउ परवीणु पयंपिउ ।
इसउ सतोषु भुवप्पति जंपिउ ।।६२।।

चंदाइणु छंदु

जंपियै एहु सतोषु भूवपति जासु ।
नारीय समाधि अत्थइ थिति ।।
जे सता सुंदरी चित्ति हे आवए ।
जीउ तत्तखिणे वछियं पावए ।।६३।।

संतोष का परिवार—

सवरो पुत्तु सो पयडु जाणिज्जए ।
जासु औलंबि संसारु तारिज्जए ।।
छेदि सो आसरै दूरि नै वारए ।
मुक्ति मभम्मिले हेल सचारए ।।६४।।

खलियं तासु को संभणा वज्जियं ।
  कुञ्जरहं तेच भंजेइ घासंमियं ।।
कोहि वणीगाहि दक्कति ते भरा ।
  ताहि संतोसए सोम सीयंकरा ।।६५।।
एहु कोटडु संतोष राजा तणो ।
  जासु पसाइ वज्झंति दंती मणो ।
तासु वैरिहि को कुढ्ढ ना आवए ।
  सो भडी लोभह लो जुग आवए ।।६६।।

दोहा

लो जुग वावइ लोभ, कउए गुणहृहि जिसु पाहि ।
सो संतोषु मनि संगहहु, कहियहु तिहु वणपाहि ।।६७।।

गाथा

कहियहु तिहु वणपाहो, जाणहु संतोषु एहु परमाधो ।
गोइम चिति दिढु कर, जिउ जित्तहि लोमु यहु दुसहु ।।६८।।
सुणि वीरवयण गोइमि, आणिउ संतोषु सूर घट मज्झे ।
पज्जलिउ लोहु तंखि खिणि, मेले चउरंगु सयनु अप्पणु ।।६९।।

रड

लोभ द्वारा आक्रमण—

चिति चमकिउ हियइ थरहरिउ ।
रोसाइणु तमकियउ, लेइ लहरि विषु मनिहि घोलइं ।
रोमावलि उद्धसिय कालकू इडुइ मुवह तोलइ ।।
दावानल जिउ पज्जलिउ नयण नि लाडिय चाडि ।
आजु संतोषहु खिउ करउ जउ मूलहु उप्पाडि ।।७०।।

दोहा

लोभहि कीयउ सोचणउ हुवउ आरति ध्यानु ।
आइ मिल्या सिरु नाइ करि झूठु सबलु परधानु ।।७१।।

षट्पदु

लोभ की सेना—

आयउ झूठु पधानु मंतु तसु खिणि कीयउ ।
मनु कोहु अरु दोहु मोहु इक युद्धउ बीयउ ।।

माया कलहि कलेसु थापु संतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ आइ अंढम्मि कियउ पखु ।।
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ रागि दोषि आइरु लहिउ ।
अप्पणउ सयनु बलु देखि करि लोहुराउ तब गहगहिउ ।।७२।।

मडिल्ल

गह गहियउ तब लोहु चितंतरि,
वज्जिय कपट निसाण गहिर सरि ।
विषय तुरंगिहि दियउ पलाणउ,
संतोषह दिसि कियउ पयाणउ ।।७३।।

आवत सुणिउ संतोष ततक्षिणि,
मनि आनदु कीयउ सुविचक्षिणि ।
तहु ठइ सयनह पति सतु आपउ,
तिनि दलु अप्पणु वेगि बुलायउ ।।७४।।

गाथा

वुल्लायउ दलु अप्पणु, हरषिउ संतोषु सुरु बहु भाए ।
जिसु ढार सहस अग, सो मिलियउ सीलु भडु आइ ।।७५।।

मोतिका छन्दु

संतोष की सेना—

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु न्यानु चारितु सँवरो ।
वैरागु तपु करुणा महाव्रत खिमा चिति संजमु थिरु ।।
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु द्धम्मु सो आकिंचणो ।
इव मेलि दलु संतोष राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७६।।

सासणिहि जय जयकारु हूवउ भगि मिथ्याति दडे ।
नीसाण सुत वज्जिय महाधुनि मनिहि कइर लडे खडे ।।
केसरिय जीव गज्जत बलु करि चिंत्ति जिसु सासण गुणो ।
इव मेलि दलु सतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७७।।

गज ढल्ल जोग अचल गुडियं तत्त हयहीसारहे ।
बड फरसि पचिउ सुमति जुट्टहि विनि ध्यान पचारहे ।।
अति सबल सर आगम्म छुट्टहि असणि जणु पावस घणो ।
इव मेलि दलु सतोषु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ।।७८।।

सा णाहु सीलु सुपहिरि अंगिहि कुंतु रतनत्रय कियं।
झलहलइ हत्थि विवेक असिवरु, छत्तु सिरि समकतु हियं।
इक पदम अरु तहु सुकल लेस्या चवर ढाहि निसिदिणो।
इव मेलि दलु संतोषु राजा लोभ सिउ मंडइ रणो ॥७६॥

षट्पदु

मंडिउ रणु तिनि सुभटि सैंनु समु अप्पणु सज्जिउ।
भाव खेतु तह रचिउ तुरु सुत आगमु वज्जिउ॥
पञ्चारचौ ध्यातमु पयड अप्पणु दल अंतरि।
सूर हियै गहगहहि धसहि काइर चित्त'तरि॥
उतु दिसि सु लोमु खलु तक्क वैवलु पवरिषु णियतणि तुलइ।
सतोषु गरुव मेरह सरिसु इसुकि पवण भयणिणु खलइ॥८०॥

गाथा

किं खलिहै भय पवणं, गरुवउ संतोषु मेर सरि अटलं।
चवरंगु सयनु गज्जिवि, रणि अंगणि सूर वहु जुडियं॥८१॥

तोटक छंदु

रण अगणि जुट्टिय सूर नरा, तहि वज्जहि भेरि गहीर सर।
तह वोलिउ लोभु प्रचंडु भडो, हुणि जाइ संतोष पयालि दडो॥८२॥

फिटु लोभ न वोलहु गव्व करे, हुण कालु चडया है तुम्ह सिरे।
तइ मूढ सतायउ सयल जणो, जह जाहि न छोडउ तय खिणो॥८३॥

युद्ध स्थल—

जह लोभु तहा थिरु लछिवहो, दरि सेवइ उब्भउ लोउ सहो।
जिव इट्ठिय चित्ति संतोषु करि, ते दीसहि भिष्य भयंति परे॥८४॥

जह लोभु तहा कहु कत्थ सुखो, निसि वासुरि जीउ सहंत दुखो।
सयतोषु जहा तह जोतिउसो, पय वदहि इंद नरिंद तिसो॥८५॥

सयतोष निवारहु गव्वु चित्ते, हुउ व्यापि रहा जगु मंडि थिते।
हुउ आदि अनादि जुगादि जुगे, सहि जीयसि जीयहि मुह्यु लगे॥८६॥

सुणु लोभ न कीजइ राडि घणी, सव थिसिउ पाइउ तुम्हं तणी।
हुउ तुज्झ विदारउ त्यागि खगे, सहि जीय पढावउ मुक्ति मगे॥८७॥

हुउ लोभु अचलु महा सुभटो, जगु मैं सहु जितिउ बंधि पटो ।
सभि सूर निवारउ तेजु मले, महु जित्तइ कौणु समत्थु कले ।।८८।।

तइ अत्थि सतायउ लोगु घणा, इव देखहु पौरिषु मुज्झ तणा ।
करि राडउ खड विहड घडी, तर जेवउ पाडउ मूढ जडी ।।८९।।

सुणि इत्तउ कोपिउ लोभु मने, तब झूठु उठायउ वेगि तिने ।
सा आयउ सूरु उठाइ करो, सतिराइहि छेदिउ तासु सिरो ।।९०।।

तव बीडउ लीयउ मानि भडे, उठि चल्लिउ समुह गज्जि गुडे ।
वलु कीयउ मद्दवि अप्पु घणा, खुर खोजु गवायउ तासु तणा ।।९१।।

इव ढुक्कउ छोहु सुजोडि अणी, मनि सक न मानइ और तणी ।
तव उट्ठि महाव्रत लग्गु वले, खिण मज्झि सु घाल्यौ छोहु दले ।।९२।।
भडु उट्ठिउ मोहु प्रचडु गजे, वलु पौरिष अप्पणु सैनु सजे ।
तव देखि विवेक चडया अटल, दह वट्ट किया सुइ भज्जि वल ।।९३।।

वहु माय महाकरि रूप चली, महु अग्गइ सूरउ कवणु वली ।
ढुक्कि पौरषु अज्जवि चीरि किया, तिसु जोति जयप्पतु वेगि लिया ।।९४।।

जव माय पडी रण मज्झि खले, तव आइय कक गजति वले ।
तव उट्ठि खिमा जव धाउ दिया, तिनि वेगिहि प्राणनि नासु किया ।।९५।।

अय ज्ञानु चल्या उठि घोर मते, तिसु सोचन आइया कपि चिते ।
उहु आवत हाक्या ज्ञानि जवं, गय प्राण पडया धर घूमि तव ।।९६।।

मिथ्यातु सदा अहि जीय रिपो, रुद रूपि चडया सुइसज्जि अपो ।
समक्कतु उह्या उठि जोडि अणी, धरि धूलि मिलया दिय चूर घणी ।।९७।।

कम्म अट्ठसि सज्जि चडे विषम, जणु छायउ अवरु रेणु भय ।
तपु भानु प्रगासिउ जाम दिसे, गय पाटि दिगतरि मज्झि घुसे ।।९८।।

जगु व्यापि रह्या सवु आसरयं, तिनि पौरिषु धीठिइत्ता करयं ।
जब सवरु गज्जिउ धारि घट, उहु झाडि पिछोडि किया दवटं ।।९९।।

रसि रागिहि घुत्तउ लोउ सहो, रण अंगणि लग्गउ मंडि गहो ।
बयरागु सुधायउ सज्जि करे, इव जुझि विताड्यौ दुट्ठु अरे ।।१००।।

यहु दोषु जु छिद्द गहति पर, रण अगणि ढुक्क उडाहि सिरं ।
उठि ध्यानिय मुक्किय अग्गि घण, खिण मज्झ जलायउ दोषु तिणं ।।१०१।।

कुमतिहि कुमारगि सयनु नडया, गय जेउं गजंतउ आइ जुडया ।
खिण मत्त परकय सिप परे, तिसु हाकसु णंत पयट्ठु धरे ।।१०२।।

परजीय कुसील जु कट्ठु करै, रण मज्झि भिडंतु न संक धरै ।
बभवत्त समोरणु धाइ लगं, कुरविंद जि बाणय पाटि दिगं ॥१०३॥
दुखहु तजितु गय देण सलो, साइजु दिउ आइ निसंक भलो ।
परमा सुखु आयउ पूरि घटं, उहु झाडि पिछोडि कियादवटं ॥१०४॥
बहु जुज्झिय सूर पचारि घणे, उइ दीसहि लुटत मज्झि रणे ।
किय दिनु रसातलि वीरवरा, किय तज्जि गए बलु मुक्कि धरा ॥१०५॥

राजा संतोष का आक्रमण—

मन दसण कंद रहंतु जहा, इकि भज्जि पइट्ठिय जाइ तहा ।
यहु पेतु संतोषह राइ चडया, दलु दिट्ठउ लोभिहि सैनु पडया ॥१०६॥

रड

लोभि दिट्ठउ पडिउ दलु जाम,
तब धुणियउ सीसु कर, अंध जेंउ सुज्झिउ न अग्गउ ।
जणु घेरिउ लहरि विषु, कच कचाइ उठि धाइ लग्गउ ॥
करइ सु अकरणु आकतउ, किंपिन बुज्झइ पट्ठु ।
जेरु चणउ अति उछलइ, तकि भडं भंनइ भट्ठु ॥१०७॥

गाथा

रोसा इणु थर हरिय, धरियं मन मझि रुद्द तिनि ध्यानो ।
मुक्कइ चित्ति न मानो, अज्ञानो लोभु गज्जेइ ॥१०८॥

रंगिक्का छंदु

लोभु उठिउ अपणु गज्जि, मंडिउ वलुनि लाजि ।
चडिउ दुसहु साजि रोसिहि भरे, सिरि तणिउ कपटु छतु ॥
विषय खडगु किउ, छदमु फरियलितु ।
संमुह धरे गुण दसमैइ ठाणु लगु ॥
जाइ रोक्यो सूर मगु ।
देइ बहुउ पसगु जगत अरे ।
अैसे चडिउ लोभ बिकटु, धूतइ धूरत नट्टु ।
संतवइ आणइ पटु पौरिषु करि ॥१०९॥
खिणु उठइ अणिय जुडि, खिणिहि चालइ मुडि ।
खिणु गयजेव गुडि लागइ उठे, खिणु रहइ गवनु छाइ ॥

खिरिणहि पयालि जाइ, खिरिण मचलोइ माइ ।
चउइ हूठे वाके चरत न जाणै कोइ व्यापैइ सकल लोइ ।
अनेक रूपिहि होइ, जाइ संचरै ॥
अैसे चडिउ लोभ विकटु धूतइ धुरत नटु ।
संतवइ प्राणहु षटु पौरिषु करै ॥११०॥
जिनि समि जिय लिवलाइ घाले ततबुधि खाइ ।
राखे ए वडहु काइ, देखत नडे ।
यहु दीसइ ज परवथु, देसु लोनु राजु गथु ।
जाण्या करि आप तथु लालचि पडे ॥
जाकी लहरि अनंत परि, घोरहु सागर सरि ।
सकइ कवणु तरि ।
हियउध, अैसे चडिउ, लोभ विकटु, धूतउ घूरत नटु ।
सतवैइ प्राणहु षटु पौरिषु करि ॥१११॥
जैसी करिणय पावक होइ, तिसहि न जाणइ कोइ ।
पडि तिण सगि होइ, कि कि न करै ।
तिसु तणिय विचिहिरग, कौणु जाणै केते ढग ।
आगम लग विलंग खिणि हि फिरै ।
उहु अनतप सारै जाल, कर इक लोल पलाल ।
मूल पेड पत्त डाल, देइ उवरै ।
अैसे चडिउ लोभ विकटु, धूतइ घूरत नटु ।
संतवैइ प्राणहु षटु पौरिषु करि ॥११२॥

षट्पदु

लोभ विकटु करि कपटु अमिटु, रोसाइणु चडियउ ।
लपटि दवटि नटि कुघटि झपटि झटि इव जगु नडियउ ॥
धरणि खंडि ब्रह्मडि गगनि पयालिहि धावइ ।
मीन कुरग पतग भ्रिग, मातंग सतावइ ॥
जो इंद मुणिद फणिंद सुरचद सूर संमुह अडइ ।
उहु लडइ मुडइ खिणु गडबडइ, खिणु सुउट्ठि समुह जुडइ ॥११३॥

अडिल्ल

अब सुलोभि इसउ वलु कीयउ,
अधिकु कष्टु तिन्ह जीयहु दीयउ ।

सब जिणउ नमतु लै चिति गज्जिउ,
राउ संतोषु इनह बरि सज्जिउ ॥११४॥

रंगिका छंदु

इव साजिउ संतोष राउ, हुवउ धम्म सहाउ,
उठिउ मनिहि भाउ आनंदु भयं ।
गुण उत्तिम मिलिउ माणु, हूवउ जोग पहाणु,
ध्यायउ सुकल झाणु, तिमरु गयं ॥
जोति दिपइ केवल कल, मिटिय पटल मल,
हृदय कवल दल खिडियत दे ।
यैसे गोइम विमलमति, जिण वच धारि चिति,
छंदिय लोभह थिति चडिउ पदे ॥११५॥

तनिक पचु संजमु धारि, सतु दह परकारि.
तेरह विधि सहारि, चारितु लिय ।
तपु द्वादस भेदह जाणि, आपणु अगिहि आणि,
वैठउ गुणह ठाणि, उदोतु कियं ॥
तम कुमतु गइउ धूसि, धौलिउ जगतु जसि,
जैसेउ पुन्चिउ ससि, निसि सरदे ।
अैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ॥११६॥

जिन वधिय सकल दुट्ठ, परम पापनिघट्ठ,
करत जीयहु कठ, रयणि दिणो ।
जम्हि हो तिय जिन्हहि प्राण, देतिय नमुति जाण,
नरय तणिय ठाण, भोगत घणो ॥
उइ प्रावत नरीहि जेइ, खडगु समुहु लेइ,
सुपनिन दीसे तेइ प्रवरु के दे ।
प्रैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभहि थिति, चडिउ पदे ॥११७॥

लोभ पर विजय—

देव दुंदही वाजिय घण, सुर मुनि गहगण,
मिलिय भविकजण, हुंवर लियं ।

अंग ग्यारह चौदह पुव्व, विचारे प्रगट सव्व,
मिथ्याती सुणत भव्व, भनि भंलियं ।
जिसु वाणिय सकल पिय, चितिहि हरषु किय,
संतोषे उतिम जिय, चरमु वदे ।
अैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति ।
छेदिय लोभह थिति, चडिउ पदे ।।११८।।

षट्पद

चडिउ सुपदि गोइमु लवधि तप वलि मति गज्जिउ ।
उदउ हुवहु गासणि हि सयनु आगमु मतु सज्जिउ ।।
हिसारहि हय वरतु सुभटु चारितु वलि जुट्टिउ ।
हाकि विमल मति वाणि कुमत दल दरडि दवहिउ ।।
वंधिउ प्रचडु दुद्धरु सुमनु जिनि जगु सगलउ घुत्तियउ ।
जय तिलउ मिलिउ सतोष कहु, लोभहु सह इव जित्तियउ ।।११६।।

गाथा

जव जित्त् दुसह्ु लोहु, कीयउ तव चित्त मभि आनंदे ।
हुव निकंट रज्जो गह गहियउ राउ संतोषु ।।१२०।।
सतोषुह जय तिलउ जंपिउ, हिसार नयर मंझ मे ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि, ते पावहि वंछिय सुक्ख ।।१२१।।
संवति पनरइ इक्याणु, भद्दवि सिय पक्खि पंचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृषे, जेउ तह जाणि वंभ णामेण ।।१२२।।

रड

पढहि जे के सुद्ध भाएहि,
जे सिक्खहि सुद्ध लिखाव, सुद्ध ध्यानि जे सुणहि मनु धरि ।
ते उतिम नारि नर अमर सुक्ख भोगवहि बहुप्परि ।।
यहु संतोषह जयतिलउ जंपिउ वल्हि सभाइ ।
मगलु चौविह संघ कहु, करइ वीरु जिणराइ ।।१२३।।

इति सतोष जयतिलकु समाप्ता ।।ध।।

□□□

३

नेमीस्वर का बारहमासा

राग वडहंसु

सावन मास—

ए रुति सावणे सावणि नेमि जिण गवणो न कीजै वे।
सुणि सारंगा माय दुसहु तनु खिणु खिणु छीजै वे।
छीजंति बाढी विरह व्यापित धुरइ घण मइ मतिया।
सालूर सरि रड रडहि निसि भरि रयणि विज्जु खिवतिया।
सुर गोपि महु सुह बसुह मंडित मोर कुहकहि वणि वणि।
बिनवंति राजुल सुणहु नेमि जिण गवउ नां करु सावणे ।।१।।

भाद्रपद मास—

ए भरि भाद्दवडे भादवि मारग जलहरे छाए वे।
कोइ परभूए परमुइं पंथी हरि न जु लाये वे।
नहु जु लाइ को पर भूमि पथी किसु सनेहा जंप वे।
सरपंच तनि मनमथ वीरूद्धिय कर लजिउ निसि कपवो।
वग चडिय तर सिरि देख पावस मनि अनन्दु उपाइया।
घरि आउ नेमि जिण चडिउ भाद्दउ मग्ग जलहर छाइया ।।२।।

आसोज मास—

ससि सोहाए सोहै ससिहरु आसूवा मासे वे।
जल निरमल निरमल जलसरि कवल वेगासे वे।
विगसंति सरि सरि कवल कोमल भवर रुणु भुणकार हे।
मयमंतु मनमथु तनि वियापइ किवसु चित्त सहार हे।
देखन्ति सेज अकेलि कामिणि मसहु नहु बोले हसे।
घरि आउ नेमि जिणंद स्वामी आसूवे सोहै ससि ।।३।।

कार्तिक मास—

इनु कालेमे कातिग आगमु की ताडा पालै वे।
चढि मंडपे मंडपि राजुल मग्गो नेहोलै वे।

मभ्मो निहाले देवि राजुल नयण दह दिसि धावए।
सर रसहि सारस रयणि भिभि दुसहु विरहु जगवए।
किं बरहउ तुव विणु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि बालए।
वाहुडहु' नेमि जिण चडिउ कातिगु कियउ आगमु पालेए ।।४।।

मार्गशीर्ष मास—

ए इतु मंघेरे मंघिरियहु जीउ तरसए मेरा वे।
तुझ कारणे कारणि यहु तनु तप ए घणेरा वे।
तनु तपइ तिन्ह सुरि जनहु कारणि जीउ जिसु गुणि लीणवो।
जिसु प्रास अधिक उसास मेलउ रहइ चितु उडीणवो।
सभलहि सभितिग्र के पियारे देखियह उग्गिम रितो।
तरसति यहु मनु नेमि तुव विणु मंगि मंगिहरिहु रितो ।।५।।

पोस मास—

ए इतु पोहे हे पोहे सीउ सताग्राए वाली वै।
नव पल्लव पल्लव नववण सो परजाली वै।
परजालि नववण रच्यो सकोइय,पडइ हिमु प्राति दारणो।
वर खणि ते मनि किवसु घीरउ जिन्ह न सेज सहारणो।
प्रथ दीह रयणि सतुछ वासुर कियर विरहु दक्खिणे।
नेमिनाथ आउ सभालि को गुण सीउ पोहेहि प्रतिघणो ।।६।।

माघ मास—

ए इतु माघे हि माघिहि नेमि दया करे प्राऊ वे।
तनि मंगल मैमल जेंउ घुरे प्रणे राऊ वे।
प्रणरउ मइगल जेंव गज्जइ कुलहु अक सिरक्खवो।
प्रग्गाह दुसही विरह वेयण तोहि विणु किसु प्रक्खवो।
क्या सवरि प्रवगुणु तइ विसारी लिखिन भूज पठावहो।
कर दया नेमि जिणंद स्वामी माघि इव घरि प्रावहो ।।७।।

फाल्गुण मास—

ए यहु फागुणो फागुणु निरगुणु माहो पियारे वै।
जिनि तरवरे तरवर झाणि कीए खइ खारेवे।
खइ खारढीखर किए तरवर पवणु महियलि झोलइ।
उरि लाइ कर निसि गणउ तारे निंद नहु प्रावइ खिणो।
घरि आउ नेमि जिणंद स्वामी चडिउ फागुणु निरगुणो ।।८।।

चैत्र मास—

एहतु चैतेहे चैतिहि नव मोरी वणराए वे ।
नव कलियहो कलियहि भवर मणक्कियडे भाए वे ।
भइ भवर नव कलियहि भणक्के नवइ पल्लव न तरे ।
नव चूव मंजरि पिकय लुद्धिय करहि धुनि पंचम सरे ।
झुल्लियउ मलय सुगंध परमलु दक्खिणिहि पिय सचरिय ।
दरसाइ दरसणु नेमि स्वामी चैत्ति नव नर मोलिया ॥९॥

वैशाख मास—

ए महु आइयडा अब सुणहु सखी वइसाखो वे ।
जइवइ सेवा हसिजाइ सनेहडा माखोवे ।
माखो सनेहा आइ वाइस अन्नु नीरु न भावए ।
दुइ नयण पावस करहि निसिदिनु चितु भरि भरि आव ए ।
फुट्टउ न जं वल्लभ वियोगिहि हिया दुखि वज्जहि घडघा ।
वइसाखु तुव विणु सुणहु सखिए दुसहु मति दारणु चडघा ॥१०॥

जेठ मास—

एहतु जेठेहे जेठिहि लूव अनल झल वावेवे ।
दिनि दिनकरो दिनकरु दिवसि रयणि ससेतावेवे ।
ससि तवइ निसि परजलइ दिन रवि नीरु सरि सुकियघण ।
तडयडइ घर तडफडइ जलचर मिलिय अहि बंदण वणं ।
चच्चउ सिहं डुक पूरहि मजलु मंगु अधिकु दहावए ।
विललंति राजुलि फिरहु नेमि जिण लूव जेठिहि वावए ॥११॥

आषाढ मास—

एहतु षाढेहे षाढिहि नेमि न आईयडा प्यारा वे ।
मनु लागाडा लागा मनुवइ रोग हमारा वे ।
मनु लाइ इव वइरागि रजमति लियउ संजमु तंखिये ।
अष्टौ भवतंर नेहु निरजरि सहइ नव तेरहु तणे ।
तिसु तरुणि काला गाउ माहा सिद्धि जिनिवर माइया ।
आषाढ चकिया भणइ वूचा नेमि मजउ न आईया ॥१२॥

॥ इति बारहमासा समाप्ता ॥[1]

□ □ □

---

१. गुटका–दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

४

चेतन पुद्गल धमाल

प्रस्तुत धमाल की पाण्डुलिपि दि॰ जैन मन्दिर नागदी, बूंदी के उसी गुटके में है जिसमे बूचराज के अन्य पाठो का संग्रह है। यह धमाल पत्र संख्या २२ से ४४ तक है। इसके लिपिकर्त्ता पांडे देवदासु हैं। लिपि सुन्दर एवं शुद्ध है। धमाल की पाण्डुलिपिया कामा एवं अजमेर के भट्टारकीय भण्डार में भी है लेकिन वे उपलब्ध नहीं हो सकी इसलिए बूंदी वाली प्रति के आधार पर ही यहां पाठ दिया जा रहा है।

रागु दीपगु

मंगलाचरण—

जिनि दीपगु घटि ग्यानु करि, रज दीट्ठी दश चारि।
कवि 'बल्ह पति' सुस्वामि के, एावउ चलण सिरु धारि ॥१॥

दीपगु इकु सरवत्रि जगि, जिनि दीपा संसारि।
जासु उदइ सहु भागिया, मिथ्या तिमरु अन्ध्यारु ॥२॥

'जिरा सासरा' महि दीवडा, बल्ह पया नवकारु।
जासु पसाए तुम्हि तिरहु, सागरु यहु संसारु ॥३॥

भवियहु 'अरहतु' दीवडा, कै दीपगु सिद्धन्तु।
कै दीपगु 'निरग्रंथ' गुरु, जिस गुरिग लहिइ न अंतु ॥४॥

जैन धम्मु जिनि उद्धरया, जुगला धम्मु निवारि।
सो रिसहेसरु पणविमइ, तारै भव संसारि ॥५॥

चेयन गुणवंत जडस्यौ, संगु न कीजै।
जड गलइरु पूरइ, तिव तिव दुख सहीजै ॥६॥

जड संगु दुहेला, फिरु भमिया संसारो।
जिनि ममता छोडी, तिन पाया भवपारु ॥७॥

जिस सवरायह जम्मु, जलिया भवरण हुवेउ ।
'अजितनाथ' पय पणमियहि भावइ कमह छेउ ॥८॥

चेयन गुणु निरगुण जड, तिउ संगति कीजइ ।
इसु जड परखादिहि, मोखह सुखु किलसीजै ॥९॥

जड सहइ परीसह काटै करमह भारो ।
जिसु जड न खरवाई, तिसु उरवारु न पारो ॥१०॥

तनु साध्या मोखिहि गया, कीया करमह अंत ।
'संभव स्वामी' वंदिये, जिण सासणि जयवंतु ॥
चेयण गुणवता जडासो संगु न कीजै ॥११॥

जोगति करि सिउपुरि गया, तरि सायरु अथाहु ।
सोहउ ध्याऊ हियइ धरि, 'अभिनन्दनु' जिणनाहु ॥
चेयण गुणु निरगुण जड सिउ संगति कीजइ ॥१२॥

चहुसै धुणह पवाणु तनु, मेघरायह घरि चंदु ।
नामु लित पातिग छडहि, वंदहु' सुमति' जिणंद ॥ चेयण गुण० ॥१३॥

चारितु धरि मोखिहि गया, माया मोहु निवारि ।
'पदमपहु' जिण पद कवल, नवउ सदा सिरधारि ॥ चेयण गुण० ॥१४॥

जिसु मुखु दीठे भवणा, तूटै करमह फासु ।
सो वंदहु तारण तरणु, स्वामी देउ 'सुपासु' ॥ चेयण गुण० ॥१५॥

जिसु लछंणि ससिहरु, 'अहइ राय' महसेणह तनु ।
चंद्रप्पहु जिणु आठमा, संघ सयल सुपसन्नु ॥ चेयण गुण० ॥१६॥

चौदह रजु सहु लोउ, जिन दीठा घटि अवलोइ ।
"पुहपि जिणेसरु" पणमियइ, पुनरपि जनमु न होइ ॥ चेयण गुण० ॥१७॥

राइ दिढह तनु कुलि कवलु, मुकति रिउरि हारु ।
"सियल जिणेसरु" ध्याईयें, वंछित सुख दातारु ॥ चेयण गुण० ॥१८॥

अस्सीं धुणह पवाणु तनु, कंचणु वन्नु सरीरु ।
हउ पणउ "श्रीयांस जिणु", स्वामी गुणिहि गहीरु ॥ चेयण गुण० ॥१९॥

"वसुसेणह" घरि अवतारया, छेद्या जिन भव फंदु ।
"वासुपुज्ज" जिणु वंदियइ, जिसु वंदइ सुर इंदु ॥ चेयण गुण० ॥२०॥

सहिय परीसह मोखिहि गया, भवया महाभड मोडि ।
"विमल जिणेसरु" 'विमलमति', हउ पणउ कर जोडि ॥ चेयण गुण० ॥२१॥

आठ कंम्म जिनि निरजरे, चितुवइ रागि धरेइ ।
मन करण "श्री अनंत जिणु", भवियहु वंछित देइ ।। चेयण सुणु० ।।२२।।

संवरु करि जो गुण चढ्या, मलिया मयणह मानु ।
"धम्मनाथ" धम्मह निलउ, ही पणवउ धरि ध्यानु ।। चेयण गुण० ।।२३।।

गढि हथिनापुरि अवतरघा, दिपई अंगु कणकंति ।
सो संघह मगलु करइ, "संति करणु जिणु" संति ।। चेयण सुणु० ।।२४।।

जासु धनुष पय तीस तनु, कुखि श्रीमति अवतारु ।
सो तुम्ह पापहिं खिउ करइ, सवरहु "कुंथु" कुवारो ।। चेयण गुण० ।।२५।।

जो राता सिव रणिसिउं, सब्बइ कम्म निखेइ ।
आरति मंजणु "अरह जिणु", अजिय सु पदु हम देइ ।। चेयण सुणु० ।।२६।।

कुंभ नरिंदह राइ तनु, मिथलापुरि अवतारु ।
"मल्लि जिणेसरु" पणवियइ, आवागवणु निवारो ।। चेयण गुण० ।।२७।।

राजगिरिहि गढि अवतरघा, सोहइ कज्जल वन्नु ।
"मुणि सुब्वउ जिणु" वीसमा, संघ सयल सुपसंनो ।। चेयण सुणु० ।।२८।।

जिसुका नाउ जपंति यहं, छीजइ कम्म कलेसु ।
विजयराइ घरि अवतरघा, सवरहु "नमि सु जिणेसो" ।। चेयण गुण० ।।२९।।

चल्या सु नव भव नेहु, तजि पसु वचन सु विचारि ।
वंदहु स्वामी "नेमि जिणु", जो सीझइ गिरनारि ।। चेयण सुणु० ।।३०।।

भाव भोगि जिन सउ वरिस, कीया मुकति सिउ साथु ।
सकल मूरति हुउ वंदिसिउ, स्वामी "पारसनाथ" ।। चेयण गुण० ।।३१।।

करि करुणा सुणु वीनती, तिभुवण तारण देव ।
"वीर जिणेसर" देहि मुझु, जनमि जनमि पद सेव ।। चेयण सुणु० ।।३२।।

अरहंत सिद्धह आरजह. अरु अवझा पणमेहिं ।
सब्वे साहु जे नमहि, ते संसार तरेहि ।। चेयण गुण० ।।३३।।

पंच प्रमिष्ठी 'बल्ह कवि' ए पणमी धरि भाउ ।
चेतन पुदगल दहूक, साडु विवाडु सुणावो ।। चेयण सुणु० ।।३४।।

यहु जड खिणिहिं विधंसिणी, ता सिउ संगु निवारु ।
चेतन सेती पिरति वकरु, जिउ पावहि भव पारो ।। चेयण गुण० ।।३५।।

वारु वारु तुम्ह सिउ कहुउ, किता कु पूछहि ऊंड ।
जिसु जड ते तूं गुणि चढ्या, तासि पिरतिम तोडि ।। चेयण सुणु० ।।३६।।

बहुती चूनिह डाइ करि, जे नरनाह महि देइ ।
चीती अड मंह मीत चूनि, मूढु विसासु करेइ ।। चेयण गुण० ।।३७।।

सहीइ परीसह बीसदुइ, काटै करमह घाव ।
तिसु सिउ मूड चखिरचीयै, तारै भव संसार ।। चेयण गुण० ।।३८।।

जिनि कारि आणी आपणी, निश्चै बूडा सोइ ।
खीरु[1] पडया विसहरि मुखे ताते क्या फलु होइ ।। चेयण गुण० ।।३९।।

चेतनु चेतनि चालइ, कहुडउ मानै रोसु ।
आपे बोलत सो फिरै, जडहि लगावइ दोसु ।। चेयण गुण० ।।४०।।

जेकपतीना हेतु करि, सिडूवा महि रे घाट ।
कांजी पडिवा दूध महि, हूवा सु बारहु वाट ।। चेयण गुण० ।।४१।।

छहु रस भोयण विविहि परि, जो जड नित सीचेइ ।
इंदी होवहि पडवडी, तउ पर धम्मु चलेइ ।। चेयण गुण० ।।४२।।

सुणहु पियारे वीनती, देखहु चिति अवलोइ ।
बीजु जु कलिरि बीजीयै, ताते क्या फलु होइ ।। चेयण गुण० ।।४३।।

चौवीस परिग्रहु पर तजै, पंद्रह जोग धरेइ ।
जड परसादिहि गुणि चडै, सिव पुरि सुख भूचए ।। चेयण गुण० ।।४४।।

इसु जड तणा विसासु करि, जो मन भया निसंकु ।
काले[2] पासि बइट्ठियइ, निश्चै चडइ कलंकु ।। चेयण गुण० ।।४५।।

खाजै पीजै विलसियइ, फुरइत दीजै दामु ।
यहु लाहा संसार का, भावै जाणु न जाणो ।। चेयण गुण० ।।४६।।

मूरखु मूलु न चेतई, लाहै रह्या लुभाइ ।
अंधा वाटै जेवडी, पाछइ वाछा खाइ ।। चेयण गुण० ।।४७।।

पडवखा पालै सदा, उत्तिम यहु परवाणु ।
अंकरि जा विसु संग्रही, तौ बन छूटै आणु ।। चेयण गुण० ।।४८।।

इसै भरोसै जे रहे, चेते नाही जागि ।
डूबे ताह बापुडे, भेडहु पूछडि लागि ।। चेयण गुण० ।।४९।।

---

१. दूध ।
२. कोयला ।

पंचै इंदी दंडि करि, आपा आप्पुरणु जोइ ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चौगइ जनमुन होइ ।। चेयण सुरणु० ।।५०।।
क्या जे इंदी वसि कीई, क्या साध्या अप्पारणु ।
इकु परमथु न जाणिया, किउ पावै निरवारणु ।। चेयण गुण० ।।५१।।
विणु करमह काटे आपरणे जो नरु को सीझेइ ।
ता किं सेणकु नरक महि, अजहु दुख भूचेइ ।। चेयरण सुरणु० ।।५२।।
क्या जें सेरणकु नरक महि, बहु बहु दुख भूचंतु ।
भव्व जीयहमहि सो गण्या, निश्चै इव सीझंतो ।। चेयण गुरण० ।।५३।।
काया राखहु जतनु करि, चडहु जेंव गुरण ठारिण ।
विणु मणुव जम्मिहो भवियणहु, गया न को निरवाणि ।। चेयण सुरणु० ।।५४।।
हरतु परतु दोनउ गया, नाउर वारु न पारु ।
जिनकरि जाणी आपणी, से डूबे काली धार ।। चेयरण गुरण० ।।५५।।
जिउ गैसंदरु कट्ठ महि, तिल महि तेलु भिजेउ ।
आदि अनादि हि जाणियै, चेतन पुद्गल एव ।। चेयण सुरणु० ।।५६।।
लेहि गैसदरु कट्ठु तजि, लेहि तेल खलि राडि ।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुदगलु परहर वालि ।।चेयरण गुरण० ।।५७।।
वालत्तण की वालही, गुणहि न पूजै कोई ।
सा काया किव निंदियै, जिसहु परम पदु होइ ।। चेयरण सुरणु० ।।५८।।
काया कर जलु अजुली, जतनु करतिहि जाइ ।
उत्तिमु विरता नित रहै, मूरिखु इमु पतियाए ।। चेयरण गुरण० ।।५९।।
मनका हठु सवु कोइ करइ, चितु वसि करइ न कोइ ।
चडि सिखर हु जव खडहडै, तवरु विगुचणि होइ ।। चेयरण सुरणु० ।।६०।।
सिखर हु मूलि न खडहडै, जिरण सासरण आधारु ।
सूलि ऊपरि सीझिया, चोरि जप्पा नवकारु ।। चेयरण गुरण० ।।६१।।
उइ साधण परिणाम उइ, कालमि उइ थावोर ।
इव साध फिरहि सहि डोलते, तदि सीझै थे चोर ।। चेयण सुरणु० ।।६२।।
साधु न डोलइ मूलि हरि, जिसु महि ज्ञानु रतन्नु ।
तेरह विधि चारितु धरै, पुद्गल जाणइ अन्नु ।। चेयरण गुरण० ।।६३।।
पुद्गलु अन्नु न जाणियहु, देखहु मनि विवपाइ ।
किरिया संजमु ता चलै, जा पुद्गल होइ सखाए ।। चेयरण सुरणु० ।।६४।।

जिण पूजा सम्मत्त गुरु, साहम्मी सिउ नेहु ।
इन्ह वेगांतिहि सीजीवै, नाही अचिरजु एहु ॥ चेयण गुण० ॥६४॥

जिसु संगि कलंतह जम्मु गयउ, एको सुखु नहु लाघु ।
सोभी जीउ धतांम जिउ, फिर फिर मूरख दाधी ॥ चेयण सुणु० ॥६६॥

डाइणि मंतु अफीम रसु, सिखिन छोडणु जाइ ।
को कौ कवणु न मोहिया, काया ठवली लाइ ॥ चेयण गुण० ॥६७॥

जो जो ठवली लाइया, सो डूबिया गवारु ।
सांपु पिटारै पालिया, तिनिकया कीया उपगारो ॥ चेयण सुणु० ॥६८॥

जोखिणु काया वसि करहि, इंदी रहणु न आइ ।
तजि तपु संसारिहिं रुलहिं, पाछै लोक हसाए ॥ चेयण गुण० ॥६९॥

ते तप तिहि कहु किव खलहि. जिन्हि जीत्या संसारु ।
सत्तु मित्तु सम करि जाणिया, साध्या संजम भारो ॥ चेयण सुणु० ॥७०॥

पहिला आपणु देख कसि, लेहि संजमु भारु ।
जे ता देखहि ओढणा, तेता पाव पसारो ॥ चेयण गुण० ॥७१॥

भला करंतिहि मीत सुणि, जे हुइ बुरंहा जाणि ।
तौ भी भला न छोडियै, उत्तमु यहु परवाणु ॥ चेयण सुणु० ॥७२॥

भला भला सहु को कहै, मरमु न जाणै कोइ ।
काया खोई भीतरे, भला न किसही होए ॥ चेयण गुण० ॥७३॥

हाडह केरा पंजरी, धरिया चम्मिहि छाइ ।
बहु नरकिहि सो पूरिया, मूरिख रहिउ लुभाए ॥ चेयण सुणु० ॥७४॥

जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छांह कराइ ।
तिउ इसु काया संगते, जीयडा मोखिहि जाए ॥ चेयण गुण० ॥७५॥

काया नीचु कुसंगडा, बैसदर सरि जोइ ।
तासु पकडै जलिमरै, सीतइ काला होइ ॥ चेयण सुणु० ॥७६॥

जिसु विणु खिणु इकु ना सरै, भाव लियै जिसु लागि ।
जे घर पुर पट्टण दहै, ता घरि कीजइ आगि ॥ चेयण गुण० ॥७७॥

काइ सराहहि चेनहि, पुद्गलु थालहि राडि ।
खेतु विसो वविरणा सरु, जिसुकी सगती वाडी ॥ चेयण सुणु० ॥७८॥

वेस्वानेहु कसु भरणु, घर जल उप्परि कार ।
इसासु पुद्गल मीत सुणि, विहडत होइ न बार ॥ चेयण गुण० ॥७९॥

जिउ ससि मंडणु रयणिका, दिनका मंडणु भाणु ।
तिम चेतन का मंडणा, यहु पुदगलु तूं जाणि ।। चेयण सुणु० ।।८०।।
इसु काया के संगते, यहु जीउ पडइ जंजालि ।
हुई कचोला नीर कहु, कूटी जै घडियालि ।। चेयण सुणु० ।।८१।।
जल कहु निवइ जीयडा, पुदगलु घालइ राडि ।
खेतु जिसो प्रविणा सरु, जिसुकी समती वाडि ।। चेयण सुणु० ।।८२।।
काय कलेवरु वीस सुहु, जतनु करंतिहि जाइ ।
जिव जिव पाचैं तु वडी, तिव तिव प्रति कडवाइ ।। चेयण सुणु० ।।८३।।
जो परमलु हुई कुसम महि, सो किव कीजै अंगि ।
पुदगल जीउ सलगनु तिव, इव भास्या..................।। चेयण सुणु० ।।८४।।
फूलु मरइ परमलु जीवइ, तिसु जाणै सहु कोई ।
हंसु चलइ काया रहइ, किवरु बराबरि होइ ।। चेयण सुण० ।।८५।
कहा सकति सिव वाहुरी, सकति विनसिउ काइ ।
पुद्गलु जीउ सलगनु तिव, वासु दुह इकठाए ।। चेयण सुणु० ।।८६।।
काया संगिहि जीयडा, राख्या करमिहि बधि ।
पडचा कपुरु जुल्ह सणमहि, गयवर वत्तणु गंधि ।। चेयण सुणु० ।।८७।।
इस काया के संगते, जाण्या उत्तिम धम्मु ।
मूरख सा किव निंदियै, किया सफलु जिनि जम्मु ।। चेयण सुणु० ।।८८।।
कुंजर कुंथू आदि दे, असे पुद्गलि लीय ।
सगति तै नहु बंधिए, जहा सुखी होइ जीय ।। चेयण सुणु० ।।८९।।
काया तारइ जीय कहु, सतु सजमु व्रत धार ।
जिउ बेडी सगि उत्तरै, सउमण लोहा पारि ।। चेयण सुणु० ।।९०।।
जड वेणी पोहण तणी, इसा जाणि जिय चेतु ।
कोम तिरंता दीठु मइ, करि काया सु हेतु ।। चेयण सुण० ।।९१।।
काया की निंदा करहि, आपुन देखहि जोइ ।
जिउ जिउ भीजइ कांवली, तिउ तिउ भारी होइ ।। चेयण सुणु० ।।९२।।
इसी भरोसै जे रहे, चेते नाही जागि ।
झूठें ताक बापुडे, भेडइ पूछह लागि[1] ।। चेयण सुणु० ।।९३।।

---

१. यह पद्य पहिले ४९ संख्या पर भी आ गया है ।

तेतीस सागर वरष सुर, जिसु पसाइ सुख दीठ ।
तिसु अंब तिसु इव राखियइ, जिउ कापडइ मजीठ ।। चेयण सुण० ।।९४।।

तेतीस सागर दुख नरक महि, ते भी थिति वितारि ।
इसु काया के एह गुण, रे जीय देखु सुहियइ विचारि ।। चेयण गुण० ।।९५।।

तेतीस कोडा कोडि क्रम, पोतै मोह निहाणु ।
ते सहि काटै तपु सहै, काया यह परवाणु ।। चेयण सुणु० ।।९६।।

काया कहु मुकलाइ करि, रह्या निचिंता सोइ ।
ते तपु डूबे लेइ करि, प्रजहू फिरहि निगोए ।। चेयण गुण० ।।९७।।

जिय विणु पुद्गल ना रहै, कहिया आदि अनादि ।
छह खंड भोगे चक्कवै, काया कै परसादि ।। चेयण सुणु० ।।९८।।

देव नरय तिर्यंजच महि, अरु माणस गति चारि ।
जिसुका चाल्या तूं फिर्या, तिस सिउ हौस निवारि ।। चेयण गुण० ।।९९।।

तुझ कारणि वहु दुख सहै, इनि काया गुणवंति ।
चेतन ए उपगार तुझ, छोडि चला इसु अंति ।। चेयण सुणु० ।।१००।।

कासु पुकारउ किसु कहउ, हीयडे भीतरि डाहु ।
जे गुण होवहि गोरडी, तउव न छाडै ताहु ।। चेयण गुण० ।।१०१।।

मानु महतु लोगी कुजसु, अरु वडि माकलि माहि ।
पच रतन जिसु संगते, चेतन तू रुलहाहि ।। चेयण सुणु० ।।१०२।।

भला कहावै जगु मुसे सै, अगलु करे नट जेउ ।
जड कै संगिहि दिठु मैं, घणा बुडंता एव ।। चेयण गुण० ।।१०३।।

माणिकु भीता अति चडा, जा कंचणु तुम्ह पाहि ।
ता लगु सोभा चेतनहि, जा लगु पुद्गल माहि ।। चेयण सुग्गु० ।।१०४।।

यहुलि कलमलु जीवडा, मुकति सकपी आखि ।
आपा आपु विटंबिया, इसु काया कै साथि ।। चेयण गुण० ।।१०५।।

मोती उपना सीप महि, विडिमा पावै लोइ ।
तिउ जिउ काया संगते, सिउपरि वासा होइ ।। चेयण सुणु० ।।१०६।।

जब लगु मोती सीप महि, तब लगु सभु गुण आइ ।
जब लगु जीयडा संगि जड, तब लगु दुख सहाय ।। चेयण गुण० ।।१०७।।

रे चेतन तूं तावला. जा जड तुम्ह संगि होइ ।
जे मद्दु भाजनि गूजरी, खीरु कहै सबु कोए ।। चेयण सुणु० ।।१०८।।

चेतन तूं नित ज्ञान मइ. यहु नित असुचि सरीरु ।
घालि गवाया कुंभ महि, गंगा केरा नीरु ।। चेयण गुण० ।।१०९।।

उतु अमि न्यानु अराधिया, कीया वरतु अभंगु ।
तिसु पुंनिहि तै पाईया, इसु काया सिउ संगु ।। चेयण सुणु० ११०।।

सा जड मूढ म सीचियै, जिसु फलु फूलु न पानु ।
सो सोना क्या फूकियै, जोरु कटावै कानु ।। चेयण गुण० ।।१११।।

जोवनु लछि सरीरु सुख, अरु कुलवती नारि ।
सुरगु इच्छाई पाईया, जिन्ह कै एसो चारो ।। चेयण सुणु० ।।११२।।

तूं सात धातु नीदहि सदा, चितमहि करहि विसेषु ।
तिन्ह साथि हिय नित भरी, रे जिय सभलि देखु ।। चेयण गुण० ।।११३।।

आहारु मैथुना नीद जड, ए चारिउ जीय साथि ।
तेसठि सलाका आदि दे, इन्ह विणु कोइ न आथि ।। चेयण सुणु० ।।११४।।

ए चारिउ सगि ताम लगु, जा जीउ करमह माहि ।
छोडि करम जीउ मोखि गया, इनहु नेडा जाहि ।। चेयण गुण० ।।११५।।

कालु पच मारुह् यहु, चित्त न किसही ठाइ ।
इंदी सुखु न मोखु हुइ, दोनउ खोवहि काए ।। चेयण सुणु० ।।११६।।

कालु पंचमा क्या करै, जिन्ह समकतु आधारु ।
जदि कदि कोइ पुन्यात्मा, निश्चै पावहि पारु ।। चेयण गुण० ।।११७।।

राजु करता जे मुवा, ते भी राजु कराहि ।
भीख भमंता जे मुवा, ते भीखडीय भमाहि ।। चेयण सुणु० ।।११८।।

तपु करि पावइ राज पदु, राजहु नरकुभि होइ ।
जिनि सुहु असुह निवारिया, सो वंद्या तिहु लोए ।। चेयण गुण० ।।११९।।

काइ पिछोडहि थोथि कहु, जिकु कणु ए कुन होइ ।
जो रयणायरु सहु मथहि, मसका चडइ न तोए ।। चेयण सुणु० ।।१२०।।

कणुंता इकु सरवनि जगि, अवरु सभै रुपरालु ।
जिसु सेवत चौगय तणा, तूटै माया जालु ।। चेयण गुण० ।।१२१।।

चेतन काइ सडण्कडहि, कूडा करहि पसारु ।
जितु फलि सकहि न पहुचि करि, तिसुकी हवस निवारी ।। चेयण सुगु० ।।१२२ ।

काया किसियन आपणी, देखहु चिति अवलोइ ।
कूकरि बंकी पूछडी, ता किम सीधी होइ ।। चेयण गुण० ।।१२३।।

भोगहि भोग जि इंदपरि, भूपति सेवहि वारि ।
काया भीतरि आइकरि, सुख पाया संसारि ।। चेयण सुगु० ।।१२४।।

यहु सुखु जिय अविणासरु, दिनु दिनु छीजतु जाइ ।
जो जल सिखरहु खडहडै, सो किउ सिखरि चडाए ।। चेयण गुण० ।।१२५।।

यहु संजमु असिवर अणी, तिसु ऊपरि पगु देहि ।
रे जीय मूढ न जाणही, इव कहु किउ सीभेइ ।। चेयण सुगु० ।।१२६।।

असिवरु लागै तिन्हु कहु, जे विषया सुखि रत्तु ।
साधि संजमु हुव वज्ज मैं, ते सुर लोइ पहुतो ।। चेयण गुण० ।।१२७।।

इसु काया परसादते, चेतन सोभा होइ ।
पंचहु महि वाडिमा चडै, भला कहै सवु कोइ ।। चेयण सुगु० ।।१२८।।

भला कहावै जगु मुसै, भगलु करै नट जेंउ ।
जड कै संगिहि दीठु मइ, घणा वूडंता एव ।। चेयण गुण० ।।१२९।।

बहुता जूनि भमंति यह, लही मुनिष की देह ।
तिस सिउ ऐसी पिरति करु, जिउ सिल ऊपरि रेह ।। चेयण सुगु० ।।१३०।।

सिलभि विणसै रेहसिउ, देहमि खिण महि जाइ ।
तिसु सिउ निश्चल पिरति करु, जोले दुख छोडाइ ।। चेयण गुण० ।।१३१।।

दुक्खहु मूलिन छूटइ, पडिया आरति झाणि ।
काया खोवइ आपणी, किउ पहुचे निरवाणि ।। चेयण सुगु० ।।१३२।।

उद्दिमु साहसु धीरु बलु, बुद्धि पराकमु जाणि ।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहुंचा निरवाणि ।।१३३।।

चेयन गुणवंते जडसिउ संगु न कीजै ।
जड गलहरु पूरै, तिव तिव दुख सहीजै ।
जड संगु दुहेला चिरु भमिया संसारो ।।

जिनि ममता छोडी तिनि पाया भव पारो ।
पाया सुतिनि भव पारु निश्चै संगु जड मक्काखिणो ।।
तेरह प्रकारि हि सुद्ध चारितु, धर्धा दिढु अप्पण मुणे ।
चहु गति तणा सहि दुख भाजहि, मुकति पंथ लमंतिया ।।
तिसु साथि जड नहु संगु कीजै, सुणु चेतन गुण वंतिया ।।१३४।।

चेतन सुणु निरगुण जड सिउ संगति कीजै ।
इसु जड परसादिहि मोखह सुखु विलसीजै ।।
जब सहइ परीसह काटै करमह भारो ।
जिसु जड न सखाई तिसु उरवारु न पारो ।।
उरवारु पारु न होइ किछुहू रिदुइय काइ गवावहे ।
इंदिया सुखु न मोखु होवइ फिरि सुमनि पछितावहो ।।
सुरलोइ चकवति उच्च पदवी भोगतइ भोग्या घणा ।
तिसु साथि जड नित संगु कीजै सुण चेतन निरगुणा ।।१३५।।

दुख नरकि जि दीठे ते इव हीयइ संभाले ।
इसु जडकै संगते चेतन आपनु गाले ।।
परतापि विष वेली सीच्यह यथा फलु होए ।
मधु विंद काए सुख तिन्ह लगि आपुन खोए ।।
ननु खोइ आपणु राखि दिढु करि नीर समकतु निश्चलो ।
जब लगै मदिरि कालु पावकु धम्मु का लाभे जलो ।।
धनु पुत्त मित्त कलत्त काया, अंति नहु कोइ सखा ।
संभलहु इव चेतन पियारे, नरकि जे दीठे दुखा ।।१३६।।

जह पुहपु तह मधु जह गोरसु तह घीउ ।
जह काठ अगनि तह जह पुदगल तह जीउ ।।
मति मुगध सि भूली हुढहि घरु घरु बारो ।
पाखंडी जगु डहकहै, सकहि न आप उतारे ।।
ते सकहि आपुन तारि मूरिख, सकति काया खोवहे ।
चारितु लेकरि विषय पोषहि पंक उरि मल धोवेहे ।।
सिव सकति सदा सलगनु जुगि जुगि मरमु नहु कि नही लखो ।
संभलहु इव चेतन पियारे पुहपु जह तह होइ मखो ।।१३७।।

जिय मुकति सरूपी तू निकल मलु राया ।
इसु जड़कै संगते भमिया करमि भमाया ॥
चडि कवल जिवा गुणि तजि कद्दम संसारो ।
भजि जिण गुण हीयडै तैरा यहु विवहारो ॥
विवहार यहु तुझ आणि जीयडे करहु इंदिय संवरो ।
निरजरहु बंधण कम्मं केरे जान लगि छुक्काजरो ॥
जे वचन श्री जिण वीरि भासे ताह नित धारहु हीया ।
इव भणइ 'बूचा' सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ॥१३८॥

॥ इति चेतन पुद्गल धमाल समाप्त ॥

□ □ □

५

नेमिनाथ बसंतु

अमृत अमुल उमउरे निमि जिण गढ गिरनारे ।
म्हारे मनि मधुकर तुह वसै संजम कुसुम मझारे ।
सखीय वसत सुहावौ दीसइ सौरठ देसो कोइल कुहकै मधुरसरे ।
सावणहु अइसो विवलसिरी महमसै भवरा रुणु भुणकारे ।।
गावहि गीत सुरासुर गंधप गढ गिरनारो ।
विजय पढहु जसु वाजइ आगम अविचल तालो ।
निमि जिण कीरति विलासिणि नचइ सुछन्द छंदवालो ।
अभय मडार उघाडय पडइ संजम सिगारो ।
अट्ठारहु सहि असील सहिलडा सरिसउ नेमि कंवारो ।
ग्यान कुसुम मह महकइ चारित चदन अगे ।
मुकति रमणि रंगि रातउ निमि जिणु खेलइ फागो ।
सरस तबोल समाणाइ रालइ रंग उगालो ।
समदविजय राइ लाडिलउ अपुर देस विसालो ।
नव रस रसियउ निमि जिणु नव रसु रहितु रसालो ।
सिद्धि विलासिणि भोल यो समदविजय रइ बालो ।
नेमि छयल त्रिभुवण छलिउ मलियो मालणि माणो ।
राजल देखत दिन्नरमे सजम सिरिय सुजाणो ।
जणु जागै तव्व सोवइ जागय सूतै लोग ।
मोहु किवाड प्रजलै अनमखु नयण सजोग ।
सरस बडे गुण माडइ चुरि चुरि करइ अहारो ।
जाणु पराइ जगु झगडइ सिवदेको अलियारो ।
कुंड ठाइन्द्र मै न्हाइजै पहिरिजइ निरमल चीरो ।
नेमि गधोदकु वदिजै निर्मल होइ सरीरो ।
चंदन कपूर कुंकु घसि चरचिजै सावल धीरो ।
अमल कमल सालि पूजि जै भव भव भंजण वीरो ।
दवणउ मरवड सेवती सद्दवल पाडल मालो ।
मनहु मनोरथ पूरवइ प्रभु पूज जइ त्रिकालो ।

नव नैवज रस गोरस पुज्जि जै त्रिभुवण माही ।
जनम जीवन फलु लाभइ रे निति तन होइ उच्छाहो ।
ग्रारत्यो प्रभु कीजइ विमल कपूर प्रजाले ।
भ्रमर मुकति मग्गु दीसई मोहु महातमु जाले ।
कुस्नागुरु धूप धूमिजइ जिन तनु सहजि सुवासो ।
भ्रमर रमणि रंगि रमिजइ पाइजइ शिवपुर वासो ।
नव नारिंग कदली फल पुज्जि जै त्रिभुवण देवो ।
जनम जीवन फलु लाभइ होइ संसारह छेवो ।
काचीय कलीन विहसइ चोरा वाउ ।
भूलउ भवरा रुण भुणा चंचल छपल सहाउ ।
भमरु कमल रस रसियउ केतुकि कुसुम लुभाइ ।
बघण वेदु मूरिख सहइ राइ बंभै न सुहाइ ।
साजन छयल तिस लहि जाहि नित नवल बसतु ।
सबम नवल परि विहसइ जाह नित रमणि हसन्तु ।
रामाइण रंगि रातउ भार घरहि तु प्रयाणु ।
परमाहथि पंथि भूलउ किउ पावहि गुण ठासो ।
ग्रडली डाल डलामल ग्रण खाधा फल खाये ।
वाल्हवि थरवण सूवडउ सखीयण बंधणा जाइ ।
मूलसघ मुखमंडण पदम नन्दि सुपसाइ ।
वील्ह वसंतु जि गावइ से सुषि रलीय कराइ ।।

।। इति नेमिनाथ बसंतु समाप्तो ।।

□ □ □

६

टंडाणा गीत

टंडाणा टंडाणा मेरे जीवडा, टंडाणा टंडाणावे ।
इहि ससारे दुख भंडारे, क्या गुण देखि लुभाणावे ।।
जिनि ठगि ठगिया अनादि कालहि, भी तिन्ह जोगु पत्याणावे ।
पडया कुमारगि मिथ्या सेवहि, मेटहि जिणि की आणावे ।।
पाप करहि पर जीव सताओ, होसी नरका ठाणावे वारा ।
केती बारह रकु कहाया, किती बारह राणावे ।।
समइ समइ सुह असुह जो बांधै, लागो होइ सताणावे ।
बज्र लेप वह खोली नाही, लवहि अवर अयाणावे ।।
ए वह भवि भवि चहुगति भीतरि, बाध्या करमह घाणावे ।
तेरह विधि तैं पालि न सकिया, चारितु धरि कृपाणावे ।।
केवल भाषित धरम अनुपमु, सो तुम चिति न सुहाणावे ।
ले सजम तैं जीति न सक्या, तीखे मनमथ बाणावे ।।
राग दोष दोइ वइरी तेरे, देहि न सिवपुरि जाणावे ।
आठ महामद गज जिम गरजै, तिन मिलि किया निताणावे ।।
मात पिता सुत सजन सरीरी, यहु सबु लोगि बिडाणावे ।
रयणि पखि जिम तरवर वासै, दस दिस दिवसि उडाणावे ।।
जम्मण मरण सहे दुख अनता, तौ नहुवउ सयाणावे ।
केते पुरिस निपु सिक लिंगिहि, के ते नाम धराणावे ।।
नट जिम भेष कीये बहुतेरे, तिन्हको कहइ प्रवाणावे ।
आपणु पर कारणि करि आरंभु, तू पीडहि षट प्राणावे ।।
क्रोह मान माया लोभ संगहि, निितिहि रहै भरमाणावे ।
चेतनु राव निबल तइ कीयो, मनु मंत्री सिउ लाणावे ।।
विषयह स्वारथ पर जिय वंचहि, करि करि बुधि विनाणावे ।
छोडि समाधि महारस (अ)नूपम, मधुर बिंदु लपटाणावे ।।

जाइ जरा जब यह मैं पैठे जोबन करइ पयाणावे ।
औसर चुक टूटंहि जिव आयुष पय पीछें पछिताणावे ॥

करि उद्दिमु अप्पणु बलु मडै, भोगहु अमर विमाणावे ।
आश्रव छेदि गहो निज संवर, काटहु करम पुराणावे ॥

पाखिहि मासि नीरसु भोयणु, ले करि सेवउ आणावे ।
समकति ओहुधि दस विधि पूरहु निम्मलु धम्म किराणावे ॥

सुद्ध सरूप सहजि लिव निसिदिन, भावउ अंतरि भाणावे ।
जपति 'बूचा' जिम तुम्हि पावहु, वंछित सुख निरवाणावे ॥

सुख निर्वाण निर्भय ठाणं, सिव रमणी मस्तकि तिलयं ।
आत्मप्रतिबुद्ध अभि कवि सुद्धं, बत्तीसो गुण पद निलयं ॥

॥ इति टंडाणा गीत समाप्ता[1] ॥

□□□

१. गुटका दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

७

भुवनकीर्ति गीत

आजि वधाउ सुणहु सहेली, यहु मनु पदुमनु विघसइ जिमकलीए ।
गोट्ठि ग्रनंद नित कोटिहि सारिहि, सुहु गुरु सुहु गुरु वेदहि सुकरि रलीए ।।
करि रली बन्दहु सखी सुहु गुरु लवधि गोइम सम सरे ।
जसु देखि दरसणु टलहि भवदुख, होइ नित नवनिधि घरे ।।
कपूंर चन्दन ग्रगर केसरि ग्राणि भावन भावए ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमोहूं, सखी ग्राज बद्धावहो ।।१।।

तेरहु विधि चारित प्रतिपालइ, दिनकर दिनकर जिम तपि सोहइए ।
सर्वज्ञि भासिउ धर्म सुणावै वाणी हो वाणी भव मनु मोहइए ।
मोहन्ति वाणी सदा भवि सुनु ग्रन्थ ग्रागम भासए ।
षट् द्रव्य ग्ररु पञ्चास्तिकाया सप्ततत्व पयासए ।।
वावीस परिसह सहइ ग्रंगिह गरुव मति नित गुणनिधो ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमि सु चारितु तनु तेरहु विधो ।।२।।

मूलगुणाहं ग्रठाइसइ धारइए मोहए मोहु महाभडु ताडियो ए ।
रतिपति तिणु दंतिहि महिइउ पुणु कोवडुए कोवडुकरि तिहि रालीयो ए ।।
रालियो जिमि कोवड करिहि वनउ करि इम बोलइ ।
गुरु सियलि मेरहु जिउ ग्रजंगमु पवण भइ किम डोलए ।
जो पंच विषय विरतु चित्तिहि कियउ खिउ कम्महु तणु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमइ धरइ ग्रठाइस मूलगुणु ।।३।।

दस लाक्षण धर्म निजु धारि कु सजमु भूसणु जिसु वनिए ।
सत्रु मित्रु जो सम किरि देखई गुरनिरगंथु महामुनीए ।।
निरगंथु गुरु मद ग्रट्ठ परिहरि सवय जिय प्रतिपालए ।
मिथ्यात तम निर्द्धण दिन म जैणधर्म उजालए ।।
तेरेमव्रतहं ग्रखल चित्तहं कियउ सकयो जम्मु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमउ धरइ दसलक्षिण धम्मु ।।४।।

सुर तरु संघ कलिउ चितामणि दुहिए दुहि ।
महोछा करि करि ए पंच सबद बाजहि उछरंगि हिए ॥
गावहि ए कामणि मधुर सरे अति मधुर सरि गावति कामणि ।
जिणहं मन्दिर प्रवही अष्ट प्रकार हि करहि पूजा कुसममाल चढावहि ॥
बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ बयोसह गुगे ।
श्री भुवनकीर्ति आसीरवादहि संघु कलियी सुरतरो ॥

॥ इति आचार्य श्रीभुवनकीर्ति गीत ॥

□□□

८

पार्श्वनाथ गीत

जाग सलौनडी ए सुण एक बाता ।
पार्श्व जिणेंद सिवां एहु मन राता ।
राता यहु मन चरण जिणवर वामादेवी नंदनो ।
एक जगतगुरु जगनाथ वंदो, पुण्य का फल पावए ।
जिन कमठ बल तप तेज हारयो, मन धर्‍यासि धरवणीए ।
कवि वल्ह परस जिणेंद वंदो, जाग रयण सलौनीए ।।१।।
कुंकम चदन सबल करीजे, चउसर माल गले कुसम ठवीजे ।
कुसमैं ठवीजें हार गुंथित, न्हाण पूज करावइए ।
एक जगत गुरु जगनाथ वंदो, पुण्य का फल पावए ।
जिन अष्ट कर्म्म विदार क्षय करि, मन धरयासि धरवणीए ।
कवि वल्ह परस जिणेंद्र वंदो, सवलि चंदन कीजिए ।।२।।
त्रिभुवणं तारण मुक्त नरेसो, सत फणतो णिकरे रहीया सेसो ।
रहीया सेसो सात फणि, अंत किवही न पाइया ।
ध्याणिवइ कोडी फिरइ, निभकरि पुरुष डिढ चित लाइया ।
घरि पुत्त संपइ लेइ लक्ष्मी, दुरति निकंदना ।
कवि वल्ह परस जिणंद वंदइ, स्याम त्रिभुवन वंदना ।।३।।
जन्म वनारसे उतपते जासो, अलिवर विषम गढोन्निय निवासो ।
लिया निवास थान अलवर, सघ आवइ वहु पुरे ।
एक अंग मंडित कनक कुंडल, श्रवन मुख हीरे जडे ।
दहु पंच सहसउ वद तरेसठ, माघ सुदि तिथि वारसी ।
कवि वल्ह परस जिणेंद वंदो जन्म लिया वनारसी ।।४।।[1]

।। इति पार्श्वनाथ गीत समाप्तो ।।

□□□

१. प्रस्तुत पार्श्वनाथ गीत अभी एक गुटके में उपलब्ध हुआ है । गुटका आमेर शास्त्र भण्डार में २६२ संख्या वाला है । इसमें पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है । यह गीत संवत् १५६३ माघ सुदी १२ को लिखा गया था । कवि की अब तक उपलब्ध कृतियों में यह प्राचीनतम कृति है ।

९

राग वडहंसु

ए सखी मेरा मनु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा ।
ए वहु पडियउ लोभ रसे खिणु सुभ ध्याने ना आवै वेहा ।।
आवै न खिणु सुभ ध्यानि लोभी पंच संगिहि रात वो ।
मोहिया इंनि ठगि मोहि धूरति बिषु अमी करि जातवो ।
निगोद नर यह सहे वहु दुख कियो भ्रमणु घणेर वो ।
दस दिसिहि ध्यावै हरि न रहई सखी मनु मेरवो ।।१।।

एहउ वरजे रही हरि न सुणै अचरु चरै दिन रयणे वेहा ।
ए यहु मातउ आठमदे तउ न चाहीयउ नयणे वेहा ।
चाहीया तत्तु न न्यान नयणि हि सुमति चिति न धारिया ।
मिथ्याति पडिया नाद कालि हु अनमु एवइ हारिया ।
मुल्लिया तितु भव मझि सागरि घून ते जाण्या सही ।
सो अचरु चर इन सुणइ कहिया वरजिहउ तिसुको रही ।।२।।

एति तु निगुण सिवा चेतनो क्या धुलि रहिउ लुभाए वेहा ।
ए निरंजनो पटल अजनि राख्या धूरतै छाए वेहा ।
छाइया धूरति पटल अंजनि राउ त्रिभुवन केरउ ।
दुख रोग सोग विजोग पंजरि किया आइ वसेरउ ।
अप्पणउ वस्तु तजि हुवउ परवसि लछि धरि कायर जिव ।
धुल रह्या निसि दिनु सगुण चेतनु निगुण तिसुनारी सिवा ।।३।।

ए रयणत्तउ वर तो भजो सुण सुण जीय हमारे वेहा ।
ए सरवनि धम्मो पालिनि जो औगुण मिटहि तुम्हारे वेवा ।
तुम मेटहि अवगुण जीय संभलि धम्मो जो सरवनि कह्या ।
मनि वचनि काया जिन्हिहि पाल्या सासुता सुख तिन्ही लह्या ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे अब आथा भवो ।
बूचराज कवि मंगु जाय म्हारे वरतु यहु रयणत्तउ ।।४।।

× × ×

१०

राग धनाश्री

सुणिय पधानु मेरे जीयवे, की सुभ ध्याति न आवहि ।
साचा धम्मु न पालिया फिरि फिरिता गति धावहि ।।
फिरि फिरि गति ध्याया सुख न पाया हुंढयाए उतपंदा ।
इन्ह विरवया संगिहि पया कुढ गिहि काता आपुरि चंदा ।।
सुह असुह कमह किसुह समइ तू जाणहि आपु कमावही ।
सुणिय पधानु मेरे जीयवे की सुभ ध्यानि न आवहि ।।१।। टेर

खुभिया पंकज मोहनी सत्तरि कोडा कोडिवे ।
नलका सुक जिउ भासिया सवया न बंध छोडिवे ।।
नहु बंधण छोड उडिया लोडै करै कलाप रे ।
रसु रसणिहि चाख्या मूलू न राख्या कीए गते हि वसेरे ।।
ठगि ठगिया लोभे नडि मोहे जडिया घाल्या आपणु बोडिवे ।
खुभिया पकज मोहनी सत्तिरि कोडाकोडिवे ।।२।।

सपति सजन सरीरि सुत पेखि न मुल्ला सभायवे ।
खेवट केरी ना वजिउ मिले सजोगिहि आइवे ।।
मिलिया संजोगिहि इन्हही लोगिहि पुव्वहि पुन्न कमाणे ।
यहु रत्नु चितामणि कवडी कारणि खोउ न मूढ अयाणे ।।
पउरगु सनेह यहु सुखु एह मधुबिंदु रस सायवे ।
सपति सजन सरीरि सुत पेखि न मुल्ला सभाइवे ।।३।।

अरहंत देउ निरगंथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।
जिनि यहु निजु करि जाणीया कीया सफलु तिन्ह जम्मुजी ।।
तिन्ह जमणु सहला गयान अहला जिनही समकतु जाता ।
दुरगति दुखु टाल्या सीयलु पाल्या मिथ्या जालि न फात्या ।।
जंपति 'बूचा कहइ सरवनि जोति सुर्मात मानहु भरमु जी ।
अरहंतु देउ निरगंथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।।४।।

× × ×

११

राग घनाक्षरी

पट मेरी का चोलणा लालो लौंग ग मोती का हारवे लालो ।
पहिरि पटंवर कामिनी लालो, नौ सती किया सिंगारु वे लालो ।।
सिंगारु करि जिण भवणि आई, रहसु वहु मन महि घणा ।
सभ ईछ पूनी भया आनंदु देखि दरसनु तुम्ह तणा ।।
कप्पूर चंदनि अगरि केसरि अंगि चरची मेलया ।
सिरि संति जिणवर करहु पूजा पहिर पाटम चोलया ।।१।।

राइ चंवा अरु केवडा लालो मालवी मारवा जाइवे लालो ।
कुद मचकुंद अरु केवडा लालो, सेवती वहु महकाइ वे लालो ।।
महकाइ वहु सेवंती पाडल राइवेलि सुहावणी ।
सुनल सोवन कवल कवियरु नव निवली अति घणी ।।
ले आउ मालणि गुंथि नवसरु देखि विगसै हीयडा ।
माला चहोडै सीसि जिणवर राइ चंवा केवडा ।।२।।

पच कलस भरि निरमल लालो, स्वामी न्हवणु करेहि वे लालो ।
भावहो कामिनी भावना लालो, पुन्न तणा फलु लेहि वे लालो ।।
फलु लेहि भवियण पुन्न केरा, करि महोछा भावहो ।
नारिंग तुरी जु जभीर नेवजु आणि सीमि चडावहो ।।
आरती लेकरि फिरहु आगे गहिर शब्द वजावहो ।
सिरि संत जिणवर न्हवण कीजै पंच कलस भराव ही ।।३।।

वडु हथिनापुरु वदियै लालो, जिंह स्वामी अवतारु वे लालो ।
सफलु जनमु यहु जाणियै लालो, तेय मुकत्ति दातारु वे लालो ।।
मुकति दाता नयणि दीठा रोगु सोगु निकंदणो ।
अवतारु अचला देवि कुखिहि राइ विससेण नंदणो ।।
जगदीस तू सुण भणइ बूचा' जनम दुखु वालिद हरो ।
सिरि संति जिणवरु देउ तूठा थानु गढि हथिनापुरो ।।४।।

× × ×

१२

पद रागु गौडी

रंग हो रंग हो रंगु करि जिणवरु ध्याईयैं ।
रंग हो रंग होइ सुरंगसिउ मनु लाईयै ।।
लाईयै यहु मनुरंग इस सिउ अवरु रंगु पतगिया ।
घुलि रहइ जिउ मंजीठ कपडे तेव जिण चतुरंगिया ।।
जिव लगनु वस्तरु रंगु तिवलगु इसहि कानर गाव हो ।
कवि 'वल्हू' लालचु छोडु झूठा रंगि जिवरु ध्याव हो ।।१।।

रंग हो रंग हो पंच महाव्रत पालियै ।
रंग हो रंग हो सुख अनंत निहालियै ।।
निहालियहि सुख अनंत जीयडे आठ मद जिनि खिउ करे ।
पंचिंदिया दिढु लिया समकतु करम बंधण निरजरे ।।
इय विषय विषयर नारि परधनु देखि व चित्त न टाल हो ।
'कवि वल्हू' लालचु छोडि झूठा रगि पच व्रत पाल हो ।।२।।

रंग हो रंग हो दिढु करि सीयलु राखीयैं ।
रंग हो रंग हो रात बचन मनि भाखीयैं ।।
भाखियै निज गुर ज्ञान वाणि रागु रोसु निवार हो ।
परहरहु मिथ्या करहु संवरु हीयइ समकतु धार हो ।।
बाईस प्रीसह सहहु अनुदिनु देहसिउ मंडहु वलो ।
'कवि वल्हू' लालचु छोडि झूठा रंगु दिढु करि सीयलो ।।३।।

रंग हो रंग हो मुकति रवणी मनु लाईयें ।
रंग हो रंग हो भव संसारि न आइयै ।।
आइयै नहु संसारि सागरि जीय बहु दुखु पाइयै ।
जिसु बाझु चहुगति फिरघा लोडै सोइ मारगु ध्याइयैं ।।
तिभुवणह तारणु देउ अरहुंत तासु गुण निजु गाइयै ।
'कवि वल्हू' लालचु छोडि झूंठा मुकति सिउ रगु लाइयै ।।४।।

× × ×

१३

रागु दीपु

न जाणी तिसु वेल की वे चेतनु रह्या लुभाई वे लाल ।
चित हमारी राजे परहरी वे सुद्धंतरि लिवलाइ वे लाल ।।
अंतरि लिवलागी आरति भागी जाण्या थूलु निराला ।
लोका अवलोक सभे जिनि दीपे हूवा सहजि उजाला ।।
निरमलु रसु पीवै जुगि जुगि जीवै जोतिहि जोति समाइवे ।
न जाण्यो तिसु वेल को वे चेतन रह्या लुभाइ वे लाल ।।१।।

जिथी रूपन गंधरसो वे पयासु तिथि जाइ वे लाल ।
सरगुण विधानि गुण सिवावे किती हेलि सभाइ वे लाल ।।
किसी सउझाए चित्ति चाए आपनड़ै सुखि थीए ।
रंग महि नित अंछै कहि न गछइ अमिय महारस पीए ।।
जगु जाणइ सोवै उहु सभु जोवै उनमनि रच्यौ मनु लाइवे ।
जिथी रूपुन गंधर सोवे पया मुतिथी तूं जाइवे लाल ।।२।।

वालत्तण की वालहीवे हो रत्ती तै नालि वे लाल ।
दुख सुख किती भोगवे वे संभि अनादी कालि वे लाल ।।
संगि नादी काले विथी वाले जोबन दैगे वारे ।
जे जे सुखमाणे आपी माणो तेइ वखिति चितारे ।।
हम साथि विरच्या अवरे रच्या साकि न वाचा पालिवे ।
वालत्तण की वालही वे ही रत्ती तै नालि वे लाल ।।३।।

जोया सोई सोहु बावे क्या अखातै नालिवे लाल ।
पाली दरि जे वस रोवे अिवसर अवरि पालिवे लाल ।।
सर अंदरि पाले देखु निहाले आगमि ध्यातमि कहिया ।
जो परम निरंजणु सव दुख भंजणु इव जोगी सरि लहिया ।।
जंपति 'बूचा' गरु सरियैं सागरु ऐसी बुद्धि संभालिवे ।
जोया सोई सो हुवावे क्या अखातै नालि वे लाल ।।४।।

× × ×

१४

रागु सूहड

वाले वलिवेहु मावे मनु माया छुलि रातावे ।
वाले वलिवेहु मावे रहइ आठ मदि मातावे ।।
मदि हई माता धरमु न जाता जो सरवनि हि भास्या ।
धन पुत्त कलत्ता मित्ता हित्ता देखत हियै विगस्या ।।
सा विसरीके व नरकि जा भोगी वेदन दुसहु असाता ।
करुणा करुतारि कहै जन 'वूचा'..........................।
वाले वलिवेहु मावे मनु माया छुलि रातावे ।।१।।

वाले वलिवेहु मावे सवल मिथ्यातिहि मोह्यावे ।
वाले वलिवेहु मावे पंच ठगिहि मिलि दोह्यावै ।।
ठगि पंचिहि वोह्या तै नहु जोह्या साचा समकतु सारो ।
चौगति हींडतह कष्ट सहतह मूलि न लद्धा पारो ।।
आगम सिद्धंतह वचन सुणतह तै नहु चितु पउ वोह्या ।
करुणा करुतारु कहै जन 'वूचा' ।
वाले वलिवेहु मावे सवल मिथ्यातहि मोह्या वे ।।२।।

वाले वलिवेहु मावे जी लोहा पारसु पर सैवे ।
वाले वलि हु मावे ताहु कंचणु दरसैवे ।।
हुइ कंचणु दरसै सगति सरसै सुद्ध सरुउ पिछाणै ।
सहु अदरु भीतरु एको हावै ता परमारथु सहु जाणै ।।
आनन्द रूपी नित रहइ निरंतरि कवलु हियै महि हरसै ।
करुणा करुतारुक कहइ जन 'वूचा' ।
वाले वलिवेहु मावे जी लोहा पारसु परसैवे ।।३।।

वाले वलिवेहु मावे सेवहु तिहुवण राया वे ।
वाले वलिवेहु मावे जिनि सांचा मग्गु दिखाया वे ।।
जिनि मग्गु दिखाया लिव मनु लाया तिसु अन्यामहि रहियै ।
अविहडु अविनासी जोति प्रकाशी थानु मुकति जिय लहियै ।।
भौउ भागउ संसारह अति घोरह पुनरपि जनमनु पाया ।
करुणा करुतारु कहइ जनु 'वूचा' ।
वाले वलिवेहु मावे सेवहु तिहुवण रायावे ।।४।।

× × ×

१५

रागु विहागडा

ए मेरे श्रंगरणे वागंबा वासो चवे कोवल कलियावा ।
ए मइ गुंफि पडघा वा नवसर सो नव सरकरि मने रलिया वा ।।
मनि रलिय करि गुंथ्यासि नवसर जिणह पूज रचावहे ।
सा सुता सुख जिउ मिलहि वंछित जमु न चौगइ पावहे ।।
जिसु देखि दरसणु टरहि भव दुख भाउ उपजै खिणु खिणो ।
जि अदिजिण कारणि नि पाया राइचंवा श्रंगणो ।।१।।

ए तेरे चरणे वा चरणे वा चरणि मेरा मनो मोह्यावा ।
ए दुइ लोयणे वा श्रनदोसो श्रनदोसो जम्मो जोह्यावा ।।
जोह्यासु जा मुख देव केरा श्रवरु नहु सेवउ किसो ।
जिनि श्राठ मद निरजरे वलु करि हीयइ गुण वसिया तिसो ।।
वंधिया तूं इन करमि कठिनिहि भविउ जनम घणेरिया ।
मोह्या सु इन चितु श्रादि जिणवर चलणि इन दुहु तेरिया ।।२।।

पिरतिइ नेहडी कीजै वेसा कीजै जिणवर भाषीवा ।
ए षटु कायहा वा जाणी वा सो वाणी तिन्ह दिणे राखीवा ।।
तिन्ह राखि दिढु दे श्रभइन्हा परि करि नहि सैइकु खिणु ।
जिम जाणि वेयण किया निय तण तिम सुवयण पर तिणु ।।
इकु रहहु समकति सदा निश्चलु जिम सुमूलु न छीजए ।
हम कहउ श्रादि जिणंद स्वामी पिरतिन्हा परि कीजए ।।३।।

ए चंद निरमली वा वाणी वा सो वाणी भवियह पारो वा ।
ए व्रत बारहा वा धारो वा सो धरि तरहुसए सारोवा ।।
सइसारु सागरु तरहु जिम जय पचमह वम दिढु रहो ।
वाईस प्रीसह सहहु दुग्गम तेइ श्रहि निसि सहो ।।
सव्वु ईहु पुनीय भणइ 'बूचा' जनमु सफला जाणिया ।
उतस्यात श्रनु सुणि श्रादि जिणवर चद निरमली वाणीया ।।४।।

× × ×

१६

रागु आसावरी

दोहा :—सजमि प्रोहणि ना चडे भए अनंत संसारि ।
स्वामी पारे उत्तरे हमि थके उरवारे ।। छंदु ।।

हम थाके उरवारि स्वामी पारेगए ।
समकतु संवलो नाहते नरदीन भये ।।
ते भये दीन जहीन समकति मग्गि जिणवर ते खडे ।
गति चारि चउरासिय लख महि जनमु करि ते रूले ।।
बहु वारि दरसनु भया स्वामी धम्मु पालि न सकिया ।
तुम्हि पारि पहुते वीर जिणवर असे पतणि थकिया ।।१।।

इक्क लडेन्नरु माहि देखे कष्ट वहो ।
आसत वेदन घोर सहारै कवण कहो ।।
कहु को सहारइ घोर वेदन ताइ तावा पावहे ।
करि लोह थंभसि अग्गिवंने आणि अंगि लगावहे ।।
छेयणत भेयण डंड मुद्गर तनु पहारे सल्लिया ।
दुख कष्ट देखे सुणहु स्वामी नर माहि इकलिया ।।२।।

सेव्या कुगुरु कुदेउ पडियाक धम्म मते ।
पुदगल प्रवतिन काल कीती वहुत थुते ।।
थुति वहुल कीती सुणहु जीयडे आठ कम्मिहि तू नडया ।
वलु करि डिगाया पच धुत्तिहि एव मिथ्यातिहि पडया ।।
नित चडयो मान गयंदि मय मति तत्त चित्ति न वेहिया ।
पडिया कुद्धम्मिहि सुणहु जीयडे कुगुरु हेते सेविया ।।३।।

हम चातिगह पियास दरिसन नीर विणा ।
अवतनि ताप वुझाउ सरवनि सरस घणा ।।
घण सरस सरवनि करुणा मवहु पारु लखाव हो ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे तिन्हहु वेगि छुडाव हो ।।
कर जोडि 'बूचा' भणइ सेवगु मेटि जिण अंतरि तम ।
तुम्ह नीर दरसण वाभु स्वामी पिलावहु चातिग हम ।।४।।

× × ×

१७

गीत

निरत निरत नवली देहडी निरत निरत अवइ कम्मु ।
निरत निरत आवइ कुल अमल, निरत निरत माणसु जम्म ।
निरत निरत न माणसु जम्मु लाभइ, निरत निरत न वांछित पावइ ।
निरत निरत न अरि जु खेतु लभै, निरत न सुभ मति आवये ।
निरत निरत न सुभ गुरु होइ दंसणु, धम्मु जो जंपइ इहि ।
तो चेतना करि चेतन संभालउ, मणुव जम्म न निरत निरतो ।।१।।

जा लगु खिसियम जोवना. जा लगु जरा न अणावै ।
जा लगु तनु न संकोचिये, जा लगु रोग न आवै ।
आवइ न जा लगु रोगु अंगइ, तेजु नहु जब लगु खलइ ।
जब्ब लग न मति श्रुति भइ भिभल, जाम बल इन्द्री मिल्यो ।
जब लग न बिछुडे प्राण प्राकम ताम तन पसरी गुणो ।
जब्ब लग न चेतनु चढिउ आसणु, जाम खिलियन जोवणो ।।२।।

राजु दुवारह झल्लरी, अहि निसि सबद सुणाणी ।
सुभ असुभ दिनु जो घटइ, बहुडि न सो फिरि आवइ ।
आवइ न सो फिरि घटइ जो दिनु आउ इणि परि छीज्जइ ।
पोरसहु सम्माइकु व्रत संजमु खिणु विलम्ब न कीजिए ।
पंच परमेष्ठी सदा प्रणमउ, हियइ निज्ज समिकितु धरहु ।
खिण खिण चितावइ, चेत चेतन राजद्वारह झल्लरी ।।३।।

जो सरवनि निज्ज भाखियो सो उत्तिम धम्मु पालहु ।
थावर जंगमु जे जिया ते सम्मदिष्टि निहालउ ।
निहालि ते समदिष्टि जीवा, नंत न्यानि ये कह्या ।
षट् द्रव्य अरु पंचस्तिकाया, छूत घटवत भरि रह्या ।
इम भणइ बूचा व्रत उत्तिम तीनि रतन प्रकासिया ।
सुख लहउ वंछित सदा पालहु धरमु सरवनि भासिया ।।४।।

× × ×

गुटका संख्या मन्दिर बधीचन्द जी शास्त्र भण्डार—वेष्टन संख्या ९७१ ।

१८

गीत

ए मनुषि लियडा कवल विमस्सेवा ।
ए जिरणु देखीयडा पापा पणस्सेवा ।।

सहि पाप पणासे जनम केरे देव दरसनु जोइया ।
सयल वछित इछ पुन्निय भावहा पति गोइया ।।
गहु गहिय अंगि नमाइ सुंदरि रोरु कसमलु पिल्लिया ।
श्री वीर जिरगवर भवणि आई सखी तनु मनु खिल्लिया ।।१।।

आजु दिनु धनो रयरिग सुहाइवा ।
आई तउछरगि जिणह मंदरि देव गुरगवहु गाइया ।
संसारि सफला नमु किया धम्मसि मनु लाइया ।।
सिद्धथराइ नरिंद नदनु दिपइ अति उज्जल तनी ।
श्री महावीरु जिरगदु स्वामी दिवसु आजु जाण्या धनो ।।२।।

ए गुंथि मालरगे माल लिवाईया ।
एमइ भाव सिवा जिरग चडाईया ।।
चडाइ जिरगसिरि माल कुसमह, महमनिहि भावन भाईया ।
कप्पूरि चदनि अगरि केसरि जिराहु पूज रचाईया ।।
त्रिभुवनाहु नाथु अनाथु स्वामी मुकति पंथ उजालणे ।
श्री वीर जिरगवर भवरग लाई माल गुथी मालणे ।।३।।

ए सिव अनत सुखादेण दातारावे ।
एनु म्हु चलरिग मनो रचिउ हमारावे ।।
हम रचिउ मनु तुम्हु पदहु पंकज जरा मरगु निवारहो ।
बयाल इव किछु करहु करुरगा भवहु सागरु तारहो ।।
बूचराज कवि चहुगति निवारणु, सिद्धरवरगी रातवो ।
श्री महावीरु जिरगदु पणविउ अनत सिव सुख दातवो ।।४।।

× × ×

१६

गीत

धम्मो दुग्गय हरणो, करणो सह धम्म मंगल मूलं ।
जे भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरह पालोहु ।।१।।

जिसो सुकुल विनु सीलु भणिज्जै, रुपु तिसो विणु गुणह थुणिजै ।
जिसो सु दीखै विणु पत्तह तरु, तिसो सु जिण धम्मह विणु जगि नरु ।
हेमु तिसो बली विनु जाणहु, ग्रत्थ हीणु जिउ कावु बखाणहु ।
ग्रर्क विना जैसे दीसै दिनु, जती ओगु जिसौ चारित विनु ।।२।।

चारित विनु जती तपी विन मतवै, जोई विनु जो ध्यान ग्रहै ।
पढ्या विनु सिद्धि बुद्धि विन पंडिय, विनु सिद्धह जोवावहे ।
मन विनु जिउ भूह भूह बिनु भोगी, कतपीसु विनु खिमा थुणे ।
जिण सासण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिणधम्म बिना ।।३।।

समीयरु विनु रैणि दिवस बिनु दिनीयरु, विन परिमल जे कुसम भणे ।
विनु तेय सुरंग जलह विनु सरवर, विनु चातिक रुष बाधु घणं ।
पिक विणु तरु सूंड विणु गयवरु, जिउ दल बिणपै सतरणं ।
जिण सासण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिण धम्म विना ।।४।।

छत्तह विणु डंक गुण विणु जिउ धण, कंठह विणु जे थुणहि गीयं ।
कर विणु जिउ ताल वेस विणु लावण, विणु लज्जु जे कुलतीयं ।
लछी विणु लोल सुरह विणु वीरहि जिउ दल विणु पैसं तिरणं ।
वण विणु जिउ सिंघ मोर विणु गिरवर, हंस विणु जिउ मानसर ।।५।।

विस बिनु जिउ उरग, लूण विणु भोयणु, जिसो सु विणु केवै भवर ।
मंती विणु नृपति सोम विणु पटणि सुक वल्लह वसवुभणं ।
जिसी रैणि बिनु जोति, तिसो चकवी विणु दिनीयरु ।
जिसी दीप बिणु रैणि तिसी बिहुणि मे बरि ।।६।।

विणु कवि भोयण जिसा वन्धरसि तिसी कहाणी ।
जिसा भाव विणु भगति तिसो मोती विणु पाणी ।
तैसो जु वीजु कल ख योगि रही संपै वा घातिउ ।
कवि कहै वल्हे रे वुहयणह जिण सासण विगुजम इव ।।७।।

लिखितं कल्याण सवत् १६४८ वरष कातम वदि अमावस्या ।

□ □ □

२

छीहल

१६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के जैन कवियों में छीहल सबसे अधिक चर्चित कवि रहे हैं। रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास से लेकर सभी इतिहासकारों ने किसी न किसी रूप छीहल का नामोल्लेख अवश्य किया है। छीहल राजस्थानी कवि होने के कारण राजस्थानी विद्वानों ने भी अपने अपने इतिहास में उनकी रचनाओं का परिचय दिया है।

सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल ने छीहल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "ये राजपुताने के ओर के थे। संवत् १५७५ में उन्होंने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहों में राजस्थानी मिली भाषा में बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकती। इसमें पांच सखियों की विरह वेदना का वर्णन है। इनकी लिखी बावनी भी है जिसमें ५२ दोहे हैं। उदाहरण के रूप में उन्होंने पञ्च सहेली के प्रथम दो एवं अन्तिम एक पद्य भी उद्धृत किया है।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने अपने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" में कवि की पञ्च सहेली गीत के परिचय के साथ ही उनके सम्बन्ध में अपना अभिमत लिखा है कि "इनका कविता काल संवत् १५७५ माना जाता है। इनकी पञ्च सहेली नामक रचना प्रसिद्ध है। भाषा पर राजस्थानी प्रभाव यथेष्ट है क्योंकि ते स्वयं राजपुताने के निवासी थे। रचना में वियोग शृंगार का वर्णन ही प्रधान है।[2]

मिश्रबन्धु विनोद में छीहल का वर्णन रामचन्द्र शुक्ल एवं रामकुमार वर्मा के परिचय के आधार पर किया गया है। क्योंकि उद्धरण भी शुक्ल वाला ही दिया गया है। वे लिखते हैं कि इन्होंने संवत् १५७५ में पञ्च सहेली नामक पुस्तक बनाई जिसमें पांच अबलाओं की विरह वेदना का वर्णन है और फिर उनके संयोग का भी कथन है। इनकी भाषा राजपुताने तरें की है और इनकी कविता में

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १६८।

२. रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ५४४।

छन्दोभंग भी है। इनकी रचना से जान पड़ता है कि ये मारवाड़ की तरफ के रहने वाले थे क्योंकि उन्होंने तालाबों आदि का वर्णन बड़े प्रेम से किया है।[1]

डा० शिवप्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" में छीहल का सबसे अच्छा मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।[2] यही नहीं उन्होंने रामचन्द्र शुक्ल एवं डा० रामकुमार वर्मा के मत का उल्लेख करते हुए कवि के सम्बन्ध में निम्न प्रकार अपने विचार लिखे हैं—"आचार्य शुक्ल ने छीहल के बारे में बड़ी निर्ममता के साथ लिखा, संवत् १५७५ में इन्होंने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहो मे राजस्थानी मिली भाषा मे बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नही कही जा सकती। इनकी लिखी एक बावनी भी है जिसमें ५२ दोहे हैं। पञ्च सहेली को बुरी रचना कहने की बात समझ में आ सकती है क्योंकि इसे रुचि भिन्नता मान सकते हैं। किन्तु बावनी के बारे में इतने निःसंदिग्ध भाव से विचार किया यह ठीक नही है। बावनी ५२ दोहो की एक छोटी रचना नहीं है बल्कि इसमें अत्यन्त उच्चकोटि के ५३ छप्पय छन्द हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने छीहल की पञ्च सहेली का ही जिक्र किया है। वर्मा जी ने छीहल की कविता की श्रेष्ठता-निकृष्टता पर कोई विचार नही दिया किन्तु उन्होंने पञ्च सहेली की वास्तविकता का सही विवरण दिया है।"

इसके पश्चात् 'राजस्थानी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में डा० हीरालाल महेश्वरी ने छीहल कवि का राजस्थानी कवियो मे उल्लेखनीय स्थान स्वीकार करते हुए उनकी पञ्च सहेली और बावनी को काव्यत्व से भरपूर एव बोलचाल की राजस्थानी मे बहुत ही अनूठी रचनाएँ मानी हैं।[3] इसके पश्चात् और भी विद्वानों ने छीहल के बारे में विवेचन किया है। डा० प्रेमसागर जैन ने छीहल को सामर्थ्यवान कवि माना है। तथा उनकी चार रचनाओ का परिचय एवं बावनी का नामोल्लेख किया है।[4] लेकिन जैन विद्वानो मे डा० कामता प्रसाद, डा० नेमीचन्द शास्त्री आदि ने छीहल जैसे उच्च कवि का कही उल्लेख नही किया है।

जन्म परिचय

छीहल राजस्थानी कवि थे। वे राजस्थान के किस प्रदेश के रहने वाले थे

१. मिश्रबन्धु विनोद—पृ० १४३।
२. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० १६८।
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य – पृ० २५५–५८।
४. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १०१–१०६।

इसके बारे में उन्होंने स्वयं ने कोई परिचय नहीं दिया है। लेकिन पञ्च सहेली गीत में कवि ने जिस प्रकार कुए पर पानी भरने के लिए आने वाली पांच विरहिणी स्त्रियों का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके परस्पर की वार्तालाप को काव्यबद्ध किया है। उससे ऐसा लगता है कि कवि शेखावाटी प्रदेश के किसी भाग के थे जो ढूंढाड प्रदेश की सीमा को भी छूता था। बावनी में दिये गए परिचय के अनुसार वे अग्रवाल जैन थे तथा दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में उत्पन्न हुए थे। कवि ने 'लघुवेलि' में जिस प्रकार जिन धर्म की महत्ता का वर्णन किया है उससे स्पष्ट है कि वे दिगम्बर अनुयायी श्रावक थे।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि के जैन होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।[2] इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने कवि का लघु गीत नहीं देखा। पंथी गीत का भाव नहीं समझा। पिता का नाम नाथू जी नल्हिग वंश के थे।[3] इससे अधिक परिचय अभी तक नहीं मिल सका है। खोज जारी है और हो सकता है किसी अन्य सामग्री के उपलब्ध होने पर कवि के सम्बन्ध में पूरा परिचय ही प्राप्त हो जावे।

छीहल रसिक कवि थे। जब उन्होने पञ्च सहेली गीत की रचना की थी तो लगता है वे युवावस्था में थे। और किसी के विरह में डबे हुए थे। कवि पानी भरने के लिए कुए पर जाते होंगे और उन्होंने वहां जो कुछ सुना अथवा देखा उसे छन्दोबद्ध कर दिया। मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, आदि जाति की युवतियां वहां पानी भरने आती होंगी। जब उसने उनसे अपने अपने विरह की बात सुनायी तो कवि ने उसे छन्दोबद्ध कर दिया। कवि की अब तक ७ रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं। यद्यपि बावनी को छोड़कर सभी लघु रचनाएं हैं। किन्तु छोटी होने पर भी ये काव्यमय हैं तथा कवि की काव्य-शक्ति को प्रस्तुत करने वाली हैं। सात रचनाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

१. पञ्च सहेली गीत
२. बावनी
३. पंथी गीत
४. लघु वेली
५. आत्म प्रतिबोध जयमाल

---

१. श्री जिनवर की सेवा कीजो रे मन मूरख आपणा ॥१॥
२. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १६८।
३. नाल्हिग वंसि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
बावनी वसुधा विस्तरी कवि कंकण छीहल कवि ॥५३॥

६. उदर गीत
७. वैराग्य गीत

१. पञ्च सहेली गीत

यह राजस्थानी भाषा की कृति है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि इसमे पाच तरुणी स्त्रियों ने मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, प्रोषित पतिका नायिका के रूप मे अपने प्रियतमों के विरह में, अपने करुण आवेगों का वर्णन अपने पति के व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का उल्लेख और तत्सम्बन्धी उपमाओ और रूपकों के सहारे किया है।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने पञ्च सहेली को १६ वीं शती का अनुपम शृंगार काव्य माना है। साथ में यह भी लिखा है कि इस प्रकार का विरह वर्णन उपमानो की इतनी स्वाभाविकता और ताजगी अन्यत्र मिला दुर्लभ है।"[2]

पञ्च सहेली में पांच विभिन्न जाति की स्त्रियो के विरह की कहानी कही गई है। ये स्त्रिया किसी उच्च जाति की न होकर मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एवं सुनारिन हैं जिनके पति विदेश गये हुए हैं। उनके विरह में वे सभी स्त्रियाँ समान रूप से व्यथित हैं। कवि ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि पति वियोग मे प्रोषित पतिका कितनी क्षीणकाय म्लान मुख हो जाती हैं। उनके आंखों में कज्जल, मुख मे पान नही होता। गले मे हार भी नहीं पहना जाता और केश भी सूखे-सूखे लगते हैं। वह हमेशा अनमनी रहती है। तथा लम्बे श्वास लेती है। उनके अधरोष्ठ सूख जाते हैं तथा मुख कुम्हला जाता है।

छीहल कवि जिस किसी नगर के रहने वाले थे, वह सुन्दर था तथा स्वर्ग-लोक के समान था। वहा विशाल महल थे। स्थान-स्थान पर सरोवर थे तथा कुए और बावड़ियों से युक्त था। नगर मे सभी ३६ जातियां रहती थीं। लोगो में बहुत चतुरता थी। वे अनेक विद्याओं को जानते थे। तथा वे एक-दूसरे का सम्मान करते थे। नगर की स्त्रियां रूपवती एव रभा के समान लावण्यवती थी। नये नये वस्त्रा-भूषण पहिन कर वे सरोवर पर पानी भरने जाती थी। एक दिन इसी प्रकार नगर की कुछ नवयौवना स्त्रियां वस्त्राभूषणों से अलकृत होकर सरोवर के पास आई। उस समय बसन्त था। इसलिए उनमे और भी मादकता थी। उनमें से कुछ गीत गा रही थीं। कुछ झूलना झूल रही थी तथा एक-दूसरे से हास परिहास कर रही

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– पृ० ४४८।
२. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०।

थी। लेकिन उनमें पांच सहेलियां ऐसी भी थीं जो न नाचती थी, न गाती थी और न हंसती थी। कवि के शब्दों में उनकी दशा निम्न प्रकार थी—

तिन महि पंच सहेलियां नाचइ गावइ न हसइ।
ना मुख बोलई बोल……… ………………॥९॥

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिन्दो हार।
मुख तम्बोल न खाईया, ना कछु किया सिंगार॥१०॥

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास।
विलखी वइसी उनमनी, लांबे लेहि उसास॥११

सुन्दरियों ने जब उन्हें उदास देखा तो उसका कारण जानना चाहा क्योंकि साथ की सहेलियों ने कहा कि वे यौवनवती हैं उनकी देह भी रूप वाली है। फिर इतनी उदासी का क्या कारण है। यह सुनकर उन्होंने मधुर स्वर से अपना-अपना सच्चा दुख निम्न प्रकार कहा—

उन्होने कहा कि वे एक ही घर की अथवा जाति की नहीं अपितु मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एवं सुनारिन जाति की हैं। लेकिन विरह का कारण सब का समान है। इसलिए एक-एक ने अपने दुख का कारण कहना प्रारम्भ किया— सर्वप्रथम मालिन जाति की यौवना स्त्री ने कहा कि उसका पति उसे छोडकर परदेश चला गया है। जिसके विरह से वह अत्यधिक दुःखी है। उसका एक दिन एक वर्ष के बराबर व्यतीत होता है। यौवनावस्था में पतिदेव परदेश चले गये हैं। रात्रि दिन आँखों मे से आसू बहते रहते हैं। कमल के समान मुख कुम्हला गया है। सारा बाग सूख गया है। शरीर रूपी वृक्ष पर फूल लगने लगे हैं तथा दोनों नारंगियां रस से ओतप्रोत हैं लेकिन अब वे विरह से सूखने लगी हैं क्योंकि वन को सींचने वाला माली परदेश गया हुआ है।

पहिली बोली मालनी मुझको दुख अनन्त।
बालइ यौवन छांडि कइ, चल्यु दिसाउरि कंत॥१७॥

निस दिन बहवई पवाल ज्युं, नयनह नीर अपार।
विरहउ माली दुक्ख का सूभर भरया किआर॥१८॥

कमल बदन कुमलाईया, सूकी सुख बनराइ।
वाझू पीयारइ एक खिन, बरस बराबरि जाइ॥१९॥

तन तरवर फल लागिया दुइ नारिंग रसपूरि।
सूखन लगा विरह झल, सींचन हारा दूरि॥२०॥

दूसरी विरहिणी तम्बोलिन थी। वह पति के विरह में इतनी दुर्बल हो गयी थी कि चोली मात्र से ही पूरा शरीर ढक जाता था। वह हाथ मरोड़ती, सिर धुनती और पुकारती। उसका कोमल शरीर जलता। मन में चिन्ता छाये रहती और आंखों से अश्रुधारा कभी रुकती ही नहीं। जब से उसके पिया बिछुड़े तब से ही उसके सुख का सरोवर सूख गया—

हाथ मरोरउ सिर धुनउं, किस सउ करूं पुकार।
तन दाझई मन कलमलइ, नयन न खंडइ धार ॥२५॥
पान झडे सब रूंख के, बेल गई तजि सुक्कि।
दूमरि रति बसंत की, गया पियारा मुक्कि ॥२६॥
हीयरा भीतरि पइसि करि, विरह लगाइ आगि।
प्रीय पानी विनि ना बुझवइ, बलीसि सबली लागि ॥२७॥

छीपन आखों मे आसू भर कर कहने लगी कि उसके विरह का दुःख वही जानती है, दूसरा कोई नही जानता। तन रूपी कपडे को दुख रूपी कतरनी से वह दर्जी (प्रियतम) एक साथ तो काटता नही है और प्रतिदिन देह को काटता रहता है। विरह ने उसके शरीर को जला कर रख दिया है। उसका सारा रस जला कर उसको नीरस कर दिया है।

तन कपडा दुक्ख कतरनी दरजी विरहा एहु।
पूरा ब्योत न ब्योतई. दिन दिन काटइ देह ॥३२॥
दु:ख का तागा वीटीया सार सुई कर लेइ।
चीनजि बंधइ अविश्राम करि, नान्हा बरवीया देई ॥३३॥
विरहइ गोरी अति दही, देह मजीठ सुरंग।
रस लिया अवटाइ कइ, बाकस कीया अग ॥३४॥

चौथी कलालिन थी। वह कहने लगी कि उसका शरीर तो भट्टी की तरह जल रहा है। आखों में से आसू बरस रहे हैं जो मानों अर्क बन रहा है। उसका भरतार बिना अवगुन के ही उसको कस रहा है। एक तो फागुन का महिना फिर यौवनावस्था, लेकिन उसका प्रियतम इस समय बाहर गया हुआ है इसलिए उसकी याद कर करके वह मर रही है।

मो तन भाटी ज्यूं तपइ, नयन चुवइ मद धारि।
बिन ही अवगुन मुझ सूं, कसकरि रहा भरतार ॥३६॥
माता योवन फाग रिति, परम पियारा दूरि।
रली न पूजै जीव की, मरउ विसूरि विसूरि ॥४२॥

पांचवी विरहिणी सुनारिन थी। वह तो विरह रूपी समुद्र में इतनी डूब गई थी कि उसका थाह पाना ही कठिन था। उसके अंगों को मदन रूपी सुनार ने हृदय रूपी अंगीठी पर जला जलाकर कोयला कर दिया था। उसके विरह ने तो उसका रूप ही चुरा लिया जिससे उसका सारा शरीर सूना हो गया।

हूं तउ बूडी विरह मइ, पाउं नाहीं थाह ।।४५।।

हीया अंगीठी मसि जिय, मदन सुनार अभंग।
कोयला कीया देह का मिल्या सबेइ सुहाग ।।४६।।

इस प्रकार पाचों विरहिणी स्त्रियों से छीहल कवि ने जब उनके विरह दुःख का वर्णन सुना तो संभवतः वे भी दुःखी हो गये। अन्त में कवि को भी कहना पड़ा कि विरहावस्था ही दुःखावस्था है। जिसमें पल भर को सुख नहीं मिलता।

छीहल बयरी विरह की घडी न पाया सुख।
हम पंचइ तुम्हसउं कह्या, अपना अपना दु.ख ।।५१।।

कुछ दिनों पश्चात् फिर वे पांचों मिली। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के साथ-साथ उनके पति भी परदेस से वापिस आ गये थे। इसलिए वे हंसने लगीं, गाने लगीं। उस दिन वे पूरे शृंगार मे थीं। छीहल ने जब उन्हें हंसते हुए देखा तो उन्होंने फिर उन स्त्रियों से पूछा--

विहसी गावइहि रहिसमूं कीया सइ सिंगार।
तब उन पच सहेलियां, पूंछी दूजी बार ।।५४।।

मइ तुम्ह आमन दूमनी देखी थी उतवार।
अब हूं देखूं विहसती, मोसउ कहउ विचार ।।५५।।

उनका सांई आ गया था। वियोगिन बसन्त ऋतु जा चुकी थी। मिलन की वर्षा ऋतु आ गई थी। मालिन के सुख रूपी पुष्प को पति ने मधुकर बनकर खूब पी लिया था। तम्बोलिन ने चोली खोल कर अपार यौवन भरी देह को निकाला और अपने पति के साथ बहुत प्रकार से रंग किया। आंखों से आंख मिली और अपूर्व सुख का अनुभव किया।

मालिन का मुख फूल ज्यउं बहुत विगास करेइ।
प्रेम सहित गुञ्जार करि, पीय मधुकर सलेइ ।।५८।।

चोली खोल तम्बोलनी काढया गात्र अपार।
रंग कीया बहु प्रीयसुं, नयन मिलाई तार ।।५९।।

रचना काल

पञ्च सहेली गीत का रचना काल संवत् १५७५ फागुण सुदि पूर्णिमा है। उस दिन होली थी और कवि भी होली के उन्मुक्त आनन्द में ऐसी सरस रचना लिखने में सफल हुए थे। इसलिए स्वयं ने लिखा है कि उसने अपने मन के मधुर भावों से इस रचना को निबद्ध किया है।

मीठे मन के भावते, कीया सरस बखाण।
अण जाण्या मूरिख हंसइ, रीझइ चतुर सुजांण ।।६७।।

भाषा

छीहल राजस्थानी कवि हैं। उनकी कृतियों की भाषा के सम्बन्ध में डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि की कुछ पाण्डुलिपियाँ ब्रजभाषा के निकट है जबकि कुछ पर राजस्थानी प्रभाव ज्यादा है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि को उन्होने राजस्थानी प्रभावित कहा है। लेकिन अन्त में वे यही निष्कर्ष निकालते हैं कि पञ्च सहेली गीत की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है।[1] अनूप सस्कृत लाइब्रेरी मे इसकी चार प्रतियां हैं जिनमें तीन का नाम तो "पञ्च सहेली री बात" दिया हुआ है।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिलिपिकार उसे राजस्थानी भाषा की कृति मान कर चलते थे। वैसे कृति की अधिकांश शब्दावली राजस्थानी भाषा की है। न्हाईया (११) प्रवालीया (१२) बालीयां (१३) चल्यु (१७) कुमलाईया (१६) चंपाकेरी (२२) वीछुड्या (२६) आदि शब्द एवं क्रिया पद सभी राजस्थानी भाषा के हैं।

पञ्च सहेली गीत एक लोकप्रिय कृति रही है। राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारों मे इसकी प्रतियां सग्रहीत है।

१. दि० जैन शास्त्र भण्डार मन्दिर ठोलियान — गुटका सख्या ६७।
२. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर — गुटका संख्या १३८।
३. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर चौधरियों का मालपुरा (टोंक) — गुटका सख्या ११।
४. अनूप सस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन न० ७८ छद सं० ६६ पत्र १६-२२ लिपि काल सं० १७१८।
५. ,, ,, ,, नं० १४२ पृ० ७६–७७।

---

१. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०–७१।
२. वही।

६. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्शन नं० २१७—अन्त में संस्कृत श्लोक भी दिये हुए हैं।

७. " " " नं० ७७ पत्र सं० ६८–१०२ लिपिकाल संवत् १७४६।

मूल्यांकन

पञ्च सहेली गीत राजस्थानी भाषा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें शृंगार रस का बहुत ही सूक्ष्म तथा मार्मिक वर्णन हुआ है। वियोग शृंगार में विरहिणी नायिकाओं के अनुभावों का चित्रण उन्हीं के शब्दों में इतना संवेद्य और अनुभूतिपरक है कि कोई भी सहृदय विरह की इस दंशकारी वेदना से व्याकुल हुए बिना नहीं रहता।[1] कवि ने उसमें वियोग तथा संयोग दोनों का ही चित्रण कर के साहित्य में एक नयी परम्परा को जन्म दिया है। उन्हीं पांचों स्त्रियों की संयोग में मनोभावों की दशा एकदम बदल जाती है। एक तम्बोलिन की मनोदशा वर्णन में तो कवि ने सब सीमाओं को लांघ दिया है। वास्तव में विरह में और मिलन मे यौवना स्त्री की क्या दशा रहती है कवि ने इसका बहुत ही सूक्ष्म हृदय ग्राही वर्णन करके पाठकों को आश्चर्य चकित कर दिया है। भाषा एवं शैली दोनों दृष्टियों से भी पञ्च सहेली गीत एक उत्कृष्ट रचना है। राजस्थानी भाषा साहित्य मे इस लघु काव्य को एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये।

२. बावनी

छीहल कवि की यह दूसरी बड़ी रचना है जिसमें कवि ने कितने ही विषयों को छुआ है। प्रो० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' के शब्दों मे बावनी मे वर्णित नीति और उपदेश के विषय हैं तो प्राचीन पर प्रस्तुतीकरण की मौलिकता, प्रतिपादन की विशदता एवं दृष्टान्त चयन की सूक्ष्मता सर्वत्र विद्यमान है। कवि संस्कृत के सुभाषितों एवं नीतियों का ऋणी हैं। पर उनके अनुवादन अनुधावन मात्र नहीं है।[2] प्रस्तुत कृति भाषा एवं भाव दोनों के परिपाक का उत्तम उदाहरण है। यद्यपि नीति और उपदेशात्मक विषयों का वर्णन बावनी का मुख्य विषय है फिर भी कवि कभी भी काव्य से दूर नहीं हुआ। उसने अपने विषय को नये ढंग एवं नये भावों के साथ अभिव्यक्त किया है।

---

१. सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० ३०७।

२. मरुभारती—वर्ष १५ अंक २—पृ० ६।

जैन विद्वानों ने बावनी संज्ञक काव्य लिखने में प्रारम्भ से ही रुचि दिखाई है। ये बावनियां किसी एक विषय पर आधारित न होकर विविध विषयों का वर्णन करती हैं। बावनी लिखने वाले कवियों में डूंगरसी, बनारसीदास, जिनहर्ष, दयासागर, ब्र० माणक, मतिशेखर, हेमराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन कवि न तो अपने पौराणिक कथानकों में ही बधे रहे और न उन्होंने सामन्ती के चित्रण में जन सामान्य को भुलाया। जैन काव्य में विराग और कष्ट सहिष्णुता पर बहुत बल दिया गया है। यह भी सत्य है कि इस प्रकार सदाचरण के नीरस उपदेश काव्य को उचित महत्त्व नही देते किन्तु यह केवल एक पक्ष है। अपने अध्यात्म जीवन को महत्त्व देते हुए तथा पारलौकिक सुखों के लिए अति सचेष्टा दिखाते हुए भी जैन कवि उन लोगों को नहीं भुला सका जिनके बीच वह जन्म लेता है। उसके मन मे अपने आस-पास के लोगो के सुखी जीवन के लिए अपूर्व सदिच्छा भरी हुई है। वह सृष्टि की सारी सम्पत्ति जनता के द्वार पर जुटा देना चाहता है।[1]

बावनी का एक-एक छप्पय नीति के रत्न हैं जो अपनी प्रभा से उद्भासित और प्रकाशित हैं। कवि ने बड़ी सभ्यता से मर्यादा, नीति और न्याय के पक्ष का समर्थन करते हुए पाखडियों और स्वार्थियो की खबर ली हैं। जगत का स्वभाव प्रस्तुत किया है तथा उसमे मानव को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा दी है।

प्रस्तुत बावनी का हिन्दी की बावनियों मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य शुक्ल ने यद्यपि इसमे ५२ दोहे होना लिखा है पर इसमे ५३ छप्पय छन्द हैं जो ओम से प्रारम्भ होकर नगराक्षर क्रम से निबद्ध हैं। क्रम निर्वाह के लिये ओ, औ, क्ष, त्र वर्ण छोड दिये गये हैं तथा ङ, एव ञ के स्थान पर न का तथा ऋ, ॠ, लृ, लॄ, य, व, श, के स्थान पर क्रमशः रि, री, लि, ली, ज, ओ, स, का प्रयोग किया गया है। कई अन्य कवियों द्वारा रचित बावनियों में भी वर्णमाला का यह परिवर्तित रूप पद्य क्रम के लिये प्रयुक्त हुआ है।[2] बावनी के प्रारम्भिक पांच पदों में आदि अक्षरों के द्वारा ॐ नमः सिद्ध बनता है जो कवि के जैन होने का द्योतक है।

बावनी का प्रथम पद्य मगलाचरण के रूप में तथा अन्तिम पद्य में कवि ने बावनी का रचना काल एवं स्वय का परिचय दिया है। इसके शेष छन्द नीति एवं उपदेश परक हैं। कवि ने बावनी मे विषय का अथवा नीति एवं उपदेशों का कोई क्रम नहीं रखा है किन्तु जैसा भी उसे रुचिकर प्रतीत हुआ उसी का वर्णन कर दिया।

---

१. सूर पूर्व ब्रज भाषा और साहित्य—पृ० २८१।
२. मरु भारती वर्ष १५ अंक–२ पृ० ६।

विषय प्रतिपादन

प्रारम्भ में पाँच इन्द्रियों के विषयों में यह जीव किस प्रकार उलझा रहता है और अपने मन को अस्थिर कर लेता है। हाथी स्पर्शन इन्द्री के वशीभूत होकर, हरिण श्रवण इन्द्री के कारण अपनी जान गंवा देता है। यही नहीं रसना इन्द्री के कारण मछलियां जाल में फंस जाती हैं। भंवरा एवं पतंग भी इसी तरह जाल में फंसकर अपने जीवन का अन्त कर लेते हैं—

नाद श्रवण आनन्द तजइ मृग प्राण ततख्खिण।
इन्द्री परस गयन्द बास अलि मरइ विचख्खण।
रसना स्वाद विलग्गि मीन बज्झइ देखन्ता।
लोयण लुबुध पतग पडइ पावक पेखन्ता।
मृग मीन भंवर कुंजर पतग, ए सब विणासइ इक्क रसि।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्दी राखउ अप्प बसि ।।२।।

कवि ने समस्त जगत को स्वार्थमय बतलाया है। मनुष्य जगत् मे आता है और कुछ जीवन के पश्चात् वापिस चला जाता है। यह सब उसी तरह है जैसे फलो से लदे वृक्ष पर पक्षी आकर बैठ जाते हैं और फल समाप्त होने तथा पत्ते झडने पर सब उड़ जाते हैं। उसी तरह मनुष्य जगत् से स्वार्थ के लिए अथवा धन के लिए मित्रता बांधता है और वे मिल जाने के पश्चात् उसे वह भुला बैठता है।

छाया तरुवर पिख्खि आइ, वहु बसै विहंगम।
जब लगि फल सम्पन्न रहै, तब लगि इक संगम।
विहवसि परि अवध्ध, पत्त फल झरै निरन्तर।
खिण इक तथ्थ न रहइ, जांहि उडि दूर दिसंतर।
छीहल कहै दुम पंखि जिम महि मित्र तणु दव्व लगि।
पर कज्ज न कोऊ वल्ल हो, अप्प सुवारथ सयल जगि ।।२६।।

मनुष्य को थोड़े-थोड़े ही सही लेकिन कुछ अच्छे कार्य करने चाहिए। दूसरों के हित के लिए विनयपूर्वक धन दिन भर देते रहना चाहिए अर्थात् भलाई एवं दान के लिए कोई समय निश्चित नही होता। कवि कहता है कि जब तक शरीर मे श्वास है तब तक अपने ही हाथों से अपनी सम्पत्ति का उपयोग कर लेना चाहिए क्योंकि मरने के पश्चात् वह उसके लिए बेकार है। कवि ने बीसल राजा की उपमा दी है जो १९ करोड़ का धन जोड़ कर छोड़ गया और उसका जीवन पर्यन्त भोग और दान किसी में भी उपयोग नहीं किया।

थोरो थोरो मांहि, समय कछु सुकृति कीजइ।
विनय सहित करि हित, वित्त सारै दिन दीजइ।
जब लगि सांस सरीर मूढ विलसहु निज हत्यहिं।
मुवा पछै लंपटी, लच्छी लगै नहि सत्थहिं।
छीहल कहइ बीसल नृपति संचि कोडि उगणीस दव्व।
लाहौ न लियौ भोगव्वि, करि अंतकाल गौ छांडि सव्व ॥३६॥

मनुष्य जीवन भर भविष्य की कल्पना करता रहता है और मृत्यु की ओर जरा भी सचेत नहीं रहता लेकिन जब मृत्यु आती है तो उसकी सब आशाएँ धरी की धरी रह जाती हैं और वह कुछ भी नहीं कर सकता। जिस प्रकार मधुकर कमल पुष्प में बन्द होने के पश्चात् सुखद प्रातःकाल की कल्पना करता है लेकिन उसे यह पता नहीं कि उसके पूर्व ही कोई हाथी आकर उसकी जीवन लीला समाप्त कर सकता है इसलिए भविष्य की आशाओं की कल्पना छोड़कर वर्तमान में अच्छे कार्य कर लेना चाहिए—

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै, परौ पंकज के सपुटि।
मन महि मडै आस, रयणि खिण माहि जाइ घटि।
करि है जलज विकास, सूर परभाति उदय जब।
मधुकर मन चितवै, मुक्त हैव हूँ बन्धन तब।
छीहल द्विरद ताही समय, सर संपत्तउ दइव वसि।
अलि कमल पत्र पुडइणि सहित, निमिष माहि सो गयो ग्रसि ॥४३॥

इस प्रकार पूरी बावनी सुभाषितों एवं उपदेशात्मक पद्यों से भरी पडी है। उसका प्रत्येक पद्य स्मरणीय है तथा मानव को विपत्ति से बचा कर सुकृत की ओर लगाने वाला है। सभी सुभाषित सम्प्रदाय भावनाओं से दूर किन्तु मानवता तथा विश्व सेवा का पाठ पढ़ाने वाले हैं। मानव को राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान एवं माया के चक्कर से बचाने वाले हैं। यही नहीं जगत का वास्तविक स्वरूप को भी प्रस्तुत करने वाले हैं। कवि ने इन पद्यो मे अधिक से अधिक भावो को भरने का प्रयास किया है। इसलिए कवि की प्रस्तुत बावनी हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा की सुन्दरतम कृतियों में से है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से बावनी राजस्थानी भाषा की कृति है। इसमें अपभ्रंश शब्दों की जो भरमार है वे इसके राजस्थानी रूप को ही व्यक्त करने वाले हैं। डा० शिवप्रसाद सिंह ने बावनी को ब्रजभाषा के विकास की कड़ी के रूप में माना है

जो सूरदास के ब्रजभाषा का परिवर्ती रूप है लेकिन बावनी में ब्रज का ही नहीं अपभ्रंश एवं राजस्थानी का भी परिस्कृत रूप देखा जा सकता है।

> छीहल कहइ गल मज्जि करि, जो जल उल्हवि देइ घन।
> चातक नीर ते परि पियै, ना तो पियासी तजै तन ॥३४॥

रचना काल

बावनी की रचना संवत् १५८४ कार्तिक सुदी अष्टमी गुरुवार के दिन सम्पन्न हुई थी। कवि ने अपने श्री गुरु का नाम लेकर रचना प्रारम्भ की थी और सरस्वती की कृपा से उसकी यह रचना सानन्द समाप्त हुई थी।

> चउरासी अग्गला सइ जु पनरह संवच्छर।
> सुकुल पष्य अष्टमी मास कातिग गुरुवासर।
> हृदय उपनी बुद्धि नाम श्री गुरु को लीन्हो।
> सारद तणइ पसाइ कवित सपूरण कीन्हो।

कवि का परिचय

बावनी के अन्तिम पद्य में कवि ने अपना परिचय दिया है। वह नाथू का पुत्र था। अग्रवाल जैन जाति में उत्पन्न हुआ था तथा उसका वंश नाल्हिग कहलाता था।

> नाल्हिग वंससि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
> बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि कंकण छीहल्ल कवि ॥५३॥

बावनी अपने समय में लोकप्रिय कृति रही है तथा उसका संग्रह गुटकों में मिलता है जिससे पता चलता है कि पाठक इसे चाव से पढा करते थे। अब तक राजस्थान के जैन ग्रंथागारों में बावनी की निम्न पाण्डुलिपियां उपलब्ध हो चुकी हैं—

१. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर — गुटका संख्या १४० लेखन काल सं० १७१६ (इसमें २२ से ५३ तक के पद्य हैं)
२. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर ढोलियान — गुटका संख्या १२५ (इसमें ५० पद्य हैं)
३. भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर — गुटका संख्या ३५ (इसमें ५३ पद्य हैं)
४. उक्त कृतियों के अतिरिक्त, अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर तथा अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर में भी बावनियों की पाण्डुलिपियां मिलती हैं।[1]

---

१. सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य पृ० ३७७।

इस प्रकार बावनी राजस्थानी भाषा की एक उत्कृष्ट रचना है जिसकी पाण्डुलिपियां राजस्थान के और भी भण्डारों में उपलब्ध हो सकती हैं।

वैराग्य गीत मानव को जीवन में अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरणा स्वरूप है। बचपन, यौवन एवं वृद्धावस्था तीनों ही ऐसे ही निकल जाते हैं और जब मृत्यु आती है तो यह मनुष्य हाथ मलने लगता है इसलिए अच्छे कार्य तो जितना जल्दी हो कर लेना चाहिए। यही गीत का सार है जिसको कहने के लिए कवि ने प्रस्तुत गीत निबद्ध किया है।

उदर गीत में कवि कहता है कि सारा जीवन यदि उदर पूर्ति में ही व्यतीत कर दिया और अगले जन्म के लिए कुछ नहीं किया तो यह मनुष्य जीवन धारण करना ही व्यर्थ जावेगा। कवि की भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन मे ऐसा कोई सुकृत कार्य अवश्य करले जिससे उसका भावी जीवन भी सुधर जावे।

इस प्रकार छीहल कवि की कृतियां राजस्थानी काव्यों में उल्लेखनीय कृतियां हैं। सभी कृतियां जन कल्याण की भावना से लिखी हुई हैं। इनमे शिक्षा है, उपदेश है, नीति और धर्म का पुट है तथा लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों की कहानी प्रस्तुत की गयी है।

१. पंच सहेली गीत

नगर वर्णन—

देखा नगर सुहायणा, अधिक सुचंगा थान ।
नाउ चंगेरी परगट, जन सुर लोक सुजान ॥१॥

ठाइ मिंदिर सत खिने, सो नइ लिहिया लेहु ।
छीहल तन की उपमा कहत न आवइ छेहउ ॥२॥

ठाइ ठाइ सरवर पेखीया, सू सर भरे निवाण ।
ठाइ कूवा बावरी, सोहइ फटक समान ॥३॥

पवन छतीसी तिहां वसइ, अति चतुराई लोक ।
गुन विद्या रस आगला, जानइ परिमल लोग ॥४॥

तिहा ठइ नारी पेखीयइ, रंभा केउ निहारि ।
रूप कंत ते आगली, अवर नहीं संसार ॥५॥

पहरि सभाया आभरण, अर दख्यण के चीर ।
बहुत सहेली साथि मिलि, आई सरवर तीर ॥६॥

चोवा चंदन थाल भरि, परिमल पहुप अनंत ।
खंडहु बीडी पान की, खेलहु सखी बसंत ॥७॥

केइ गावइ मधुर धुनि, केइ देवहि रास ।
केइ हीडोलइ हीडती, इह विधि करइ विलास ॥८॥

तिन मांहि पंच सहेलियां, नाचइ गावहि ना हसइ ।
ना मुखि बोलइ बोल··············· ···············॥९॥

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिन्दो हार ।
मुख तंबोल न खाईया, ना कछु कीया सिणार ॥१०॥

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास ।
विलखी बइसी उनमनी, लांबे लेहि उसास ॥११॥

सूके अहर प्रवालीयां, अति कुमलाणा मुख ।
तउ मइं बूझी जाइ कह, तुम्ह कहउ कैतउ दुख ॥१२॥

दीसइ योवन बालिया, रूप दीपंती देह ।
मोसउं कहउ विचार, जाति तुम्हारी केह ॥१३॥

तउ ऊनि सब आखीया, मीठा बोल अपार ।
ना वहू मारी जाति की, छीहल्ल सुनहु विचार ॥१४॥

मालन अर तंबोलनी, त्रीजी छीपनि नारि ।
चउथी जाति कलालनी, पंचमी सुनारि ॥१५॥

जाति कही हम तम्ह सउ, अब सुनि दुख हमार ।
तुम्ह तउ सुगना आदमी, लहउ विराणी सार ॥१६॥

मालिन की विरह व्यथा--

पहिली बोली मालनी, मुझ कूं दुख अनंत ।
बालइ योवन छडि कइ, चल्यु दिसाउरि कंत ॥१७॥

निस दिन बहइ पवालज्यु, नयनहु नीर अपार ।
विरहउ माली दुक्ख का, सूभर भरया किनार ॥१८॥

कमल वदन कुमलाईया, सूकी सुख वनराइ ।
वाभू पीया रइ एक खिन, वरस बराबरि जाइ ॥१९॥

तन तरवर फल लग्गीया, दुइ नारिंग रस पूरि ।
सूकन लागा विरह फल, सींचन हारा दूरि ॥२०॥

मन बाडी गुण फूलडा, प्रीय नित लेता बास ।
अब इह थानकि रात दिन, पीडइ विरह उदास ॥२१॥

चपा केरी पंखडी, गूंथ्या नव सर हार ।
जइ इहु पहिरउ पीव विन, लागइ अंग अगार ॥२२॥

मालनि अपना दुःख का, विवरा कह्या विचार ।
अब तूं वेदन आपनी, आखि तंबोलन नार ॥२३॥

तम्बोलिन की विरह व्यथा—

दूजी कहइ तंबोलनी, सुनि चतुराई बात ।
विरहइ मार्‌या पीव विन, बोली भीतरि बात ॥२४॥

हाथ मरोरउ सिर धन्यु, किस सउं कहु पोकार ।
अउती राता बालहा, करइ न हम किस भार ॥२५॥

पान झड़े सब कंख के, बेल गई दलि सुकि ।
दूझरि रति बसंत की, गया पीयरा मुकि ॥२६॥

हीयरा भीतरि पइसि करि, बिरह लगाई आगि ।
प्रीय पानी बिनि नां बूझवइ, बलीसि सबली लागी ॥२७॥

तन बाली बिरहउ दहइ, परीया दुक्ख असेसि ।
ए दिन दुभरि कउं भरइ, श्राया प्रीय परदेसि ॥२८॥

अब श्री बालम बीछुड्या, नाठा सरिखरि सुख ।
छीहल भो तन बिरह का, नित्त नवेला दुख ॥२९॥

कहउ तंबोलनि श्राप दुक्ख, श्रब कहि छीपन एह ।
पीव चलंतइ तुझसउं, बिरहइ कीया छेह ॥३०॥

छीपन का बिरह वर्णन—

त्रीजी छीपनि आखीया, भरि दुइ लोचन नीर ।
दूजा कोइ न जानही, मेरइ जीय की पीर ॥३१॥

तन कपडा दुक्ख कतरनी, दरजी बिरहा एह ।
पूरा ब्योत न ब्योतइ, दिन दिन काटइ देह ॥३१॥

दुक्ख का तागा वाटीया, सार सुई कर लेइ ।
चीनजि बंधइ श्रवि काम करि, नान्हा बखीया देइ ॥३३॥

बिरहइ गोरी श्रतिदही, देह मजीठ सुरंग ।
रस लीया श्रवटाइ कइ, बाकस कीया श्रंग ॥३४॥

माउ मरोरी निचोरि कइ, खार दिया दुख श्रंति ।
इहु हमारे जीव कहुं, मइ न करी इहु भ्रंति ॥३५॥

सुख नाठा दुख संचरया, देही करि दहि छार ।
बिरहइ कीया कंत बनि, इम श्रम्ह सु उपगार ॥३६॥

कलालिन का बिरह—

छीपनि कहुया बिचार करि, श्रपना सुख दुख रोइ ।
श्रबहि कलालनि श्राखि तुं, बिरहइ थाई सोइ ॥३७॥

पजली दुख सरीर का, लागी कहन कलालि ।
हीयरइ प्रीयका प्रेम की, नित्त श्रटूकइ भालि ॥३८॥

मोतन भाठी ज्युं तपइ, नयन बुवइ मद धारि।
विनही अवगुन मुझ सुं, कस कर रह्या भरतार ॥३९॥

देखिइ केली तइ दई, विरह लगाई धाइ।
बालंभ उलटा हुइ रह्या, परउप छारी खाइ ॥४०॥

इस विहरइ के कारणइ, धन बहु दारू कीय।
चित्त का चेतन ट्राहस्या, गया पीयरा लेय जीय ॥४१॥

माता योवन फाग रिति, परम पीयारा दूरि।
रली न पूरी जीयकी, मरउ विसूरि विसूरि ॥४२॥

हीयरा भीतरि झूर रहुं, करूं घणेरा सोस।
बइरी हुआ वालहा, विहरइ किसका दोस ॥४३॥

मोसउं व्युरा विरह का, कह्या कलालन नारि।
इहु कुछु दुख सरीर महि, सो तु आखि सुनारि ॥४४॥

सुनारिन की व्यथा—

कहइ सुनारी पंचमी, अंग उपना दाह।
हूं तउ बूडी विरह मइ, पाउं नाही थाह ॥४५॥

हीया अंगीठी मूसि जिय, मदन सुनार प्रसंग।
कोयला कीया देह का, मिल्या सवेइ सुहाग ॥४६॥

टंका कलिया दुख का, रेती न देइ धीर।
मासा मासा न मूकीया, सोष्या सब सरीर ॥४७॥

विहरइ रूप बुराइया, सूना हुआ मुझ जीव।
किस हइ पुकारूं जाइ कइ, अब घरि नाही पीव ॥४८॥

तन तोले कटउ धरी, देखी किस किस जाइ।
विरहा कुंड सुनार ज्युउं, घडी फिराय पिराइ ॥४९॥

खोटी वेदन विरह की, मेरो हीयरो माहि।
निसि दिन काया कलमलइ, नां सुख धूपनि छांह ॥५०॥

छीहल वयरी विरह की, घडी न पाया सुख।
हम पंचइ तुम्ह सउं कह्या, अपना अपना दुख ॥५१॥

कहि करि पंचउ चलीयां, अपने दुख का छेह ।
बाहुरि बइ दूजी मिली, जबहु थकूक्या मेह ॥५२॥

मुइ नीली घन घूंघरि, गुनिहि चमकी बीज ।
बहुत सखी के झूड मई, खेलन आइ तीज ॥५३॥

विहसी गावइ हि रहिससुं, कीया सहु संगार ।
तब उन पंच सहेलीयां, पूछी दूजी बार ॥५४॥

छीहल का पांचों स्त्रियों से पुर्नमिलन—

मइं तुम्ह आमन दूमनी, देखी थी उतवार ।
अब हुं देखुं विहसती, मोसउं कहुउ विचार ॥५५॥

छीहल हम तउ तुम्ह सउं, कहती हइ सतभाइ ।
सांई आया रहससुं, ए दिन सुख माहि जाइ ॥५६॥

गया वसंत वियोग मइ, अर धुप काला मास ।
पावस रिति पीय आवीया, पूगी मन की आस ॥५७॥

मालनि का मुख फूल ज्यउं, बहुत विगास करेइ ।
प्रेम सहित गुंजार करि, पीय मधुकर सलेइ ॥५८॥

चोली खोल तंबोलनी, काढ्या गात्र अपार ।
रंग कीया बहु प्रीयसुं, नयन मिलाई तार ॥५९॥

छीपनि करइ वधाईयां, जउ सब आए दिठ्ठ ।
अति रंगिराती प्रीयसु, ज्यउं कापडइ मजीठ ॥६०॥

योवन वालइ लटकती, रसि कसि भरी कलालि ।
हसि हसि लागइ प्रीय गलि, करि करि बहुती आलि ॥६१॥

मालनि तिलक दीपाईया, कीया सिंगार अनूप ।
आया पीय सुनारि का, चढ्या चवगणा रूप ॥६२॥

पी आया सुख संपज्या, पूगी सबइ जगीस ।
तब बहु पंचइ कांमिनी, लागी दयन असीस ॥६३॥

हुंउ वारी तेरे बोलकुं, जहि बरणवी सुट्ठाइ ।
छीहल हम जग मांहि रही, रह्या हमारा नाव ॥६४॥

धमिल मंदिर धन्न बिन, धनस पावस एहु ।
धन्न वल्लभ धरि आईया, धनस बुट्ठा मेहु ॥६५॥

निस दिन जाइ आनंद मइ, बिलसइ बहु विध भोग ।
छीहल्ल पंचइ कामिनी, भाई पीय संजोग ॥६६॥

मीठे मन के भावते, कीया सरस बखाण ।
अण जाण्या मूरिख हसइ, रीझइ चतुर सुजांण ॥६७॥

संवत् पनर पचहुत्तरइ, पूंनिम फागुण मास ।
पच सहेली वरणवी, कवि छीहल्ल परगास ॥६८॥

॥ इति पंच सहेली गीत सम्पूर्ण ॥

लिख्यतं परोपकाराय ॥ श्री रस्तु ॥

□ □ □

गुटका संख्या ६६ । पत्र संख्या ११–१२ । शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर ।

२. बावनी

ओंकार आकार, रहित अविगति अपरम्पर ।
अलख अजोनी संभ, सृष्टिकरता विश्वम्भर ।
घट घट अन्तर बसइ, तासु चीन्हइ नहि कोई ।
जल थलि सुरभि पयालि, जिहां देखो तिहं सोई ।
जोगिन्द सिद्ध मुनिवर जिके, प्रबल महातप सझयौ ।
छीहल्ल कहइ इस पुरुष कौ, किण ही अन्त न लह्यौ ।।१।।

नाद श्रवण ध्यावन्त, तजइ मृग प्राण ततक्खिण ।
इन्द्री परस गयन्द, बास अलि मरइ विषक्खण ।
रसना स्वाद विलग्गि, मीन बज्झइ देषन्ता ।
लोयण लुबुध पतंग, पडइ पावक पेषन्ता ।
मृग मीन भंवर कुंजर पतंग, ए सब विणसइ इक्क रसि ।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्द्री राखउ अप्प बसि ।।२।।

मृग वन मज्झि चरंति, डरिउ पारधी पिक्खि तिहि ।
जब पाछिउ पुनि चल्यो, वधिक रोपियउ फंद तिहि ।
दिसि दाहिणी सु स्वान, सिंह ज्युं सनमुष धावै ।
वाम अगिनि परजलिय, तासु भय आण न पावै ।
छीहल्ल भमण चहुं दिसि नहीं, चित चिंता चितउ हरण ।
हा हा देव संकट परयौ, तुझ बिन अवर न को सरण ।।३।।

सबल पवन उतपन्न, अगिनि उडि फंद दहे सब ।
ततषिण घन बरसंत, तेज दावानल गौ तब ।
दिसि दाहिणी जु स्वान, पेषि जंबुक कौ धायउ ।
जब जान्यौ मृग जाल, चित्त पारधी रिसायउ ।
ताणंत[1] धनुष[2] गुण तुट्टियौ, दिसि च्यारउ मुगती भई ।
छीहल न को मारवि सकै, जिहि रक्खण हारा दई ।।४।।

---

१. [illegible]
२. बाण

धन्य ति नर सलहिजै, जे हि परकज्जु संवारण ।
धीर सहै तन आपु, सामि संकट्ठ उधारण ।
कंधो धर कुल मज्झि, सभा सिंगार सुलक्खण ।
विनयवंत बड-चित्त, अवनि उपगार विचष्षण ।
आचार[1] सहित अति हित्त सो, धरम नेम पालै घणौ ।
पर तरुणि पेष्षि छीहल कहै, सील न षंडइ आपणौ ।।५।।

अवनि अमर नहिं कोई, सिद्ध साधक अरु मुनिवर ।
गण गंधर्व मनुष्य, जिष्य किन्नर असुरासुर ।
पन्नग पावक उदधि, भार तरुवर अष्टादस ।
ध्रुव[2] नषित्र ससि सुर, अन्त सब षपै काल बस ।
प्रस्ताव पिष्षि रे नर चतुर, तां लगि कीजइ ऊंच कर ।
तिहुं भुवन मज्झि छीहल कहइ, सदा एक कीरति अमर ।।६।।

आवति जाचक[3] पेखि, द्वार सम देहु मूढ नर ।
मिष्ट वयण बुल्लियइ, विनय कीजइ बहु आदर ।
दिन दस अवसर पेखि, वित्त विलसियै सुजस लगि ।
षिण रीती षिण भरी, रहिंटी घटी सारिस लगि ।
चिरकाल दसा निहचल नही, जिमि ऊगई तिमि आथमण ।
पलटियै दसा छीहल कहइ, बहुरी बात पुच्छै[4] कवण ।।७।।

इन्दी पंचिय अथिय, सकति जब लगि घट निर्मल ।
जरा जंजीरी दूरि, षीण न हुवै आयुबल ।
तब लगि भल पण, दान-पुण्य करि लेहु विचष्षण ।
जब जम पहुंचइ आइ, सबै भूलिहइ ततष्षिण ।
छीहल कहइ पावक प्रबल, जिमि घर पुर पट्टण दहइ ।
तिणि काल कूप जो खुद्दियइ, सो उद्यम किमि निरवहइ ।।८।।

ईस ललाटहं मज्झि, गेह कीयौ सु निरन्तर ।
चहु दिसि सुरसरि सहित, वास तसु कीजइ अन्तर ।

---

१. आधार
२. ध्रू नव ग्रह
३. संपति बार बार
४. बूझइ

पावक प्रबल समीपि, रहइ रखवाल रयणि दिन ।
प्रतिहार विसहर बलिष्ट, सोवइ नहि इकु छिन ।
अति अलस छीहल कहै, हर मस्तक हिमकर रहइ ।
पूर्व लेख चूकै नहीं, तऊ राहु ससि कौ ग्रहइ ।।९।।

उदरि मज्झि दस मासु, पिंड पाइयै[1] बहुत दुख ।
उर्ध होइ दुइ चरण, रयणि दिन रहइ अधोमुख ।
गरभ अवस्था अधिक जाणि. चिंता चितें चित्त ।
जो छूटो इहि बार, बहुरि करहौं निज सुकृत ।
बोलइ जु बोल संकट पडइ, बहुरि जन्म जब महि भयौ ।
लागी जु वाउ छीहल कहइ, सर्व मूढ बीसरि गयौ ।।१०।।

ऊसरि फागुण मास, मेह बरसइ घोरंकरि ।
विधवा पतिव्रत तणौ, रूप जोबण आनन परि ।
कवियण गुण विस्तार, नृपति अविवेकी आगे ।
सुपनन्तर की लच्छि, हाथ आवइ नहिं जागे ।
करवाल कृपण कायर करहं, सुन्न[2] गेह दीपक ज्युं ।
कवि छीहल अकारथ एह सव, विनय जु कीज्यै नीच स्युं ।।११।।

रितु ग्रीषम रवि किरण, प्रबल आंचइ निरन्तर ।
पावक सलिल समूह, मयर झिल्लउ धारा धर ।
सीतकाल सीतल तुषार, दूरन्तर टाल्यउ ।
पत्त सही दुक्खय, अधिक मित्तप्पण पाल्यउ ।
रे रे पलास छीहल कहै, धिक धिक जीवन तुझ तणौ ।
फुल्लयौ पत्त अब मूढ तजि, ए अजुत्त कीधौ घणौ ।।१२।।

रीति होइ सो भरै, भरी खिण इक वै ढाले ।
राई मेर समाणि, मेर जड सहित उथाले ।
उदधि सोधि थल करै, थलहिं जल पूरि रहै अति ।
नृपति मंगावइ भीख, रंक कूं थपै छत्रपति ।
सब विधि समर्थ भजन घडन, कवि छीहल इमि उच्चरै ।
इक निमिष मांहि करता, पुरुष करण चहै सोई करै ।।१३।।

---

१. देखियै
२. सुनि गेह दीपक ज्युं

सिवा तणइ घरमाणि, राम लक्ष्वण बनवासी ।
सीय निसाचर हरी, भई द्रोपदि पुनि दासी ।
कुंती सुन वैराट गेह, सेवक होइ रहिया ।
नीर भर्यौ हरिचंद, नीच घर बहु दुख सहिया ।
आपदा पडी परिग्रह तजि, भ्रमे[1] इकेलउ नृपति नल ।
छीहल कहइ सुर नर असुर, कर्म रेष व्यापइ सकल ।।१४।।

लीन्ह कुदाली हत्थ प्रथम, षोदियउ रोस करि ।
करि रासभ आरूढ, घालि आणियउ गूण भरि ।
देकरि लत्त प्रहार, मूढ गहि चक्क चढायो ।
पुनरपि हत्थहि कूटि, धूप धरि अधिक सुकायो ।
दीन्ही जु अगिनि छीहल कहइ, कुंभ कहइ हउं सहिउं सब ।
पर तरुणि आइ टकराहणी, ए दुख सालइ मोहि अब ।।१५।।

ए जु पयोहर जुगल, अबल उरि मज्झि उपन्ना ।
अति उन्नत अति कठिन, कनक घट जेम रवन्ना ।
कहि छीहल षिण इक्क, दृष्टि देषतां चतुर नर ।
धरणि पडइ मुरझाइ, पीर उपजत चित अन्तर ।
विधना विचित्र बिधि चित्त करि, ता लगि कीन्हउ कृष्णमुख ।
होय श्याम वदन तिह नर तणो, जो पर हृदय देइ दुख ।।१६।।

ए ए तूं द्रुमराइ, न्याइ मरुवत्तण तेरो ।
प्रथम विहंगम लच्छ, आइ तहं लीयो बसेरो ।
फल भुंजै रस पिये, अन्नर संतोषइ काया ।
दुष्य सहै तन अप्प, करइ अवरन कूं छाया ।
उपकार लगी छीहल कहइ, धनि धनि तू तरुवर सुयण ।
सचइ जिमि संपइ उदधि पर, कज्जि न आवै ते कृपण ।।१७।।

अमृत जिमि सुरसाल, चवति धुनि वदन सुहाई ।
पंषिन मंहि परसिद्ध, लहै सो अधिक बडाई ।
अब वृक्ष मंहि बसइ, ग्रसइ निर्मल फल सोई ।
ये गुण कोकिल अंग, पेषि बंदहि नहिं कोई ।

---

१. भम्यो

पापिष्ठ नीच पंजन सुती, करम सवा कमि मल भुगति ।
छीहल्ल ताहि पूजइ जगत, करम तणी विपरीत गति ॥१८॥

अहनिस मज्जै मच्छ, कच्छ जल मज्झि रहै नित ।
मौन सहित बक ध्यान, रहै लवलीन इक्क चित ।
ऊदर गुफा निवास, भसम गादहो चढावइ ।
पवन अहारी सर्प, अंग गाडरी मुडावइ ।
इनि माहि कहउ किण पद लह्यौ, कहा जोग साँचै जुगति ।
छीहल कहै निष्फल सबै, भाव बिना न हुवै मुगति ॥१६॥

कबहूं सिर धरि छत्र, चढथि सुष्पासन धावइ ।
कबहूं इकेलो भ्रमै, पाइ पाणही न पावइ ।
कबहिं अठारह भष्य, करइ भोजन मन बंछित ।
कबहिं न चलु सपजइ, षुधा पीडित कलपै चित्त ।
लभै न कबहूं तृण सथ्थरो, कबहिं रमइ तिय भाव रसि ।
बहु भाइ छंद छीहल कहइ, नर चित नच्चइ देव बसी ॥२०॥

खत्तिय रणि भज्जनो, बिप्प आचार विहीणो ।
तपीयै जीति कइ अंगि, रहै चित लालच क्षीणो ।
तीय जु अति निर्लज्ज, लज्ज तजि घरि घरि डोलइ ।
सभा मांहि मुषि देखि, साषि जउ कूडी बोलइ ।
सेवक स्वामी द्रोह करि, संग रहइ न इक्क षिण ।
छीहल कहइ सो परिहरि, नृपति होइ विवेक बिण ॥२१॥

गरब न कर गुणहीन, अरे कंचन के गिरवर ।
तो समीपि पाषाण, अच्छि तरुवर ते तरुवर ।
किये न अप्प समांन, वृथा गुरुवत्तण तेरउ ।
मलयाचल सलहिजै, सुजस तस संगति केरउ ।
कटु तिक्त कुटिल परिमल रहित, तरु अनंत जे बन भया ।
श्री चंद संगि छीहल कहइ, ते समस्त चंदन भया ॥२२॥

घरी घरी नृप द्वार[1], एहु घडियालउ बज्जै ।
कहै पुकारि पुकारि, आउ षिणही षिण छीज्जै ।

---

१. वेहि

संपति सांस सरीर, सदा नर नाहीं निसचल ।
पुरइणि पत्र पंतत बूंद जल लव जिमि चंचल ।
इमि जानि जगत जातौ, सकल चित चेतौ रे मूढ नर ।
ऊबरै जु तो छीहल कहइ, दीजिइ दाहिण उम्भकर ।।२३।।

ग्यान बंत सुकुलीण, पुरुष जो हो धनहीनां ।
विषम अवस्था पडइ, वयण नहीं भाषै दीनां ।
नीच करम नहि करइ, रोर जो अधिक सतावइ ।
वरि मरिवौ अग वैं, निमिष सो नाक न नावइ ।
छीहल कहै मृगपति सदा, मृग आमिष्ष भष्षन करै ।
जो बहुत दिवस लंघण परै, तऊ न केहरि तृण चरै ।।२४।।

चैत मास बनराइ, फलहि फुल्लहि तरुवर सहि ।
तो[1] क्यों दोस बसन्त, पत्त होवइ करीर नहु ।
दिवस उलूक ज्यु अंध, ततौ रवि को नहि अवगुण ।
चातक नीर न लहइ, नत्थि दूषण बरसत घण ।
दुष सुष दईव जो निर्मयौ, लिषि ललाटा सोइ लहइ ।
विषमाद न करि रे मूढ नर, कर्म दोष छीहल कहइ ।।२५।।

छाया तरुवर पिष्षि, आइ बहु बसै विहंगम ।
जब लगि फल सम्पन्न, रहैं तब लगि इक संगम ।
विहवसि परि अवथ्थ, पत्त फल झरै निरन्तर ।
षिण इक तथ्थ न रहइ, जाहि उडि दूर दिसंतर ।
छीहल कहै द्रुम पषि जिम, महि मित्त तणु दब्ब लगि ।
पर कज्ज न कोऊ वल्ल हो, अप्प सुवारथ सयल जगि ।।२६।।

जलज बीज जल मज्झि, तरुणि[2] रूप्पसि किहि कारण ।
मो मन इच्छा एह, अमरवल्ली विस्तारण ।
सुंदरि इहि संसार, किया कोइ किरत न जाणइ ।
जे गुण लषउ करोरि, सुतौ अवगुण करि मानइ ।
अबला अयानि इक सिष्ष सुनि, जौ फुल्लै उल्लास भरी ।
छीहल कहै एइ कमल, तब करि हैं तुअ बदन सरि ।।२७।।

---

१. ता किम
२. वरणतरपिसि

खीण लंक पदमिणी, सेज महीं रमी सुरति रस ।
परियण असिवर धार, भास कीन्हैं न अप्प बस ।
सुज्जस कज्ज संसार, दव्व दीनौं न सुपत्तह ।
बोरे अपणइ चहुत, चाव पिष्वियौ न चित्तह ।
कर्यौ न सुकृत के करम मन, कलि अवतरि छीहल्ल भनि ।
उद्यान मज्झि जिमि मालती, तिमि नर जनम अकियथि विनि ।।२८।।

निरमल चित्त पवित्त, सदा अच्छै उत्तम मति ।
जो उह बसइ कुठांइ, तासु नहि भिदै कुसंगति ।
तिह समीपि सठ बहुत, मिलिब जौ करइ कुलच्छण ।
सुभ सुभाव आपणौ, तऊ मुक्कइ न विचच्छण ।
श्रीखंड सग जिम रयणि दिन, अहि असंषि बेठ्यौ रहै ।
तद्दपि सुबास सीतल मलय, विष न होय छीहल कहै ।।२९।।

टलै न पुव्व निबद्ध, मित्त मत दीनौ भाषे ।
जब आयुर्बल घटै, षिनक तब कोइ न राषै ।
विनय न करि अनकाज, मूढ जन जन के आगै ।
गुरूवत्तन मम हारि, लोभ लिषमी कै लागै ।
आवै अवसर अनपार थी, जेम मीचु तिम आनि धन ।
छीहल्ल कहै द्रिढ संग्रही, मान न मुक्कौ निज रतन ।।३०।।

ठाकुर मित्त जु जाणि, मूढ हरषइ जे चित्तह ।
निज तिय तणउ विसास, करइ जिय महि जे मित्तह ।
सरप सुनार रू पारस रस, जे प्रीति लगावहि ।
वेस्या अपणी जाणि, छयल जे छन्द उछावहि ।
बिरचंत वार इन कहु नहीं, मूरिख नर जे रूचिया ।
छीहल्ल कहइ संसार मंहि, ते नर अति विगूचिया ।।३१।।

डरपइ दादुर सद्द, बांह घालै केहरि गलि ।
बूडइ कूंडइ नीर, तिरै नद जाइ अथघि जल ।
मरइ फूल कै भार, सीस धरि पर्वत टालइ ।
कंपई ऊंदरि देखि, पकरि धरि कुंजर रालइ ।
सींदरी देखि संकै सदा, विषहर को बल वट गहइ ।
छीहल सुकवि जंपइ वयण, तिरिय चरित्र को नवि लहइ ।।३२।।

ढोलि कुंभ जे भमी, सोइ पूरंति सुरा अलि ।
कसतूरी परिहरइ, नीच संग्रहइ कथू षलि ।
कवण पीतलि तणी, जहाँ कोइ भेद न आणै ।
तरुवर अंब उपारि, अरंड रोपे तिहि थाणै ।
गुण छांडि निगुण जड मानियै, जस तजि अपजस संचियै ।
सो थान सुकवि छीहल कहै, दूरन्तर ही बंचियै ।।३३।।

णिसि वासर जिय आस, बसै उन बूंदन केरी ।
चचु न बोरइ अवर, ठांउ नदि तिथ्य घनेरी ।
आदर बिण घर सलिल, पिष्षि परिहरइ ततक्खण ।
सरवर निर्झर कूअ, सीस नावइ न विचक्खण ।
छीहल्ल कहइ गल गज्जि करि, जो जल उल्हरि देइ घन ।
चातक्क नीर ते परि पियै, न तो पियासौ तजै तन ।।३४।।

तरु कदली कुहकत, कीर ऊंचौ द्रुम दिट्ठौ ।
कोमल फल तजि मूढ, जाइ नालेर बइट्ठौ ।
छुधा प्रबल तनि भइ, ग्रसन कंह ठुंकज दिन्नी ।
आसा भइ निरास, चंचु विधना हर लिन्नी ।
मति हीण पषि छीहल कहइ, सिर धुनि रोवइ भरि नयण ।
सुक जेम सु नर पछिताइ हैं, जे होईहि संतोष बिण ।।३५।।

थौरो थौरो मांहि, समय कछु सुकृति कीजइ ।
विनय सहित करि हित्त, वित्त सारै दिन दीजइ ।
जब लगि सांस सरीर, मूढ विलसहु निज हत्थहि ।
मुवा पछै लंपटी, लच्छि लग्गै नहिं सत्थहि ।
छीहल कहइ बीसल नृपति, संचि कोडि उगणीस दव्वु ।
लाहो न लियौ भोगब्बि करि, अंतकाल गो छांडि सव्वु ।।३६।।

दरबु गाडि जिन धरहि, धरो किछु काम न आवइ ।
विलसि न लाहो लेइ, सु तो पाछै पछतावइ ।
नर नरिंद नर मुवनि, संचि संपइ जे मूवा ।
तैं वसुधा मैं बहुरि, जनमि सूकर कै हूवा ।
धनकाज अधोमुष दसन सिउं, धरणि विदारहि रयणि दिन ।
छीहल्ल कहइ सोधत फिरै, कहूं न पावहि पुण्य बिण ।।३७।।

ग्रन ज्यु ललाटहिं लिख्यौ, तुच्छ बहुती विधि अच्छर ।
सो न मिटै सुनि मूढ अंग धीजइ रयणायर ।
रचि करि कोडि उपाय, सकल संसारहिं धावइ ।
पौरुष आणि बिनाणि किवै कछु अधिक न पावइ ।
छीहल्ल कहै जहं जहं फिरइ कर्म बंध तहं तहं लहै ।
पिथ्वी यह कूप समुद्र महं घट प्रमाणि जल संग्रहै ।।३८।।

नीच सरिस नहीं प्रीति, वैर कीजइ न अवस करि ।
मध्य भाइ भाखियै, संग छांडिय दूरंतरि ।
हित अथवा अनहित, चित चितवं बुरि मति ।
निसचय सुख की हानि, दुख्ख उपजै बहू गति ।
छीहल कहै पिख्खहु प्रगट, कर अंगारहिं कोउ धरै ।
दाभ्रै निबद्ध तातौ लियै, सीरौ कारौ कर करै ।।३९।।

पत्त सुतौ अति तुच्छ काज नहिं आवै कत्थहु ।
फल वाकस रसहीण, छांह निदीधे कियथ्यहु ।
साषा कंटक कोटि, लेइ पंषी न बसेरउ ।
छीहल गुणियन कहइ, कौन गुण वरणौ तेरउ ।
र रे बबुलनि लच्छण निलज, पापी परहु न उपगरै ।
जो देहि फूल फल अवर तरु, तिनहु की रण्या करै ।।४०।।

फिर चउरासी लख्ख, जोणि लद्धौ मानुष जम ।
सो निसफल न गंवाइ, मूढ कीजइ सुकृत क्रम ।
कनक कचोली मज्झि मूढ भरि छारिन नाखिसि ।
कलपवृक्ष उख्खेलि, मूढ एण्डक रख्खिसि ।
वायस्सि उडावण कारणौ, चिंतामणि क्यों रालियै ।
छीहल कहै पीयूष सौं, नाऊ पांव पषालियै ।।४१।।

बसुधा विश्वामित्र, सरिस जे तपिय गरिट्ठा ।
संपति ते भोगवै, रहै बनषंडहि बैठा ।
लोभ मोह परिहरै, किया इन्द्री पंचे बस ।
तरुणि वदन निरषंत, तेइ पुनि परइ काम रस ।
आहार करहिं षटरस सहित, पंचामृत जुगति सिम ।
छीहल्ल कहै तिहि पुरुष की, इन्द्री निग्रह होइ किम ।।४२।।

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै, परौ पंकज के संपुटि ।
मन मंहि मंडै श्रास, रयणि खिण मांहि जाइ घटि ।
करि हैं जलज विकास, सूर परभाति उदय जब ।
मधुकर मन चितवै, मुक्त ह्वै हैं बन्धन तब ।
छीहल द्विरद ताही समय, सर संपत्तउ दइव बसि ।
अलि कमल पत्र पुडइणि सहित, निमिष मांहि सो गयौ ग्रसि ।।४३।।

मग्गि चलहु कुलवहि, जेणि विकसै मुख[1] सज्जन ।
होइ न जस की हाणि, पिष्षि करि हंसइ न दुज्जन ।
जप तप संजम नेम, धर्म आचार न मुक्कइ ।
परमष्वर निज एह, क्रिया आपनी न चुक्कइ ।
पर तरुणि पाप अपवाद परि दूरन्तर ही परिहरउ ।
मन वचन काय छीहल कहैं, पर उपकारहिं चित धरउ ।।४४।।

जब लगि तरुवर राइ, फुल्लि करि फलिय विवह परि ।
तब लगि कंटक कोटि, रहै चहुं दिसा बेढि करि ।
पंषी आसा लुद्ध, भिष्य तक्कवि जो आवइ ।
फल पुनि हथ्थ न चढै, छाह विश्राम न पावइ ।
छीहल्ल कहै हो अंब सुणि, यह अवगुण संपति थियै ।
तो सदा काल निरफल फलौ, जिहि मुख छाह बिलवियै ।।४५।।

रे रे दीपक नीच, लष्प अवगुण तुअ अंगह ।
पत्तहि करइ कुपत्त, प्रकृति सुभाव मलिन रगह ।
बत्तिय गुण निरदहण, तैल सनेह घटावन ।
जिहि थानक तूं होइ, तिहां कालिमा लगावन ।
छीहल्ल कहै वासर समय, मान न लब्भै इक्क चुष ।
जौ सहस किरण रवि अथ्थवइ, तौ जग जोवै तुज्भ मुष ।।४६।।

लच्छण ससि कह दीन्ह, कीन्ह अति षार उदधि जल ।
सफल एरण्ड धतूर नागवल्ली सो नीफल ।
परिमल विणु सोवन्न, बास कस्तूरी बिविध परि ।
गुणियन संपत्ति हीण, बहुत लच्छीय कृपण घरि ।

---

1. मन

तिय तरुण वयस[1] विधवा पंगाउ, सज्जन सरिस वियोग दुष ।
इतनै ठाम छीहल्ल कहइ, कियां विवेक न विधि पुरुष ॥४७॥

थोड़ौ सज्जन प्रीति, अवर पुनि छाया बद्दल ।
दासी सरिष सनेहु, अवर बरषइ जु ओस जल ।
सरवरि छीलरि पानि, अग्गिनि तृण केरउ तप्पन ।
विडहु सरिस भड वाउ, पिष्षि[2] गब्बहु जिनि अप्पन ।
का पुरुष बोल वेस्याविसन, एता अंत न निरवहै ।
विस्वास करइ ते हीण मति, सांचि वयण छीहल कहै ॥४८॥

ससि उगवनि जो कंवल मज्झि मकरंद पियो जिहि ।
विकसित चित्त उल्हास, वास केतकी लई तिहि ।
कुंभस्थल गय मय प्रवाहु, ग्रस्यौ कदली वन ।
सरस सुगन्ध जु पुहुप, विहसि[3] पुज्जइय रली मन ।
छीहल्ल विविह वणराइ, जिहि रितु मानी अप्पन समै ।
सो भ्रमर अबहि विधि पुरुष बसि, अक्क करीरहि दिन गमै ॥४६॥

षल दुज्जन मुष विवर, मज्झि निवसहि जे कुवचन ।
तेई सरप समान, होइ लागहिं घटि सज्जन ।
सोषइ सकल सरीर, लहरि आवइ जोवंतहं ।
मूली गद गारुडी, गिनै नहिं तंत न मंतहं ।
उपचार इक्क छीहल कहै, सुणिय विचष्षण उत्तमा ।
विष दोष निवारण कारणै, निज औषध साधउ षिमा ॥५०॥

समय जु सीत वितीत, वृथा वस्तर बहु पाए ।
षीण षुधा घटि गई, वृथा पंचामृत षाए ।
वृथा सुरति संभोग, रयणि के अंत जु कीजइ ।
वृथा सलिल सीतल सु तासु, बिण तृषा जु पीजइ ।
चातक कपोत जलचर मुए, वृथा मेघ बहु जल दए ।
सो दान वृथा छीहल कहै, जो दीजइ अवसर गए ॥५१॥

---

१. वेस
२. जन के आपन
३. बिलसि

हुइ धनवंत आलसी, ताहि उद्यमी पयम्पइ ।
क्रोधवंत अति चपल, तऊ थिरता जग जम्पइ ।
पत्त कुपत्त न लखइ, कहइ तसु इच्छाचारी ।
होइ बोलण असमथ्थ, ताहि गुरु वत्तन भारी ।
श्रीवन्त लच्छ अवगुण सहित, ताहि लोग करि गुण ठंवइ ।
छीहल्ल कहै संसार महि, सपति को सहु को नंवइ ।।५२।।

चउरासी अग्गला, सइ जु पनरह संवच्छर ।
सुकुल पक्ख अष्टमी, मास कातिग गुरुवासर ।
हृदय उपन्नी बुद्धि, नाम श्री गुरु को लीन्हो ।
सारद तणइ पसाइ, कवित संपूरण कीन्हो ।
नाल्हिग बस सिनाथू सुतन, अगरवाल कुल प्रगट रवि ।
बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि कंकण छीहल्ल कवि ।।५३।।

इति छीहल कृत बावनी संपूर्ण समाप्त । संवत १७१६ लिखित पाडे बीरू लिख्यापितं व्यास हरिराम महला मध्ये । राज श्री स्योवसिंघ जी राज्ये सवत १७१६ का वर्षे मिती वैसाख सुदी ५ शनिसरवार ।। शुभ भवतु ।।[1]

□ □ □

१. शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पांड्या जयपुर गुटका संख्या १४० ।

३. पंथी गीत

इक पंथी पंथ चलंतौ, बन सिंहनि माहिं पहुंतौ।
भूलौ ऊबट वह दिसि धावै, वह मारग कहियन पावै।
पावै न मारग विषम बन मैं, फिरै भ्रमि भटकंत हो।
देखियो तहा सांमहौं आवत, गरुव गज मयमंत हो।
सो रौद्र रूप प्रचंड सुंडा, दंड फेरै रिस भर्यो।
भयभीत होइ कंपिया लागो, पथिक चित्त अतरि डर्यो ।।१।।

ता देखि सु पंथी भागौ, वाकी पूठिहिं कुंजर लागौ।
जीव कै डरि आतुर धायौ, आगै कूप हुतौ त्रिण छायौ।
त्रिण छयौ कूप जुहु तौ आगै, बिचि वेलि छवि रह्यौ।
तिहिं मांहि पथिक पड़्यौ अजानत, भेद भौंदू ना लह्यौ।
वंहि गही अवलंबि वाकारणि, और कछु न पाइयौ।
कूचडो एक सरकनो केरो, पड़त हाथें आइयौ ।।२।।

तब सरकन दिढ करि गहियौ, झूलत दारण दुख सहियौ।
सिर ऊपरि गदो गयंदा, दिसि च्यार्यौ चारि फुणिंदो।
चहुं दिसि हि चारि फुणिंद न्यौली, बंधे करि बैठे जहां।
तलि मुख पसारि विरह्यौ अजिगर, ग्रसन कै कारणि तहां।
सित असित द्वै देखिया मूषक, जड खणैं सरकन तणी।
संकट पड्यौ अब नहिं उबरण, करै चिंता चित्ते घणी ।।३।।

कुवा ढिग इक बिरख बडे री, तहां छातौ लग्यौ महुके री।
नहिं हलती हलाई डाली, मोखी अगनित उडी बिसाली।
मोखी बिसाली उडिवि अगनित, लगि उडी वैहि नर तणै।
उपसर्ग अगि करै घणेरी, तास को संख्या गिणै।
वहि समै मधुकण अहर ऊपरि, पडत रस रसना लियौ।
वा बिन्दु कै सुखि लागी लोभी, सबै दुख बीसरि गयौ ।।४।।

मधु बिन्दु जु सुख संसारो, दुख बरणत लहुं बनयारौ ।
जीव जाणों पथिक समानो, अग्यांन निबड उद्यानो ।
उद्यान घन अग्यान गिनिजै, जम भयानक कुंजरो ।
भव अंध कूपरु चारो गति, अहि मखिक व्याधि निरंतरो ।
अजिगर सु एहु निगोद बोयम, भखत जगत न धापये ।
द्वै पक्ष उज्जजल किसन मूषक, आयु खिण खिण का पये ।।५।।

ससार को यहु व्यवहारो, चित चेत हु क्यों न गवारो ।
मोह निद्रा में जे सूता, ते प्राणी अंति बिगूता ।
प्राणी बिगूता बहुत ते जिनि, परम ब्रह्म विसारीयौ ।
भ्रमि भूलि इंद्री तणै रसिनर, जनम वृथा गंवाइयौ ।
बहुकाल जाना जोनि दुख, दीरघ सह्या छीहल कहै ।
करि धर्म जिन भाषित जुगति स्यौ, त्यों मुकति पदवी लहै ।।६।।

।। इति पंथी गीत समाप्ता ।।

□ □ □

४. वेलि गीत

रे मन काहे कूं भूलि रहे विषया बन भारी ।
इह ममता मैं भूलि रहे मति कुंण[1] तुहारी ।
मति कुंण तुहारी देखी बिचारी, अति अधिक दुख पावो ।
जिण[2] इक मृग तिसना जल देखत, बहुडि न प्यास बुझावो ।
ग्रह सरीर संपति सुत बंधो, एते थिरि फिरि आण्या ।
श्री जिणवर की सेव न कीधी, रे मन मूरिख अयाणा ॥१॥

बहु जूणी मैं भ्रमता माणस जन्म जु पायो ।
है[3] देवन कूं दुर्लभ सो कत बादि गवायो ।
कत बादि गवायो मुड सुडाले, काहे पाव परवालै ।
काय उडावणि कारिणि कर थे, च्यतामणि काइ रालै ।
इक्कु जिनबर सेव बिना सब झूठा, ज्यो सुपना की माया ।
वृथा[4] जन्म खोय मांणस को, बहु जूंणी भ्रमि आया ॥२॥

उतिम धर्म्म है जीव दया, सो दिढु करि गहिए ।
अरहंत ध्यानु धरिज्यो सत, संजमस्यो रहिये ।
रहिये संजमस्यो परधन पर रमणी पर निंदा पर हरिये ।
पर उपगार सार है प्राणी, बहुत जतन स्यौं करिये ।
जब लग हंस अछित काया मैं, कुछ सुकृत उपावो भाइ ।
अति कालि तुहि मरती बेला, हो हो धर्म्म सहाइ ॥३॥

कलि विष कोट विणासै, जिनबर नाम जु लीया ।
जै घट निर्मल नाही, का तपु तीरथ कीया ।
का तप तीरथ कीया, जै पर मोह न छांडै ।
लंपट इंद्री लघु मिथ्या भ्रमु, जनमु आपणो भांडै ।
छीहल कहे सुणो मन बौरे, सील सीयाणी करिये ।
चितवत परम ब्रह्म कै[5] ताई, भव सायर कूं तिरिये ॥४॥

॥ इति वेलि गीत समाप्त ॥

□□□

१. कवण (ख प्रति) २. जिणु सुख (ख प्रति)
३. हय (ख प्रति) ४. वृथा म खोइ जनम माणस कउ (ख प्रति)
५. ब्रह्म स्यो रहिये जिम भव दुत्तर तिरिये (ख प्रति)

५. वैराग्य गीत

ऊयर उदक मैं दश मास रह्यौ, पडिवि श्रोमुखि बहु संकटु सह्यौ ।
कहु सहिउ संकटु उदर अतरि, चिंतवै चिंता घणी ।
ऊबरो अबकी बार जेहो, भगति करिस्यों जिण तणी ।
ए बोल संकट पडै बोलै, बहुडी जमि जामण भयौ ।
संसार का भ्रम भूवालि लागो, मूढ तब बीसरि गयौ ।।१।।

बालक विकहु अचेत........भक्षि अभक्षि ण कछु अंतरु लहै ।
लहै ना भक्षि अभक्षि अंतरु, लाल मुखि अरिल चुवैं ।
पडइ लोटै धरणि उपरु, रोइ करि अमृत पिवइ ।
तनु मूत विष्टा रहै वोद्यो, सुकृत ना कायो कियौ ।
बीसरयो जिन भक्ति प्राणी, बाल पणौ यो हा गयो ।।२।।

जोवनि मातो नर वहु दिशि भवै, परधन परतीय ऊपरि मनु रचै ।
रचै परधनु देखि परतीय, चित्त ठाइण राखए ।
छांडै अनीफल सेव जिनकी. विषय विष फल भाखए ।
काम माया मोह व्याप्यौ अमत हम विसार ।
पूजइ न जिणवर स्वामि वकरो, अविरथा जोबन गालए ।।३।।

जरा बुढापा वैरी आइयौ सुधि बुधि नाठी तब पछिताइयौ ।
पछिताइयो तव सुद्धि नाठी, सयण[1] जगतु न बूझए ।
जियन कारणि करै लालच नयन जगत्त न सूझए ।
मनु[2] कहइ छीहल सुणहि रे मन भरमि भूलौ कांइ फिरै ।
करि सेव जिणवर मति सेती, जो भव समुद तूतरु तिरै ।।४।।

गुटका संख्या ६५, पाटोदी का मन्दिर जयपुर ।

□□□

---

१. अवण सबब न बूझए ।
२. जन कहइ छीहल सुणो रैं नर भ्रमि भूलि काई फिरै ।
करि भगति जिनकी सुगति स्यौ स्यौं मुकति लीलइ ववौ ।।४।।

६. गीत

राग सोरठा

संसार असार विकार परहरि, सुमरि श्री जिण वाण ।
रे जीव जगत सुपनो जाणि ।।१।।

एक रंक सारो सहर जाच्यो, सुतो द्रुम तलि आणि ।
जाणिक वड भूपाल पोढ्यो, छत्र धारी लोक ।
खवासी विजण्या बहालि ढोले, सेक रही कहि कोडि ।
एक आणि रंभा पाव चुबै, वहो विधि आवै भेंट ।
ए ताही मैं जागि तौ ठीकरो सिर हेठि ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।२।।

एक बांझ कै धरि सुवर बागा, जाणिक जनम्यो बाल ।
बुलाइ पण्डित बुझै जोशी होसी वह भूपाल ।
मेरो पुत्र कुमाइसी त्रिया बहुत बंधी आस ।
ए ताही मै जाणि देखे तौ नाखिया रानिसास ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।३।।

एक निरधन जानै हुवो धनवंत सो भी गभी पूरि ।
अर्थ दर्व बहुभर्‌या भण्डा बधु निधि बांधी आस ।
एता में ही जागि देखे नहीं कोडी पासि ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।४।।

एक मूरिख जानै हूवो पण्डित मुखा चारयौ वेद ।
नाय आगम सबही सूझ्यो तीन भवन तन मोखि ।
एता में ही जागि देखे तो नहीं आखिर रेख ।
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।५।।

संसार सुपनो सवै जाण्यो जाण्या कछू न होइ ।
कहै छीहल सुमरि जीवडा जिण भज्या चलो होइ ।[1]
रे जीव जगत सुपनो जाण ।।६।।

□□□

१. गुटका संख्या ८, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपुर ।

३

चतुरुमल

१६ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में होने वाले जितने हिन्दी जैन कवि अल्प ज्ञात हैं उनमें चतुरुमल अथवा चतुरु कवि भी है। राजस्थान के जैन ग्रंथागारों में अभी तक ऐसे सैकड़ों कवि पोथियों मे बन्द हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा में कितनी ही सुन्दर रचनाएं लिखी थी और अपने युग में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। लेकिन समय के अन्तराल ने ऐसे कवियों को पर्दे के पीछे धकेल दिया और फिर वे सामने आ ही नही सके।

कुछ बड़े कवि तो फिर भी प्रकाश मे आ गये और उनका अध्ययन होने लगा लेकिन कितने ही कवि जिन्होने लघु रचनाएं लिखी, पद एव सुभाषित लिखे तथा पुराणों के आधार पर चरित व रास लिखे, बावनी व बारहमासा लिखे, ऐसे पचासों कवि अभी तक भी गुटकों में बन्द हैं और उन्होने हिन्दी की जो अमूल्य सेवाए की थी वे अभी तक हमारे से ओझल हैं।

जैन कवियो के हिन्दी मे केवल चरित एवं रास संज्ञक प्रबन्ध काव्य ही नहीं लिखे किन्तु साहित्य के विविध रूपों मे अपनी कृतियों को प्रस्तुत करके हिन्दी के प्रचार प्रसार मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने स्तोत्र, पाठ, संग्रह, कथा, रासो, रास, पूजा, मगल, जयमाल, प्रश्नोत्तरी, मत्र, अष्टक, सार, समुच्चय, वर्णन, सुभाषित, चौपई, शुभमालिका, निशाणी, जकड़ी, व्याहलो, बधावा, विनती, पत्री, आरती, बोल, चरचा, विचार, बात, गीत, लीला, चरित्र, छंद, छप्पय, भावना, विनोद, काव्य, नाटक, प्रशस्ति, धमाल, चौढालिया, चौमासिया, बारामासा, बटोई, वेलि, हिंडोलणा, चूनडी, सज्झाय, बाराखडी, भक्ति, वन्दना, पच्चीसी, बत्तीसी, पचासा, बावनी, सतसई, सामायिक, सहस्रनाम, नामावली, गुरुवावली, स्तवन, संबोधन, एवं मोडवो सज्ञक रचनायें निबद्ध करके अपने विशाल ज्ञान का परिचय दिया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में इन विविध साहित्य रूपों मे से किसका कब प्रारम्भ हुआ और किस प्रकार विकास और विस्तार हुआ यह

शोध के लिए रोचक विषय है। इन सब की बहुमूल्य सामग्री देश के जैन ग्रन्थागारों में उपलब्ध होती हैं।[1]

लेकिन साहित्य के उक्त विविध रूपों के अतिरिक्त अभी तक और भी बीसों रूप हैं जिनकी खोज एवं शोध आवश्यक है। अभी हमें साहित्य का एक रूप "उरगानो" प्राप्त हुआ है। जिसके रचयिता हैं कविवर चतुरुमल अथवा चतुरु।

कवि परिचय

चतुरुमल १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। यद्यपि इनकी अभी तक अधिक रचनाएं उपलब्ध नहीं हो सकी हैं लेकिन फिर भी उपलब्ध कृतियों के आधार पर कवि श्रीमाल जाति के श्रावक थे। दि० जैन धर्मानुयायी थे तथा गोपाचल ग्वालियर के रहने वाले थे।[2] कवि के पिता का नाम जसवंत था।[3] अपने पिता के वे इकलौते पुत्र थे। कवि ने अपने परिचय मे लिखा है कि जन्म लेते ही उसका नाम चतुरु रख दिया गया। कवि की शिक्षा दीक्षा कहां तक हुई इसकी तो विशेष सूचना प्राप्त नहीं है किन्तु नेमिपुराण सबसे अधिक प्रिय था और उसी के आधार पर उसने 'नेमीश्वर का उरगानो' काव्य की रचना की थी। क्योंकि उसने अनेक पुराणों को सुना था तथा स्वाध्याय की थी लेकिन हरिवंश पुराण में उसका सबसे अधिक आकर्षण हुआ। उस समय वहां धवल पण्डित रहते थे। वे साहसी एवं धैर्यवान थे।[4] उन्हीं के पास कवि ने पुराणों का अध्ययन किया था। और उसी अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत कृति की रचना की थी।

रचनाएँ

कवि ने हिन्दी में कब से लिखना प्रारम्भ किया इसकी तो अभी खोज होना शेष है लेकिन संवत् १५६६ मे उसने गोपाचल गढ में आकर के गीतों की रचना

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची—भाग चतुर्थ पृ० ४।

२. मधि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उत्तिम थानु ।।४४।।

३. श्रावगु सिरमलु अरु जसवंत निहचै जिय धर्म धरंत।
   चव चल नभवि संवतौ, पुत्र एकु ताके घर भयौ।
   जनमत नाम चतुरु तिनी लियो, जैनधर्म विहु सौवहु धरौ ।।४३।।

४. सुनि पुरानु हरिवंस गम्हीर, पंडित धवलु सु साहस धरि।
   तिनिसु तरवर निकु रचि कियौ, कलि केवलि को त्रिभुवन साच ।।२।।

प्रारम्भ की थी ।[1] अभी तक हमें कवि के चार गीत उपलब्ध हो सके हैं और चारों ही एक गुटके में संग्रहीत हैं ।

कवि की सबसे बडी रचना "नेमीश्वर की उरगनौ" है । इस को कवि ने ग्वालियर में संवत् १५७१ में भादवा बुदी पंचमी सोमवार को समाप्त की थी । उस दिन रेवती नक्षत्र था ।[2] इसमें ४५ पद्य हैं । तथा नेमिनाथ एवं राजुल के विवाह की घटना का प्रमुखतः वर्णन है ।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने और कौन कौनसी कृतियां निबद्ध की इसका अभी पता नही चल पाया है लेकिन यदि मध्य प्रदेश के शास्त्र भण्डारों में खोज की जावे तो सभवतः कवि की और भी रचनायें उपलब्ध हो सकती हैं ।

कवि ने ग्वालियर के तोमर शासक महाराजा मानसिंह के शासन का अवश्य उल्लेख किया है तथा ग्वालियर को स्वर्ण लंका जैसा बतलाया है । महाराजा मानसिंह की उस समय चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी तथा अपनी भुजाओं के बल से वह जग विख्यात हो चुका था । ग्वालियर में उस समय जैन धर्म का प्रभाव चारों ओर व्याप्त था । श्रावकगण अपने षट्कर्मों का पालन करते थे तथा उनमें धर्म के प्रति अपार श्रद्धा थी ।

कवि के कुछ समय पूर्व ही अपभ्रंश के महाकवि रइधू हो चुके थे जिन्होंने अपभ्रंश मे कितने ही विशालकाय काव्यों की रचना की थी । रइधू ने जिस प्रकार ग्वालियर का, वहा के श्रावकों का, तोमर वशी राजाओं का वर्णन किया है लगता है ग्वालियर दुर्ग का वही ठाट बाट कवि चतुरुमल के समय मे भी व्याप्त था । लेकिन चतुरु ने न रइधू का नामोल्लेख किया और न नगर के साहित्यिक वातावरण का ही परिचय दिया ।

कवि के जिन रचनाओं की अब तक उपलब्धि हुई है उनका परिचय निम्न प्रकार है—

१. गीत—(ना जानो हो को को पैरे ढीलरीया कत जाई)

---

१. चत्रु श्रीमाल वासुदेव संगी । गलि गारि की आइ कीयो गढ गर संवत् १५६६ को । गुटका – शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथियों का, जयपुर । वेष्टन संख्या २४८७ ।

२. संवतु पन्द्रहसै वो गनै, पुन मुनुहत्तरि ता ऊपरि भवै ।
भादौ वदि तिथि पंचमी वाद, सोम न खित् रेवती भाद ।

यह लघु गीत है जो पद रूप में है। जिसमें मानव को भगवान की पूजा आदि करके निर्विघ्न मार्ग पर बढ़ते जाने को कहा गया है। पद की अन्तिम पंक्ति में "संसारहु मानव कुलि साह भनई चतुभावगु श्रीमारु" कह कर अपना परिचय दिया है।

दूसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है 'गाडी के बढ़ वार की'। यह भी आध्यात्मिक पद है जिसमें दशधर्म को जीवन में उतारने तथा सातों व्यसनों को त्यागने की प्रेरणा दी गई है। पद का अन्तिम चरण इस प्रकार है—

"श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यो गावहिंवें"

तीसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है "आईति बाबा बारी कै जईयो" यह भी उपदेशात्मक पद है जिसमें श्रावक को मानव जीवन को सफल बनाने का अनुरोध किया गया है। कवि ने पद के अन्त में "भनई चतुरु श्रीमारु" से अपने नाम का उल्लेख किया है।

४. क्रोध गीत—यह भी लघु गीत है जिसमें क्रोध, मान, माया और लोभ की निन्दा करके उन्हें छोड़ने का उपदेश दिया गया है। इसमें चार अन्तरे हैं। मान कषाय का पद निम्न प्रकार है—

> मानु न कीजै ओईयरा, तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुख सहे।
> अप्पु सराहे हो भलो, पुणि परु की हो परु की णिंद करई।
> परु करई निंद्रा नित प्रानी, इसोइ मन गरवै खरौ।
> हउ रूप चतुरु सुजानु सुंदरु, ईसोप भलौ मद भरै।
> अहमेव करि करि कर्म्म बधो, लाख चौरासी महि फिरै।
> ईम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु बहु दुखह करी ॥२॥

५. नेमीश्वर का उरगानो—प्रस्तुत कृति कवि की सबसे बड़ी कृति है। अब तक काव्य के जितने भी नाम आये हैं उनमें 'उरगानो' संज्ञक रचना प्रथम बार प्राप्त हुई है। 'उरगानो' का अर्थ स्वयं कवि ने 'गुन विस्तरो' अर्थात् गुणों को विस्तार से कहने वाले काव्य को उरगानो कहा है। इसमें नेमिनाथ के जीवन की विवाह के लिए तोरण द्वार को छोड़कर वैराग्य धारण करने की घटना का वर्णन किया गया है। उरगानो की कथा का संक्षिप्त सार निम्न प्रकार है—

मंगलाचरण के पश्चात् उरगानो नारायण श्रीकृष्ण के पराक्रम की प्रशंसा से प्रारम्भ होता है जिसमें कहा गया है कि द्वारिका में ५६ कोटि यादव निवास करते थे जो सब प्रकार से सुखी एवं सम्पन्न थे। नारायण श्रीकृष्ण ने जरासंध पर

विजय प्राप्त करके शंखनाद के साथ द्वारिका पहुंचे। एक दिन पूरी राज्य सभा जुड़ी हुई थी। विविध खेल हो रहे थे। राजा एवं रानी दोनों ही प्रसन्न थे। उसी समय नेमिकुमार आए। सभी ने उनका आरती उतार कर स्वागत किया। नारायण श्रीकृष्ण ने सभी सभासदों को नेमिनाथ का परिचय दिया तथा कहा कि वर्तमान समय में नेमिनाथ से बढ़कर कोई साहसी एवं धैर्यवान है। बलभद्र ने नेमिनाथ के बारे में और भी जानना चाहा। श्रीकृष्ण जी ने नेमिनाथ का चित्र लिया तथा राजा उग्रसेन के पास गये और उनसे नेमिनाथ के लिये राजुल को मांग लिया। उन्होंने कहा कि हम सब यादव नेमिनाथ की बारत में आयेंगे। उग्रसेन ने अत्यधिक प्रसन्न होकर राजुल से नेमिनाथ के विवाह की स्वीकृति दे दी। लेकिन साथ में उन्होंने चुपचाप ही कुछ पशुओं को एकत्रित करने के लिए कह दिया।

कुछ समय के पश्चात् नेमिनाथ बारात लेकर वहां पहुंचे। उन्होंने वहां चारों ओर देखा और पशुओं को एकत्रित करने का कारण जानना चाहा। लेकिन जब उन्हें मालूम पड़ा कि ये सब बरातियों के लिए आये हैं तो उन्हें एकदम वैराग्य हो गया और विवाह ककरण तोडकर तथा रथ को छोड़कर गिरनार पर्वत पर जा चढ़े। नेमिनाथ के वैराग्य से राजुल के माता पिता एवं परिजनों सबको दु.ख हुआ और वे विलाप करने लगे। जब राजुल को उनके वैराग्य लेने का पता चला तो वह मूर्छित हो गई। वह कभी उठती कभी बैठती और कभी चिल्लाती। वह अपने पिता के पास जाकर रुदन करने लगी। पिता ने सारा दोष श्रीकृष्ण जी पर डाल दिया। लेकिन उसने राजुल से यह भी कहा कि उसका विवाह किसी दूसरे राजकुमार से कर दिया जावेगा जो नेमि के समान ही रूपवान एवं धैर्यवान होगा। तथा विद्याओं का आगार होगा। राजुल को पिता के शब्द सुनकर अत्यधिक दुःख हुआ। और नेमिनाथ के अतिरिक्त दूसरे किसी से भी बात नहीं करने के लिए कहा।

राजुल भी नेमि के पीछे-पीछे शिखर पर जा चढी और नेमि से ही उसे छोड़कर चले आने का कारण जानना चाहा। नेमिनाथ ने स्वयं के लिए संयम लेने की बात कही तथा राज्य, हाथी, घोडा एवं अन्य सभी परिग्रह छोडने की बात कही। लेकिन उन्होने राजुल से वापिस घर जाकर विवाह करने के लिए कहा क्योंकि तपस्वी जीवन अत्यधिक कठिन जीवन है। इसमें साथ-साथ रहना परित्याज्य है। राजुल ने नेमि को छोड़कर घर लौटने से इन्कार कर दिया और कहा कि चाहे उसके प्राण ही क्यों न चले जायें वह तो उन्हीं के चरणों में रहेगी। घर आकर क्या करेगी। इसके बाद राजुल ने दो-दो महिनों को लेकर बारह महिनों में होने वाले ऋतु जन्य संकट का वर्णन किया तथा कहा कि ऐसे दिन में उनको छोड़कर कैसे जा सकती हैं। वह तो उनही की सेवा करेगी। राजुल ने कहा सावन भादों में

तो घनघोर वर्षा होगी । बिजली चमकेगी तथा मयूर एवं पपीहा की रट लगेगी । ऐसे दिनों में वह नेमि को छोड़कर कैसे जावेगी । आसोज एवं कार्तिक मास में शरद ऋतु होगी । सरोवर एवं नदियों में स्वच्छ जल भरा होगा । आकाश में चन्द्रमा भी निर्मल हो जावेगा । चारों ओर गीत एवं नृत्य होंगे ऐसी ऋतु में नेमि बिना वह कैसे रह सकेगी ।

मंगसिर एवं पोष में खूब सर्दी पड़ेगी । शरीर में काम रूपी अग्नि जलेगी । घर घर में सभी मस्ती में रहेंगे लेकिन नेमि के बिना वह किस घर में रहेगी और उसका हृदय पत्ते के समान कपित होता रहेगा । एक ओर काली रात्रि फिर बर्फ का गिरना । लेकिन उसका मन तो पिया के बिना ही तरसता रहेगा ।

अघन पुषु अति सीत अपारु, जादो विषु व्यापे संसारु ।
काम अगिनि बहु पर जलु, घर घर सुख करै सब कोई ।
तुम बिनु हमहि कहा घर होई, हिरदौ कपे पात ज्यो ।
निसि अंध्यारी परतु तुसारु, काम लहरि अति होइ अपार ।
यहु मनु तरसै पीउ बिना, सबु संसार करै अति भोग ।
राजल रटै करै पीय सोगु, नेमि कुंवर जिन वन्दिहो ॥३०॥

माघ और फाल्गुण ऋतु मे तो बसन्त की बहार रहेगी । सभी बसन्त का आनन्द लेंगे । कामनियां अपने प्रियतम के साथ विलास करेंगी । वे अपने अगों मे चन्दन का लेप करेंगी तथा माथे पर तिलक भी करेंगी । घर घर वन्दनवार होगी । राजुल भी ऐसी ऋतु में अपने पिया के साथ परिहास करना चाहती है तथा दिन मे अपने कंत की सेवा करना चाहेगी ।

चैत्र और वैशाख में सभी वनस्पतियां खिल जावेंगी । नन्दन वन के सभी पुष्प भी खिले होंगे । भौंरे फलो का रस पीते होंगे । वन में कोयल कुहु कुहु के प्रिय शब्द सुनाई देगी । विरहिणी स्त्रियां अपने प्रिय के बिना तड़फती रहेंगी लेकिन वह स्वयं बिना नेमि के क्या करेगी ।

इसी तरह जेठ और आषाढ में गर्मी खूब पड़ेगी । सूर्य भी तपेगा । कुछ लोग चन्दन लगा कर शरीर को शीतल करेंगे । लू चलेगी । लेकिन उसे तो प्रिय के बिना और भी उष्णता सतावेगी । इसलिए वह रात्रि दिन नेमि पिया नाम की माला जप कर उनके शीतल वचनों को सुनती रहेगी ।

इस प्रकार राजुल बारह महिनों के विरह दुःख को नेमि के सामने रखती है और चाहती है कि विवाह न किया तो न सही किन्तु वह उनके चरणों में रहकर

ही उनकी सेवा करती रहे । यह कह कर वह रोने लगी और उसकी आंखों से अश्रुधारा बह चली ।

नेमि ने राजुल की बात सुनी । उन्होंने कहा कि वे तो वैरागी हो गये हैं संयम धारण कर लिया है इसलिए अब राजुल की सेवा कैसे स्वीकार कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने राजुल से वापिन अपने परिजनों में लौटने की सलाह दी । जिससे वह राज्य सुख भोग सके । लेकिन राजुल कब मानने वाली थी । उसने फिर अनुनय विनय किया । रोयी और नेमि से उसे भी व्रत देने की प्रार्थना की । अन्त में नेमिनाथ को उसकी प्रार्थना को स्वीकार करना पड़ा और उसे आर्यिका की दीक्षा दे दी । इसके साथ ही नेमिनाथ ने आवश्यक व्रतों को पालने का उपदेश दिया ।

इस प्रकार 'नेमीश्वर का उरगानो' एक शान्त रस प्रधान काव्य है जिसमें विरह मिलन की अद्भुत संरचना है । नेमि द्वारा तोरणद्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने की इतिहास में अकेली घटना है । फिर उनसे राजुल का घर वापिस लौटने के लिए अनुनय विनय, पति के विरह में होने वाले कष्टों का वर्णन और वह भी आमने सामने । जहां एक वैरागी हो और एक नयी नवेली बनी हुई उसी की दुल्हिन । भगवान शिव को तो पार्वती की तपस्या के सामने झुकना पड़ा लेकिन नेमिनाथ के वैराग्य को राजुल नहीं डिगा सकी । उसने भी नेमि से अधिक से अधिक आग्रह किया, रोई विलाप किया, लेकिन वे कब अपने वैराग्य से वापिस लौटने वाले थे । अन्त में राजुल का ही संयम धारण करना पड़ा ।

भाषा

प्रस्तुत कृति व्रज भाषा की कृति हैं जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है । पखारे (६), कोरि (४), औतरे (७), कन्हइ (८), जोवहि (११), मोरि (१३), तोरि (१३), होइ है (१६), तिहारे (२२) आदि शब्दों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । ड और ट के स्थान पर र का प्रयोग किया गया है ।

रचना काल

प्रस्तुत कृति संवत् १५७१ की रचना है । रचना समाप्ति के दिन भादवा बुदी पचमी सोमवार था । रेवती नक्षत्र एवं लगन में चन्द्रमा था ।[1]

---

१. संवतु पन्द्रहसै वो गनौ, गुन गुनहत्तरि ता उपरि घंन ।
भादौ वदि तिथि पंचमी वार, सोम नखितु रेवती सार ।
लगुन भली सुभ उपजी मति, चन्द्र जन्म बसु पाइयौ ॥

रचना स्थान

'नेमीश्वर का उरगानो' का रचना स्थान गोपाचल दुर्ग (ग्वालियर) रहा। उस समय वहां के शासक महाराजा मानसिंह थे जिनके सुशासन की कवि ने प्रशस्ति में प्रशंसा की है। महाराजा मानसिंह तोमर वंशी शासक थे। वहां जैन धर्म का पूरा प्रभाव व्याप्त था तथा उसके अनुयायी देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान जैसे कार्यों का प्रति दिन पालन करते थे।

पाण्डुलिपि

उरगानी की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरह पंथियान् के एक गुटके में संग्रहीत है। पांडुलिपि संवत् १८२""माह बुदी १४ गुरुवार के दिन समाप्त हुई थी। संवतोलेख वाला अन्तिम अंक नहीं है इसलिए यह पाण्डुलिपि संवत् १८२० से १८२६ के मध्य किसी समय लिखी गयी थी। प्रतिलिपि करने वाले थे आचार्य देवेन्द्रकीर्ति थे जिन्होंने इसे अपने शिष्य के लिए लिखा था।

□ □ □

१. नेमीश्वर को उरगानो

अथ उरगानो लिखितं नेमी कुंवर को ।

मंगलाचरण—

प्रथम चलन जिन स्वामी जुहारु, ज्यौं भवसायरु पावहि पारु ।
लहइ मुकति दुति दुति तिरो, पंच परम गुर त्रिभुवन सारु ।
सुमिरत उपजै वुधि अपारु, सारद मनाविऊं तोहि ।
गुरु गोतमु मो देउ पसाउ, जो गुन गाउ जादु राइ ।
उरगानो गुन विस्तरो, समद विजै सिव देवी कुवार ।
जाके नाम तिरै संसारु, चतुर गति गमनु निवारियो ।
राजमति तजि जीव मिलाई, चढि गिरनैरि लियो तपु जाई
नेमि कुवरु जिन वंदि हो ।।१।।

सुनि पुरानु हरिवस गम्हीरु, पंडित धवलु जु साहस धीरु ।
तिनि सुत रयनि जु रचि कियो, कलि केवलि जो त्रिभुवन सारु ।
सुनि भाविय भव उतरैं पारु, नेमि कुंवर जिन वदि हो ।।२।।

नारायण श्रीकृष्ण का वर्णन—

वरनो आदि जु होइ पसारु, जादो कुल इतनो व्योहारु ।
जो नाराइनु ओतरे, अरु जी जानो नेमि कुंमारु ।
जाके नाम तिरै ससारु, नेमि कुंवरु जिन वंदि हो ।।३।।

छप्पन कोरि सु जादो वीरु, रहइ द्वारिका सायर तीरु ।
भोग भाइ वहु विधि रहै, राजु करै हित सो पारवारु ।
वाढै हय गय अथु मंडारु, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।४।।

जीति जुरासिधु सघु वजाई, पुनि द्वारिका पऊचे जाइ ।
चक्र नाराइन कर चढै, करहि वीप्रा ए मगलचार ।
पंच सवद वाजहि अनिवार, नेमि कुंवरु जिन वंदि हो ।।५।।

सभा पूरि बैठे हरि राउ, चऊंवा सयनु न सुझै ठाउ ।
होइ अषारे पेषनै, रानी राइ भइ मनोहारी ।
नाराइन आरते उतारी, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।६।।

नेमीश्वर का परिचय—

तब वसुदेव कहै सतभाव, यहु नेमीसुरु त्रिभुवन राउ।
समद विजै घर औतरे, छत्रु देहु यौं ज्यौं नर नाहु।
बांदि चरन प्रारते कराउ, नेमि कुंवर जिन बंदि हौ ॥७॥

तब हरि भनै सुनै बलदेउ, नेमि तिनौ तुम जानौ भेउ।
सो कारन हम सौ कहौ, विद्या बलु या पासन प्राहि।
जीत्यौ कहै ध्रुरासिंधु ताहि, मैं वारी करि जानियौ।
तब हि कहै बलिभद्र कुमारु, मो पहि सुनौ याको व्यौहार।
गुपित रूप गुन प्रागरौ, नेमि कुवरु यहु गरुवो वीरु।
या समान नहि साहस वीरु, नेमि कुंवर जिन बंदि हौ ॥८॥

दूत का उग्रसेन के पास जाकर राजुल के विवाह का प्रस्ताव—

सुनत अचंभो हरि मन भयो, पटतरो नेमी कुंवर कौलियौ।
तब बलु आवत देखियौ, बिलख वदन माहुरी मन जाम।
कर ही उपाउ त्रिसो ताम, दूतु तब हि तिन पाठयौ।
उग्रसेनि धिया राजकुमारि, राजुल देवी रूप कि प्रारि।
देहु राइ कन्हरु भनौ, नेमि कुंवरु या व्याहै प्राइ।
जादौ सयल साथ समुहाइ, नेमि कुंवर जिन बंदि हौ ॥९॥

उग्रसेनि तब हरखिय गात, परियन बोलि कही तिनि बात।
सौंज करौ बहु अति धनि, जादौ प्रावहि स्यौ परिवार।
कला हमारी रहै अपार, मनु नाराइन रंजियौ।
वधिक बुलाइ राइ यौ कह्यौ, बन मा जीउन एकुं रहै।
तौ निग्रहु तुम सौ करौ, हिरन रौझ बहु जीव अपार।
आनहु घेरि न लावो बार, नेमि कुंवर जिन बंदि हौ ॥१०॥

बारात—

छपन कोरि जो जादौ असमान, पहुंचे उग्रसेन के थान।
पंच सबद बाजैहि घने, छायहु सुर गगन प्राकासु।
सुरपति सेसु डरौहि कविलास, तीनि भुवन मन कंपियौ।
नेमि कुंवर जोवहि बहु पास, जीव देखि चितु कियौ उदास।
नेमि कुंवर जिन बंदि हौ ॥११॥

नेमिकुमार का प्रश्न—

नेमी भनै हरि सुनहु विरारु, जीव कहाए वहुत अपार।
कौन काज ए घेरियौ, कारनु कवनु सुनौ वडवीर।
बहुत चिंता मो भईय सरीर, सांचउ वयनु प्रगासियौ।

नारायण का उत्तर—

भनहि नाराइनु सुनहु कुवार, जी नर सोइ होइ संधार।
वहु ज्योंनार रचाइवीयौ, वधिए जीउ सहु लईहि काज।
भोजन करहि तुम्हारे काज, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।१२।।

नेमिकुमार का वैराग्य—

भयौ विरागी सुनत हरि वयनु, श्रैसौ व्यौहु करै अब कवनु।
कंकन मुकट जु परिहरे, छाडौ अर्थ भंडारु जु राजु।
जीव सइल मुकराऊ आजु, व्याहु छोडि तपु सुंगह्यौ।
रथ तै उतरि चलै वन मोरि, कर कंकन सव डारे टोरि।
नेमि कुवर जिन वदि हो ।।१३।।

जानिउ सयल ससार असारु, छांडि चाले सवु राजु भंडारु।
चित वैरागु जु दिढ धरो, गौ गिरनैरि सिषिरि नर वीरु।
चोघा जोवै साहस धीरु, भुवनु खानु देखियौ।
उत्तिम ठाऊं जु आसनु देहि, लोभु मानु जे दुरि करेहि।
निहचल मनु करि सोइ रहै, पचम महाव्रत संजमु धरै।
कष्ट सरीर वहुत विधि करै, सील सुमति जिहि जिय वसी।
नेमि कुंवर जिन वदि हो ।।१४।।

जोग जुगति सो ध्यानु कराइ, चो गै गमनु कि वारियौ।
मनु इन्द्र पचौ निर्गहे, कर्म तारासु परम पदु लहै।
नेमि कुंवर जिन वदि हौं ।।१५।।

नेमि कुवर गिरनयरिहि, जादौ सयल विलखित भए।
कन्हर मनु आनद भए, उग्रसेनि दुख करहि अपारु।
कियौ हमारौ सुवु भयौ आसरु, नेमिकुंवर जिन वदि हो ।।१६।।

राजुल का विलाप—

राजुल देवी तवि सुधि लही, दासी वात जाइ तब कही।
नेमि सुनौ गिरि लो गए, सुनत वासु मुछिय जाइ।

कौन पाप हम कीने माइ, छिन छिन मुरछि भी परिजाइ ।
छिन छिन उठि ओवइ महुं पास, परीव बिलपी लेइ उसार ।
को मनु मेरो धीरवै, कोनु बहोरै नेमि कुंवारु ।
कोयहु आइ करै उपगारु, नेमि कुंवर जिन बंदि हों ॥१७॥

राजुल का अपने पिता के पास जाना—

तब उठि कुंवरि पिता पहि जाहि, बात करत वे परीव लजाइ ।
नेमि सुने गिरि भी गये, कहउ पिता तुम जानउ भेउ ।
कौनु बहोरे जाबो देव, गयहु भरि चित न संहारौ ।
सुनत बात सो मुरही जाइ, ब्याहु छांडि संजम लिया ।
उनि वैराग कियौ किहि काज, छांडिउ छत्र संघानु राजु ।
नेमि कुंवर जिन वंदि हों ॥१८॥

उग्रसेन का उत्तर—

उग्रसेनि यो कहि विचार, यहु सबु जानै कन्हु मुरारि ।
जिन ए जीव घिराईयो, देखि तिन्हहि मनु भो वैरागी ।
बोछउ कुंवरि तुम्हारो भाग, कन्हर कुरम कमाइयो ।
लेन गये हम करि मनोहारि, जादो सयल रहे पचिहारि ।

दूसरे राजकुमार के साथ विवाह का प्रस्ताव—

वे दिढु संजमु लै रहे, अबहि कुंवरि हम करिहै काजु ।
ब्याहु तुम्हारा होइ है आजु, वरु नीको ले आइ हैं ।
अति सरूप सो राजकुंवारु, चौदह विद्या गुनहनि थानु ।
नेमि कुंवर जिन वंदि हों ॥१९॥

राजुल का उत्तर—

यह सुनि राजुल उठी रिसाइ, ऐसो बोलु कहै कतराइ ।
ब्याहु जनम औरै करो, एही जनम भी नेमि भरतारु ।
उग्रसेनि सों सबु संसारु, चढि गिरिनयरिहि आसीउ ।
उनहि साथ हों संजमु धरौ, सहूक परीसहि सेवा करो ।
कर्म कुचिल सब टारिहै, अब नित रहहुं पिया के साथ ।
नेमि कुंवर जिन वंदि हों ॥२०॥

राजुल की पुनः चिन्ता करना—

मारगु जोवै करै संदेहऊ, नेन भरै जनु भादौ मेह।
कंत कवन गुन परिहरी, गढी होइ सो चलति तुरन्त।
दुद्धरु दुषु दियो मो कंत, तुम विनु को मनु धीरवै।
जगु अच्यारी मेरे जान, और न देषौ तुमहि समान।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२१।।

झुरवै कारन करै बहुतु, बर्नन जाइ तासु गुन रूपु।
रुदनु करत मारगु गहै, तुम बिनु जन्मु जु वाहायौ।
पुर्व्व जन्म विछोही नारि, पाप पराचित हम किए।
पथ अकेली चलति अनाह, अैसो तुमहि न बुभिए नाह।
हमहि छांडि गिरि तुम गये, पिय बिनु सुंदरि करवि कांइ।
रहै समीप तिहारै नाह, नेमि कुंवर जिन वंदि हो ।।२२।।

गिरिनार पर राजुल का पहुंचना—

करति विष्षादु गई सो नारि, पहुंजी जाइ सिषिरि गिरनैरि।
चरन लागि सो वीनवै, कर जोरै सो बात कहाइ।
दासी कर मो जानो राइ, सेवा बहु दिन दिन करौं।

नेमिकुमार से निवेदन—

हम परिय कवन तुम काज, छाडौ व्याहु भाई मो लाज।
तुम गिरनैरिहि आइयौ, दोसु कवन पीय लागो मोहि।
सो कहि स्वामी पुछु तोहि, नेमि कुंवर जिन वदि हों ।।२३।।

नेमिनाथ का उत्तर—

नेमि भनै सुनि राज कुंवारि, हमि संजम लियौ चढि गिरनारि।
राज रीति सब परिहरि, हय गय विभव छत्र धन राजु।
परियन व्याहु नही मो काजु, जीव दया प्रतिपालिहौ।
यहु ससारु जु साइरु भव भवनु, वहुरिउ भ्रमि भ्रमि बूडै कौनु।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२४।।

अब तुम कुंवरि बहु घर जाहु, कंकन बंधी करहु विवाहु।
हम गौहि नु करि वावरी, राजधिया तु अति सुकुमाल।

भोग विलास करौ तुम बाल, तपु न करि सकै सुन्दरि ।
हम जोगी दि जोगु धराइ, ध्यान जुगति सौं कष्ट सहाइ ।
हम तुम साधु न बुझिय, जाऊ कवरि हम छाडी माय ।
करहु बहु विधि भोग विलास, नेमि कुंवरु जिन वंदि हौं ।

राजुल एवं नेमिकुमार का उत्तर प्रत्युत्तर—

राजुल भनै सुनीहु जदु राइ, तुम वौं छांडि घरै हम जाइ ।
पापु कौन हम को परै, तुम जु कही हम सो घर जान ।
जीव कहू तु हौं तजौ परान, चरन कमल दिन सेई है ।
अरु करि हौ तुम नामु अधार, जिहि चढ़ि भव जल उतरै पार ।
नेमि कुंवर जिन वंदि हौं ।।२६।।

तब हि कुंवर तैं उतरु दयो, घर कौ अरु तुम्हारे लेइ ।
बन हु अकेली तपु करौ, हम बहु कष्ट सहे चितु लाइ ।
तुम हि कुंवरि सही कत आइ, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ।।२६।।

उग्रसेनि धिय चतुर सुजान, कुंवर सुनहु यौ उत्तर ठानि ।
पास रहौ सेवा करौ, जाउ घरें हौ कैसे रहौ ।
गरुवो दुख बहु तू क्यों सहौं, लडर तु मान को हापि है ।

बारह महिनों का विरह वर्णन, सावन भादौं—

सावन भादौ वर्षा काल, नीरु अपबलु बहुत असराल ।
मेघ घटा अति नऊ नई, लहू लहू वीजुरी चमकंति राति ।
तम भर रयनि सह्यारे कति, परदेसी चितु बहु भरै ।
दादुर मोर रटे दिन रैनि, पपीहा पिउ पिउ करै ।
को झील करौउ महै नेम, तुम बिन को जिउ राषिहे कंत ।
नेमि कुंवर जिन वदिहौं ।।२८।।

आसोज कातिक—

कातिक क्वार सरद रितु होइ, नरि हुलासु करै सबु कोई ।
निर्मल नीर सुहावनो, तिथि निर्मल ससि अति सोहंति ।
नरि जनि नेम संम्हारै कंति, विरह व्यथा अति उपजै ।
गीत नाद सुनि यौं चहुं पास, हम तुम बिनु पिय भरी उनास ।
नेमि कुंवर जिन वदिहौं ।।२६।।

अंगसिर पोष—

अघन पुषु अति सीत अपारु, जाडौ विपु व्यापै संसार।
काम अगिनि बहु पर जलु, घर घर 'सुख करै सब कोई।
तुम बिनु हमहि कहा घर होइ, हिरदौ कंपै पात ज्यौं।
निसि अध्यारी परतु तुसारु, काम लहरि अति होइ अपार।
यहु मनु तरसै पीउ विना, सबु संसार करै अति भोग।
राजुल रटै करै पीय सोगु. नेमि कुंवर जिन वदिहौं ॥३०॥

माघ फाल्गुन—

माघ पवनु फागुन रितु होइ, रितु बसंत खेलै सब कोई।
कंत सतवर कामिनी, दिन दिन रागु करै अनसरै।
संजोग सिगारु बहुत विधि करे, फागुण फागु सुहावनी।
सोहै सरिसु करै दिनु खेलु, गावहि गीत करे पिय मेलु।
परि मेघुरि उडाइसी, ह्रैंज, सवनि सिर उडई सीहु।
चोवा चन्दन अगर कपूरु, तिलकु करै कर सुन्दरी।
घर घर बांधे बन्धन वार, पंच सबद वाजही अनि अार।
पिय परिहसु राजुल करै, दिन दिन तुम्ह ही सह्यारै कंत।
राखि सके को हस उडात, नेमि कुंवर जिन वंदिहौ ॥३१॥

चैत्र वैशाख—

चैतु सुहावो अरु वैशाख, वनसपती सब भई हुलासु।
भार आठारह मोरियौ, सब फुलै नन्दन वन फूल।
वासु सुगंध भोर रस भुलि, फलहिते अमृत फल घनै।
वन कोयल कुहु कुहु सुर करहि, गहु गहु मोर सुहावनै।
बिरहिनि त्रम म्हारै कंत, पिय बिनु जनमु अकारथ जंत।
रइनि निरासी क्या गमै, हमहिं पिया जनि करहु निरास।
वीसर रैनि सु म्हारी आस, नेमि कुंवर जिन वंदि हौ ॥३२॥

जेठ आषाढ—

जेठु असाढु गरम रितु होइ, घाम परै व्यापै सब कोइ।
तपा तपै तनु अति तपै, पेम अगिनि तन डहै सरीरु।
लुवल वहि झर सघन परही, सीतल जतन तै सवल करही।
श्रीखंड घसि तनु मंडहि, अरु बीच परम पसी जैं देहु।

होइ सिया अति पिय के नेह, काइ सरीर सुहावनौ ।
चलती अधिक पिय तुम बिनु होइ, हंस चढ़त न राखै कोई ।
निसि वासर गुन तुम्हेरो, सीतल बचन तुम्हारे कंत ।
सुनत हमहि सुखु होइ तुरन्त, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३३।।

ए षट् रितु को सबै सम्हारि, उपजै दुखु तुमहि सम्हारि ।
क्यों करियहु मनु राखि है, रहि है पास तुम्हारे देव ।
करिहैं चरन कमल नित सेव, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३४।।

आदी गइ अनै सुनि बैन, दवनु करहु कंत भरि जल नैन ।
हम मनु संजमु दिढु धरै, तुम अति गाढ़ु कत करौ बहुत ।
राजु करहु वर सखिनि संजुत, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३५।।

तब सुनि राजुल बिलखी होई, तुम बिनु स्वामी गैहै कोइ ।
साथ सहित संजमु धरौ, अरु श्रावक व्रत कर उपवास ।
और सबै छाडौ हम आस, कष्ट बहु विधि हौं सहौ ।
करहु दया मो दे उपदेसु, ज्यो तिरिए संसारु असेसु ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३६।।

यह सुनि बोलैं त्रिभुवन नाथ, धर्म सनेह रहै हम पास ।
मनु निहचलु करि राखौ, सुनहु कुंवरि संसारु असारु ।
भव सायरु जलु गहीर अपारु, चतुर्गति गमनु निवारियौ ।
जीव छौ चौरासी जाति, सहइ बहुत दुखु अंन घन भाति ।
भ्रमतनि अंतु न पाइऐं, रहट माल ज्यौं यहु जीव फिरै ।
रूप अनेक बहुत विधि करै, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३७।।

अब समिकितु धारियौ दिढ चितु, मोख मुगति जौ लहइ तुरन्त ।
परु परिहरि सुनि सुन्दरी, चेतनि सुन्दरी सम करहु गुन जासु ।
ध्यानु धरहु जानौ दीनौ तासु, मिथ्या मोहवि परिहरौ ।
पंच परम गुरु अपु पाहु, जीव दया जीवहु तय राहु ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३८।।

पालहु आठ मूल गुन सारु, सात बिसन तजि तिरि संसारु ।
वर अनोव्रत जिन करहु, अरु ग्यारह प्रतिमा जिय धरौ ।
त्रेपन क्रिया करि भव तिरौ, गुन अस्थान चौदह चढौ ।
ए श्रावक व्रत कीजहि सारु, जिहि तैं कुंवरि तिरौ संसारु ।

पंच मंगल जु पाइये, यहु तजि कुंवरि निवारी मोहु ।
दीक्षा धरऊ मोहि व्रत देउ, नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।३९।।

जै संजमु व्रत ध्यानु धराहि, जो परजानि ते हारि कराइ ।
धम्य गुनु गहि निर्मलौ, इहिं विधि कर्म दसन सौ करै ।
राजल नेमी चलत नित धरै । नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४०।।

नेमि कुंवर राजमती नारि, दुहु संजमु लियो चढि गिरनेरि ।
तीनि भुवन जसु मडियौ, अरु तिन उपजो केवल ग्यानु ।
सुरनि सहित सुरपति अकुल्यानु, करन महोछौ आयौ इन्द्र ।
पूजा नित सेवा कराइ, पंच सबद तल रसी बजाइ ।
कलस अठोतर धरियौ आई, करि आरतौ धर भुज वंदियौ ।
समोसरनु स्वामी कौ कियौ, सुर नर केतिक आईयौ ।
गन गंधर्व बीधाधर जछि, जादौ सयलनि राइ संघि ।
नेमि कुंवर वदिहौ ।।४१।।

वनी इन्द्र तवही तिनि कियौ, सुनतई नु जग मन भयौ ।
शीव निदा नदि ते भाऐ, जै जैस वदु तिहु लोकहु भए ।
जै जै सवउ तिहु लोकहु भए, पंचम गति सीद्धंत सुभयौ ।
नेमि कुंवर जिन वदिहौं ।।४२।।

प्रशस्ति—

श्रावगु सिरीमलु धरु जसवंत, निहचै जिय धर्म धरंत ।
धरु चलन भवि वदतौ, पुत्र एकु ताके घर भयौ ।
जनमत नाउ चतुरु तिनि लियौ, जैन धर्म दिढु जीयहु धरौ ।
नेमि चरितु ताके मन रहै, सुनि पुरानु उरगानौ कहै ।
नेमि कुंवर जिन वंदिहौं ।।४३।।

मधि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उतिम ठानु ।
एक सोवन की लंका जिसि, तौवरु राउ सबल वर वीर ।
भुवबल आप जु साहस धीरु, मान सिंघु जग जानियै ।
ताके राजु सुखी सब लोगु, राज समान करहिं सब भोगु ।
जैन धर्म बहु विधि चलै, श्रावग दिन जु करै षट् कर्म ।
निहचै चितु लावैहि जिन धर्म, नेमि कुंवर जिन वंदिहौ ।।४४ ।।

संवतु पनरहसै औ मनै, पुन बतुहत्तरि ता ऊपरि भनै ।
भादौ वदि तिथि पंचमी वारु, सोम नखितु रेवती भारु ।
लगुन भली सुभ उपजी मती, बन्ह जन्म बलु पायुयौ ।
चतुर मनै भली सबलवि दासु, गुनिय सुनत जिय करहि न हासु ।
लघि उपसमै बुधि हीनु, मै स्वामी को कियौ बखानु ।
पढत सुनत जो उपजै ग्यानु, मन निहचल करि जिय धरऊ ।
राजमती जिन संजमु लियौ, नेमि कुंवर नेमि सफल कीनयौ ।
नेमि कुंवर नेमि जिन बंदिहौं ।।४५।।

।। इति नेमिसुर को उरगानो समाप्त ।।

संवत् १८२'''''वर्षे सब माह वदी १४ न सेरो गुरु । लीखीतं श्री देवेन्द्रकीर्ति आचरज सीसज के पंह ।

□ □ □

२. गीत (गारि)

[१]

ना जानो हो को को चेरै ढीलरीया कत आई ।।
मन चेतहु हो अमुका सबई सुणहु विचारु ।। मन ।।
चहु गति भवकत भमहु, संसारु, वरु परविणु सबु प्रयो है जारु ।
जगतारनु जिन नामु अधारु, जीवदया विनु धरम्मु न सारु ।। मन ।।
जिनवर पूजा रचहु करि भाउ, आठ दव्व लैई पूजा साहु ।। मन ।।
पर परम गुरु जाय जपाहु, समिकतु निहचलु चितह धराहु ।। मन ।।
भवति जिलबु पंचम गति जाहु, संसारहु श्रावक कुलि सारु ।। मन।।
भनई चतु श्रावगु श्रीमारु, मन चेतहु हो अमुका सबई सुणहु विचार ।।

[२]

गाडी के मझधार की पइया घर कहियै ।। इहि आयति ।।
मनधर ओतम स्वामी, सुमिरि जिणु संकहुयै ।
भव संसारु अपारु, भविक मन कररहियै ।

चौगै गवगु निवारि, मुकति सिरी सी जैमी ।
तुम्ह लईय भविक जन लेहु, कहा भव की जैमी ।
श्रावग कुलि अवतारु, वहुरि णर लीजैगै ।
धर्म्म दया जग सारु, सुनिहु वैको जैगे ।
दस लखणि जिन धम्मु, दिनहु किन कीजैगे ।
सातो विसन नीवारि, कर्म्म क्यो की जैगैं ।
तिजि मिथ्यातु अपारु, सुमति जी धरि जैमी ।
क्रोधु मान मदु लोभु न मया की जैमी ।
परु परिहरि भव दूरि कवन सुखु पावहिगें ।
परमात्मा मन ध्यानु परिवि चितु लावहिगौ ।
जा ते तिरिहु तुरंत संसारु मोख पद पावहिगै ।
श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यों गावहिगैं ।।

[३]

भाइ तिवा वावारी कै जईयौ ।।
वावा वारी क्यो जइयो, भवियण वंदहु करि जोरि ।
जिनवर चलन जुहारी, चैं गै गमनु निवारि ।
भव ससारहु तारैं, संभलि जीव अजाणा ।
माया मोहु भुलाना, बहु मिथ्यातु भरीई ।
श्रावग कुलि कत आयो, ग्रहलै जन्मु गवायो ।
ऊतिम कुलि कत अवतरीया, सात विसन मद भरिया ।
मोहु महा मद राच्यो, मूलगुना नरु जाणै ।
ईन्द्री पाचो सुखु मानो, भाई तिवा वावारी कै जइयौ ।।
भवीयहु लाख चौरासी, बध्यो मोहु की पखि ।
जिणवर चलन जुहारी, आवागमनु निवारी ।
यहु त्रीय लोकु भमाई, सबै देय जुहारे ।
को भव पार उतारौ, जीव दया नरु पारै ।
सिवपुरि गमनु निवारै, भाई तिवा वावारी के जईयौ ।
भोजनु राति कराई, वहु ससारु भमाही ।
चौविधि दानु न दीणौं, सुधो भाउ न कीणे ।
मिथ्या मोहु भुलाणा, जिनवर धम्मु न जाण्यो ।
लहियो श्रावग कुलि जन्मु, करि दिन जिणवर धम्मु ।
ज्यो जीय लहै सुख ठाऊ, तो धरि निहचलु भाऊ ।

आत्मा ध्यानु करीजै, सुहि पंचम गति लीजै ।
आवण सुणहु विचारु, भणई चतुरु भीमाउ ॥

क्रोध गीत [४]

क्रोध—

क्रोध न कीजै जीवरा, कछु उपसमु हो ।
उपसमुहि पराकिए घरहि, क्रोध अगिनि जब पर जोरै ।
तब अप्पो हो अप्पो तापई परतवै ।
परतवै अप्पा गुननि जारैई, क्रोध हीयरा जब घरै ।
सुमति करनग्र सीलरई, ईही सील संजमु सबु अविरया ।
अब सुरिस मन सबरैई, इम जानि जिवडा गहहि उपसमु ।
क्रोधु जिणमत कोई करै, क्रोध न कीजै जीवरा ॥१॥

(२)

मान—

मानु न कीजै ओईवरा ।
तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुखु सहै ।
अप्पु सराहै हो भलो, पुणि परु की हो परु की णित करई ।
परु करेइ निद्रा नित प्रानी, इसोइ मन गरवै खरौ ।
हउ रूप चतुरु सुजानु संदरु ईसोप भनै मद भरै ।
अहमेव करि करि कर्म्म बंधौ, लाख चौरासी महि फिरै ।
इम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु बहु दुलह करौ ॥२॥

(३)

माया—

माया परिहरि जीवडा, जीऊ सुर्गहि हो सुहि पावइ सुख घनौ ।
माया कपटै जे चलहि ते पावहि हो पावहि दुख दालिदु घनौ ।
दुख तणोऊ दालिदु अग्गिऊ जीवरा, कर्म्म फेरै ऊडो लई ।
घर घरहु भीतरि आनु प्रानी बयन भैरै बोलए ।
परपंचु करि करि तवई पर कहु कपटु सबु माया तनौ ।
इम आनि जीवडा तिजहि माया, जीऊ सुपावई सुख घनौ ॥३॥

(४)

लोभ—

लोभु न कीजई जीवरा, तिसु लोभहि हो लोभहि लाग्यौ पापु घनौ ।
तिसु पापहि हो पापहि जीयडा दुखु सहेई ।
दुखु सहइ जीउयरा लोभ काहून लोभ कहुडीउ तरकरई ।
ईहु लोभ कारन जीऊ पतिगा, देखत ईदियडा परई ।
संकलप विकलप भर्‌योऊ जियडा, लोभु इछइ चित धरई ।
इम भनई वै मनि निसुनि भवियन, लोभु खिन मत कोई करै ।।४।।

।। इति क्रोध गीत समाप्त ।।

ये सभी चारो पद शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा मन्दिर तेरहपंथियान् जयपुर के गुटके मे सग्रहीत हैं ।

□ □ □

४

गारवदास

गारवदास विक्रमीय १६ वीं शताब्दि के चतुर्थ पाद के कवि थे। उनके सम्बन्ध में सर्वप्रथम मिश्रबन्धु विनोद में एक उल्लेख मिलता है जिसमें एक पंक्ति में कवि का नाम, ग्रन्थ नाम, रचना काल एवं रचना स्थान का नाम दिया हुआ है। लेकिन उसमें गारवदास के स्थान पर गोरवदास तथा रचना संवत् १५८१ के स्थान पर संवत् १५८० दिया हुआ है। मिश्रबन्धु के परिचय के पश्चात् भी हिन्दी विद्वानों के लिए गारवदास अज्ञात एवं उपेक्षित से रहे। सन् १९४८-४९ में जब मैंने राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ-सूची बनाने का कार्य प्रारम्भ किया तो जयपुर के ही दि० जैन बड़ा मन्दिर तेरह पंथियान् में इसकी एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई जिसका उल्लेख ग्रन्थ-सूची के चतुर्थ भाग में पृष्ठ संख्या १९१ के २३१३ संख्या पर किया गया। लेकिन उस समय भी कवि के महत्व को प्रकाश मे नही लाया जा सका और इसके पश्चात् भी कवि एव उनका काव्य विद्वानों से ओझल ही बने रहे।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाश्य दूसरे पुष्प के संवत् १५६० से १६०० तक होने वाले कवियों के सम्बन्ध में जब निर्णय लेने से पूर्व गारवदास एवं उनकी रचना यशोधर चरित को देखा गया तो हिन्दी की महत्वपूर्ण कृति होने के कारण कविवर बूचराज के साथ गारवदास को भी सम्मिलित किया गया।

गारवदास हिन्दी कवि थे लेकिन वे प्राकृत एवं संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक उनकी एक ही काव्य कृति यशोधर चरित्र उपलब्ध हो सकी है लेकिन वही एक कृति उनकी विद्वता की परख के लिए पर्याप्त है। वैसे कवि की और भी रचनायें हो सकती हैं लेकिन जब तक उत्तर प्रदेश के प्रमुख भण्डारों की खोज पूर्ण न हो जावे तब तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

कवि परिचय

कविवर गारवदास उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उनका ग्राम था फफोतूपुर

(फफोंदु) जिसमें श्रावकों की अच्छी बस्ती थी। वे प्रति दिन अष्ट द्रव्य से जिन पूजा करते थे। उनके पिता का नाम राम था। कवि पर सरस्वती की पूर्ण कृपा थी। इसलिए उनका वाक्य ही काव्य बन जाता था।[1] पुराणों को सुनने में कवि को विशेष रुचि थी। एक बार कवि को नगर्कलई के निवासी साहू थेघु के पास जाने का काम पड़ा। जब थेघु श्रावक ने गारवदास के वचनामृत का पान किया तो वह प्रसन्न हो गये और हाथ जोड़कर कहने लगे कि यदि यशोधर कथा को काव्य बद्ध कर सको तो उसका जीवन सफल माना जावेगा। थेघु श्रीमन्त ने यह भी कहा कि जिस प्रकार कवि ने इस कथा को अपने गुरु से सुनी है उससे भी अधिक सुन्दर रूप से उसको वह चाहता है। कथा कवित्त बंध चौपई छन्द में होनी चाहिए। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य रचने की प्रेरणा कवि को फफोंदु निवासी थेघु से प्राप्त हुई थी।[2]

कवि ने यशोधर चरित्र की रचना संवत् १५८१ भादवा शुक्ला १२ बृहस्पतिवार को समाप्त की थी।[3] रचना समाप्ति के समय कवि सम्भवतः अपने आश्रयदाता के पास ही थे।

आश्रयदाता

उत्तर प्रदेश में गंगा और यमुना के बीच में कलई नाम की नगरी थी। उसको देवतागण भी सुख और शान्ति की नगरी मानते थे। वहाँ ३६ जातियाँ थी

---

१. राम सुतनु कवि गारवदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु।
बसत फफोतपुर सुभ ठोर, श्रावग बहुत गुणी जहि और ॥५३२॥
बसुविह पूज जिनेस्वर एहातु, लै प्रभात दिन सुनहि पुरानु ॥५३३॥

२. थेघु सनै कवि गारवदासु, निसुनि बचनु चित भयो हुलासु।
द्वै कर जोरि भणै गुन गेहु, सफल जनम मेरो करि लेहु ॥१८॥
ललित कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि।
जो बहु आदिकविसुर भए, अरथ कठोर चरित रचनए ॥१९॥

३. संवत् पन्द्रह सै इकयासी, भादौ सुकिल अबरण द्वादसि ॥५३३॥
सुर गुरुवार करणु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली।
जसहर कथा कही सब भासि, सिरवलो भाव परम गुर पासि।

वो नगरी सम्पन्न थी।[1] अभयचन्द्र[2] वहाँ का शासक था जो अतीव सुन्दर एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान था। प्रजा में सुख एवं शान्ति व्याप्त थी तथा किसी को कोई भी दुःख नहीं था। उस नगरी में श्रावकों की घनी बस्ती थी। उसी में पद्मावती पुरवाल जाति थी जो जैन धर्मानुयायी थी। उसी में साहु काम्हर थे और उनके सुपुत्र थे भारग साहु। वे यशस्वी श्रावक थे। उन्होंने चार गांव बसाये थे जिनके नाम थे जसरानी, गौछ, खेतपुर और सोहारु।[3] इनके बसाने से उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी। सुलतान भी उसके कार्य से प्रसन्न था। उसकी धर्म पत्नि का नाम था देवलदे।[4] उसके उदर से तीन सन्तान हुई जिनके नाम थे मेघु, जनकु एवं थेघु साहु। थेघु साहु बहुत ही स्वाध्यायी श्रावक थे। एक बार थेघु साहु ने संघ सहित पार्श्वनाथ की यात्रा भी की थी और वापिस आने पर उसने नगर में सबको भोजन कराया। कुछ समय पश्चात् उसको पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई। थेघु सेठ दानशील भी थे और लोगों को भक्तिपूर्वक दान देते थे।[5] वे रात्रि को जागरण करवाते थे जिससे श्रावकों में जिनेन्द्र भक्ति का प्रचार हो।

---

१ गंग जमुन विच अंतर वेलि, सुख समूह सुरमानहि केलि।
नयरी कैलई जनु सुरपुरी, निवसै घनी छत्तीसौ कुरी ॥५२२॥

२. अभयचन्दु जह राउ निसंकु, जनु कुलु षोडस कला मयंकु।
परजा दुखी न दीसै कोइ, घर घर बधि बधाऊ होइ ॥५२३॥

३ श्रावग बहुत बसहि जहि गाम, जनु आसिको दीनो सियराम।
पोमावे पुरवर सुखसील, धुर समान धर मानहि कील ॥५२४॥
सा कम्हर सुतु भारग साहु, जिनि धनुष रंचि लियो जसलाहु।
जस रानी परगु सुभ ठोर, गोछ महापुर दूजो और ॥५२५॥
मनगद खेतपुर अरु सोहारु, चारघो गांव बसावन हारु।
जासु नामु पढ़ुया सुरिताम, राज काज जान्यो सुरिताण ॥५२६॥

४. तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससिहर रोहिनि रतिकाम।
सोसु महालहि लीनो पोषि, नंदन तीनि अवतरे कोषि ॥५२७॥
मेघु मेघु धरमूजस रासि, जनुकु सु सूर सति सुक प्रकासि।
जेठो थेघ साहु सुपहागु, जासु नाम मै ठयो पुराणु ॥५२८॥

५. पुत्र हेतु जानै उपगाउ, जिनवर भवन करावण हारु।
बहुत पोठि लै चाल्यो साथ, करी जात सिरी पारसनाथ ॥५२९॥
करचि बहुतु धनु रावन बान, घर आयो दियो भोजन दान।
ताको पुत्र रतनु अवतरयौ, रयनायक गुण जीती भरयो ॥५३०॥

यशोधर चरित की कथा को समस्त जैन समाज में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त है। यही कारण है कि इस कथा पर आधारित चरित्र, चरित, रास एवं चौपई आदि संज्ञक काव्य कितने ही जैन कवियों ने निबद्ध किये हैं तथा हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में ही नहीं किन्तु प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत में भी यशोधर के जीवन पर कितने ही काव्य मिलते हैं।

यशोधर के जीवन से सम्बन्धित स्वतन्त्र रचना का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य उद्योतन सूरि (७७६ ई०) ने अपनी कुवलय माला कहा में प्रभंजन कवि के किसी यशोधर चरित का उल्लेख किया है। लेकिन उक्त कृति अभी तक अनुपलब्ध है। इसके पश्चात् महाकवि हरिषेण ने अपने वृहत्कथाकोष (६३२ ई०) मे यशोधर के जीवन से सम्बन्धित एक स्वतन्त्र आख्यान लिखा है इसलिए अभी तक उपलब्ध रचनाओं में हम इसे यशोधर के जीवन पर आधारित प्रथम आख्यान मान सकते हैं। लेकिन १० वीं ११ वी शताब्दि के साथ ही यशोधर के आख्यान ने जैन समाज मे बहुत ही लोकप्रियता प्राप्त की और एक के पश्चात् दूसरे कवि ने इस पर अपनी लेखनी चलाकर उसे और भी लोकप्रिय बनाने मे पूर्ण योग दिया।

राजस्थान के जैन भण्डारों मे यशोधर के जीवन पर आधारित निबद्ध कितने ही काव्य उपलब्ध होते हैं। इन काव्यों के नाम निम्न प्रकार हैं—

अपभ्रंश

१.	जसहरचरिउ	महाकवि पुष्पदन्त	१० वीं शताब्दि
२.	,,	,, रइघू	१५ वी शताब्दि

संस्कृत

३	यशस्तिलक चम्पू	आ० सोमदेव सूरि	सवत् १०१६
४.	यशोधर चरित्र	वादिराज	११ वीं शताब्दि
५.	यशोधर चरित्र	भट्टारक सकलकीर्ति	१५ वीं शताब्दि
६.	,,	आचार्य सोमकीर्ति	सवत् १५३६
७.	यशोधर कथा	भट्टारक विजयकीर्ति	१५ वी शताब्दि
८.	यशोधर चरित्र	वासवसेन	—
६.	,,	पद्मनाभ कायस्थ	—
१०.	,,	पद्मराज	—
११.	,,	पूर्णदेव	—
१२.	,,	ज्ञानकीर्ति	सं० १६५६

१३.	यशोधर चरित्र	श्रुतसागर	१५ वीं शताब्दि
१४.	,,	क्षमाकल्याण	सं० १८३९

हिन्दी राजस्थानी

१५.	यशोधर रास	ब्रह्म जिनदास	१६वीं श० (प्रथम चरण)
१६.	,,	भट्टारक सोमकीर्ति	,, (चतुर्थ चरण)
१७.	यशोधर चरित	देवेन्द्र	सं० १६८३
१८.	,,	परिहानन्द	सं० १६७०
१९.	यशोधर रास	जिनहर्ष	सं० १७४७
२०.	यशोधर चौपई	खुशालचन्द	सं० १७८१
२१.	,,	अजयराज	सं० १७९२
२२.	यशोधर रास	लोहट	१८ वीं शताब्दि
२३.	यशोधर चरित्र	मनसुखसागर	सं० १८७८
२४.	यशोधर रास	सोमदत्त सूरि	—
२५.	,,	पन्नालाल	सं० १९३२

इस प्रकार यशोधर के जीवन से सम्बन्धित राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में २५ कृतियां प्राप्त हो चुकी हैं और अभी और भी कृतियां मिलने की सम्भावना है।

उक्त सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गारवदास द्वारा यशोधर की कथा को काव्य रूप देने के पूर्व महाकवि पुष्पदन्त एवं रइधू ने अपभ्रंश में, आचार्य सोमदेव सूरि, वादिराज, भट्टारक सकलकीर्ति, भट्टारक सोमकीर्ति एवं विजयकीर्ति ने संस्कृत में तथा ब्रह्म जिनदास, भट्टारक सोमकीर्ति ने राजस्थानी भाषा में यशोधर के जीवन पर काव्य कृतियां निबद्ध की हैं। यद्यपि कवि गारवदास ने वादिराज के यशोधर चरित्र को अपने काव्य का मुख्य आधार बनाया था लेकिन उसने यशोधर से सम्बन्धित रचनाओं को भी अवश्य देखा होगा लेकिन स्वयं कवि ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है।

गारवदास का यशोधर चरित ५३७ छन्दों का काव्य है। वह न सर्गों में विभक्त है और न सन्धियों में। प्रारम्भ से अन्त तक कथा बिना किसी विराम के धारा प्रवाह चलती है और समाप्त होने पर ही विराम लेती है। इससे पता चलता है कि अधिकांश जैन कवियों ने काव्य रचना की जो शैली अपनायी थी उसका गारवदास ने भी अनुसरण किया। प्रस्तुत कृति यद्यपि हिन्दी भाषा की कृति है लेकिन कवि ने उसमें बीच-बीच में संस्कृत के श्लोकों एवं प्राकृत गाथाओं का प्रयोग

करके न केवल अपनी भाषा विद्वता का परिचय दिया है लेकिन काव्य अध्ययन में थकने वाले पाठकों के लिए विराम तथा संस्कृत प्राकृत भाषा भाषी पाठकों के लिए नयी सामग्री उपस्थित की है। १६ वीं शताब्दि में यह भी एक काव्य रचना की पद्धति थी। भट्टारक ज्ञानभूषण (संवत् १५६०) ने भी 'आदीश्वर फाग' में इसी शैली की रचना की है जो गारवदास के ही समकालीन कवि थे।

यशोधर चरित की कथा का सार निम्न प्रकार है—

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र मे राजग्रही नगरी थी। जो सुन्दरता तथा वन उपवन एवं महलो की दृष्टि से प्रसिद्ध थी। वहां के राजा का नाम मारिदत्त था। राजा मारिदत्त की युवावस्था थी इसलिए उसकी सुन्दरता देखती ही बनती थी। कला एवं संगीत का वह प्रेमी था। एक दिन एक भस्म लगाया हुए योगी उसके नगर में आया। योगी के बड़ी-बड़ी जटाये थी तथा वह भग के नशे में धुत्त हो रहा था। गौरवर्ण था। उसका नाम था भैरवानन्द। नगर में जब भैरवानन्द की तान्त्रिक एवं मान्त्रिक की दृष्टि से चारों ओर प्रशसा होने लगी तो राजा ने भी उसे अपने महल मे मिलने के लिए बुला लिया। भैरवानन्द के महल मे आने पर राजा ने उसका विनय पूर्वक सम्मान किया। राजा की भक्ति से वह बहुत प्रसन्न हुआ और कोई भी इष्ट वस्तु मागने के लिए कहा। राजा ने अमर होने, एक छत्र राज्य चलाने तथा विमान मे चलने की इच्छा प्रकट की। भैरवानन्द ने राजा की प्रार्थना को पूर्ण करने का आश्वासन दिया लेकिन उसने चडमारि देवी के मन्दिर में बलिदान के लिए सभी प्रकार के जीवों को लाने तथा एक मानव युगल का भी बलिदान करने के लिए कहा। राजा तो विद्या के लिए अन्धा हो चुका था इसलिए उसने तत्काल अपने अनुचरों को आदेश पालने के लिए कहा। उसके सेवक चारों ओर दौड़ गये तथा सभी प्रकार के पशु पक्षियों को लाकर उपस्थित कर दिया। लेकिन मानव युगल खोजने पर भी नहीं मिला।

कुछ ही समय पश्चात् वन में अनेक मुनियों के साथ सुदत्त मुनि का आगमन हुआ। वह वन खिल उठा। चारों ओर पुष्पो पर भ्रमर गुञ्जार करने लगे एवं कोयल कुहु कुहु करने लगी। मुनि ने उसी वन में ठहरने का विचार कर लिया। लेकिन वह वन गंधर्वों का भी निवास स्थान था जहां वे केलि किया करते थे इसलिए सुदत्ताचार्य को वह वन समाधि के उपयुक्त नहीं लगा। वह अपने संघ सहित श्मशान भूमि पर चले गये। आचार्य ने एक युवा मुनि एवं साध्वी को नगर में आहार के लिए जाने को कहा। वे दोनों भाई बहिन थे। दोनों अत्यधिक कमनीय शरीर के थे तथा बत्तीस लक्षणो वाले थे। इतने में ही राजा के सेवकों की दृष्टि

उन दोनों पर पड़ी। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा और वे दोनों को चण्डमारि देवी के मन्दिर में ले गये।

मन्दिर का दृश्य विकराल था। चारों ओर पशु पक्षियों की मुंडियां, अस्थियां एवं उनका रक्त बिखरा हुआ था। भयंकर दुर्गन्ध से वातावरण अत्यधिक भयानक था। भाई ने बहिन को शरीर से मोह छोड़ने तथा आत्म स्थित होने के लिए समझाया। साथ ही में साधु संस्था के महत्व को भी समझाया। जब राजा ने अत्यधिक सुन्दर उस मानव युगल को देखा तो वह भी उनके रूप लावण्य को देखकर आश्चर्य करने लगा। उसने उन दोनों से दीक्षा लेने का कारण जानना चाहा तथा बाल्यावस्था में ही तपस्वी बनने का कारण पूछा। राजा का वचन सुनकर अभयकुमार ने हँसकर निम्न प्रकार अपनी जीवन गाथा कही—

अवन्ती देश की उज्जयिनी राजधानी थी। वह नगर स्वर्ग के समान सुन्दर था। चारों ओर फलों से लदे वृक्ष तथा मन्दिर एवं महलों से युक्त थी। वहां के नागरिक भी देवता के समान थे। नगर में सभी जातियां रहती थी। वहां के राजा का नाम यशोधु था तथा चन्द्रमती उसकी रानी थी। वह शरीर से कोमल तथा गजगामिनि थी। न्यायपूर्वक शासन करते हुए जब उन्हें बहुत दिन बीत गए तो उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम यशोधर रखा गया। बालक बड़ा सुन्दर एवं होनहार लगता था। आठ वर्ष का होने पर उसे पाटशाला में पढने भेजा गया। विद्यालय जाने के उपलक्ष मे लड्डू बांटे गये तथा गणेश एवं सरस्वती की पूजा की गयी। यशोधर ने थोड़े ही दिनों में तर्कशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थ तथा अश्व, हाथी आदि वाहनों की सवारी सीख ली। पढ़ लिखकर वह पुनः माता-पिता के पास गया। इससे दोनों बड़े आनन्दित हुए। यशोधर का विवाह कर दिया गया। एक दिन राजा यशोधु सभा मे विराजमान थे कि उन्होंने अपने सिर में एक श्वेत केश देख लिया इससे उन्हें वैराग्य हो गया और अपना राज्य कार्य यशोधर को सौंपकर स्वयं तपस्वी बनने के लिए वन में चल दिये।

यशोधर बड़ी कुशलता पूर्वक राज्य कार्य करने लगा। उसकी महारानी का नाम अमृता था जो देवी के समान थी। कुछ काल उपरान्त एक कुमार उत्पन्न हुआ जिसका नाम यशोमती रखा गया। यशोधर ने अपने राजकुमार को शासन का भार सौंप स्वयं अपनी रानी अमृता के साथ आनन्द से रहने लगा। यशोधर को अमृता के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। अमृता के महल के नीचे ही एक कुबड़ा रहता था जो दुर्गन्धयुक्त शरीर वाला, अत्यधिक विरूप था लेकिन वह संगीत का बहुत ही जानकार था। रानी ने जब उसका संगीत सुना तो वह उस पर

आसक्त हो गयी और उसके बिना अपना जीवन व्यर्थ समझने लगी। अर्ध रात्रि को जब राजा यशोधर उसके पास सो रहा था तो वह उसको सोता हुआ छोड़कर अपनी एक सेविका के साथ उस कुबड़े के पास चल दी। कवि ने रानी अमृता एवं दासी की बहुत ही सुन्दर वार्ता प्रस्तुत की है साथ में संगीत विद्या का भी राग रागनियों के साथ अच्छा वर्णन किया है।

आती हुई रानी के नुपुर की आवाज सुनकर राजा को चेत हो गया। जब उसने रानी को अर्ध रात्रि में कहीं जाते हुए देखा तो एक बार तो उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन उसे पलंग पर नहीं पाकर वह भी हाथ में तलवार लेकर रानी के पीछे-पीछे दबे पांव से चल दिया। रानी ने कुबड़े को जाकर जगाया और उसके चरणों को छुआ। कुबडे ने उसे गारी निकाली फिर भी रानी एवं उसकी दासी हँसती रही और उसकी मनुहार करती रही। रानी ने उस कुबड़े के गले लग कर कहा कि वह उसके बिना नहीं रह सकती। लेकिन वे दोनों ऐसे लगे जैसे हंस के साथ कौवा। रानी ने कूबड़े के पाव दबाये तथा सभी तरह से उसकी सेवा की। यह देखकर राजा से नही रहा गया और उसने तलवार निकाल ली। लेकिन उसने विचार किया कि स्त्रियों पर तलवार चलाना कायरता कहलाती है तथा कुबड़ा जो दिन भर झूंठन खाकर पेट भरता रहता है उसे मारने से तो उल्टा उसे अपयश ही हाथ लगेगा। यह सोचकर राजा ने तलवार वापिस रख ली।

वहां से राजा यशोधर अपने हृदय को बज्र के समान करके पालकी में बैठ कर चित्रशाला चला गया। रानी तो काम विह्वला थी इसलिये कुबड़े के साथ काम क्रीड़ा करके वापिस महलों में आ गयी। अब वह राजा को जहरीली नागिन के समान लगने लगी। जिसके साथ क्रीडा करने में राजा आनन्द की अनुभूति करता था वह अब विषवेलि लगने लगी। राजा को रानी की लीला देखकर जगत् से उदासीनता हो गयी। प्रातःकाल हुआ। उसकी माता चन्द्रमती भगवान की पूजा करके हाथ मे आसिका लेकर राजा के पास आयी। राजा द्वारा माता के चरण छूने पर उसने आशीर्वाद दिया। राजा ने अपनी माता से कहा कि उसने आज रात्रि को जैसा सपना देखा है उससे लगता है उसके राज्य का शीघ्र विनाश होने वाला है। इसलिए उसके वैराग्य धारण करने का भाव है। लेकिन माता ने कहा कि तपस्वी बनना कायरता है। जो राजा स्वप्न से ही डरता है वह युद्ध भूमि में कैसे जा सकता है। इसलिए राजकाज करते हुए ही देवी देवताओं को बलि चढ़ा कर उनको प्रसन्न कर लेना चाहिए जिससे सारे विघ्न दूर हो सकें। नगर के बाहर कंचाइण देवी है उसको बलि चढ़ाने से सब विघ्न दूर हो सकते हैं। लेकिन

राजा ने ऐसे किसी भी कार्य को करने का प्रतिवाद किया और हिंसा से कभी शान्ति नहीं मिल सकती, ऐसा अपना मन्तव्य प्रकट किया।

जीव घात जो उपजै धम्मु, तौ को अवरु पाप को कम्मु।
जे ते लख चौरासी खाणि, ते सब कुटमु माइ तू जाणि॥

रानी चन्द्रमती के विशेष आग्रह पर राजा यशोधर देवी के मन्दिर मे गया और यह भाव रखते हुए कि वह मानों जीवित कुकुट है, आटे के कुकुट की रचना करवाकर उसी का देवी के आगे बलिदान कर दिया। इससे राजा को जीव हिंसा का दोष तो लग ही गया। देवी के मन्दिर में से राजा अपने महल में आया और अपना सम्पूर्ण राजपाट अपने लड़के को देकर स्वयं वन में तपस्या करने के लिए जाने का निश्चय किया। राजा मारदत्त ने जब यह कथा सुनी तो उसने भी कर्मगति की विचित्रता पर आश्चर्य प्रकट किया।

जब रानी अमृता ने यशोधर के तप लेने की बात सुनी तो वह भविष्य की आशंका के भय से डरने लगी। इसलिए वह भी राजा के पास गयी और उसी के साथ दीक्षा लेने की बात कही। राजा ने पहले तो उसके वचनों पर विश्वास ही नहीं किया लेकिन रानी राजा को मनाने में सफल हो गयी और उसने साथ-साथ तप लेने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

बालम बिनु किम भामिनी, किम भामिनी बिनु गेहु।
दान विहीनौ जेम घरु, सील विहीनो देहु॥२८८॥

राजा की स्वीकृति पाकर रानी वापिस अपने महल में चली गई। वहां वह अपने भोजनशाला में गयी। उसने बहुत से विषयुक्त लड्डू बनाये और उनमें से कुछ लड्डू लेकर वह वन में गयी जहां राजा यशोधर एवं चन्द्रमती बैठे हुए थे। अमृता ने दोनों को विषयुक्त लड्डू खिला दिये। लड्डू खाने के बाद पहिले चन्द्रमती मर गयी और थोड़ी देर बाद राजा भी वैद्य-वैद्य करता हुआ तड़फने लगा। रानी अमृता को इससे बहुत डर लगा और उसने केश मुंडाकर साध्वी का भेष धारण कर लिया और अपने पति को घसीट कर मार दिया। फिर वह जोर-जोर से रोने लगी। रानी का रोना सुनकर उसका लड़का वहां आया और पिता को मरा हुआ देखकर मुंह फाड़कर चिल्लाने लगा, साथ ही में दूसरे लोग भी रोने लगे तथा रानी को सान्त्वना देने लगे। उन्होंने संसार का विचित्र स्वरूप बताया और सन्तोष धारण करने की प्रार्थना की। सब लोग राजा यशोधर एवं चन्द्रमती को श्मशान ले गये और उनका दाह संस्कार किया। यहीं से यशोधर एवं रानी चन्द्रमती के भवों का वर्णन प्रारम्भ होता है।

राजा यशोधर मर कर उज्जैनी में ही मोर हुआ और चन्द्रमती श्वान हुई। श्वान का अन्य जीवों के साथ स्नेह हो गया और वह मन्दिर के बाहर रहने लगा। एक दिन एक शिकारी बहुत से पक्षियों को पकड़ कर वहां लाया। उनमें एक मोर बहुत ही सुन्दर था। शिकारी ने उसको मन्दिर में छोड़ दिया। वहां वह बहुत ही कौतुक दिखाने लगा। वह कभी कभी वहां नाचता रहता था। एक दिन घनघोर पावस का दिन था। मोर मन्दिर के शिखर पर चढ़ गया उसको वहां पूर्व भव का स्मरण हो आया। वह सब लोगों को जान गया। उसने अपनी चित्रशालाएँ देखी। अपनी नीली गर्दन को देखकर दुःख हुआ तो अपने आप अपनी चोंच से घाव करके मर गया। चन्द्रमती मर कर कुत्ता हुई जिसको शिकारी ने महाराज को भेंट में दिया। वह कुत्ता जो माता का जीव था, उसने मोर की गर्दन पकड़ कर मार डाला। उस समय राजा जो चौपड़ खेल रहा था, उसे छुड़ाने के लिए दौड़ा लेकिन कुत्ते ने उसे नही छोड़ा। राजा ने कुत्ते को मार डाला। इस प्रकार दोनों ने साथ ही प्राण त्यागे। श्वान मर कर फिर मोर हो गया और वह कुत्ता मर कर कृष्ण सर्प हुआ। मयूर एवं सर्प मे स्वाभाविक बैर होता है इसलिए उसने देखते ही सर्प का काम तमाम कर दिया। इनके पश्चात् मोर मर कर बड़ी मछली हुआ तथा उस सर्प ने मगर की योनि प्राप्त की। उज्जैनी में एक दिन एक सुन्दरी स्नान के लिए आयी, जब वह स्नान में तल्लीन थी उस मगर ने उसे निगल लिया। तत्काल धीवर को बुलाया गया और उसने जाल डालकर उस मगर को पकड लिया तथा उसे लाठियों, घूसों एवं लातों से मार दिया। उसके बाद वह मर कर बकरी हो गयी। कुछ दिनो बाद मछली भी पकड़ मे आ गयी। मरने के बाद वह भी पुनः बकरा बन गयी।

एक दिन जब बकरा एवं बकरी स्नेहासिक्त थे तब उनके मालिक द्वारा वह बकरा लाठियों से मार दिया गया। लेकिन उसने पुनः बकरे के रूप में जन्म लिया। कुछ समय बाद बकरी एक टांग काट दी गयी और धीरे-धीरे वह मृत्यु को प्राप्त हुई। फिर वह मर कर भैंसा हो गयी। और उसके पश्चात् दोनों का जीव मृत्यु को प्राप्त कर मुर्गा मुर्गी के रूप में पैदा हुआ। एक दिन राजा को मुर्गा मुर्गी की लड़ाई देखने की इच्छा हुई लेकिन वह उनकी सुन्दरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें वन में छोड़ देने का आदेश दिया। वहीं पर जैन मुनि सुदत्त का आगमन हुआ। रानी ने उनसे धर्म कथा का श्रवण किया। सुदत्ताचार्य ने अहिंसा को जीवन में उतारने पर बल दिया। साथ ही में उसने यशोधर एवं चन्द्रमती की कथा कही जिन्होंने आटे का मुर्गा मारने से सात जन्मों तक अनेक कष्ट सहे। राजा यशोमति ने एक दिन दोनों मुर्गा मुर्गी को मार डाला। लेकिन उन दोनों का जीव ही रानी के गर्भ में कुमार एवं कुमारी के रूप में अवतरित हुए। राजकुमार का नाम अभयरुचि

एवं राजकुमारी का नाम अभयमति रखा गया। राजा यशोमति ने जब सुदत्त को वन में तपस्या करते हुए देखा तो वह क्रोधित होकर उन्हें मारने को तैयार हुआ। लेकिन गोवर्धन सेठ ने राजा से मुनियों को न मारने की प्रार्थना की तथा उनकी महिमा के सम्बन्ध में राजा को बतलाया।

अभयरुचि एवं अभयमति को अपने पूर्व भव की बात सुन वैराग्य हो गया। और उन दोनों ने सुदत्ताचार्य के पास जाकर मुनि दीक्षा धारण करने की प्रार्थना की लेकिन सुदत्ताचार्य ने दोनों की बाल अवस्था देखकर निम्न प्रकार से कहा—

> तुम दोऊ बालक सुकुमाल, कोमल जिसे पऊके नाल।
> पंच महाव्रत दुसह खरे, ते तुम पासि जाहि किम धरे ॥४६६॥

दोनों ने गुरु के वचन सुनकर अणुव्रत धारण कर लिये तथा कपड़े उतार क्षुल्लक क्षुल्लिका की दीक्षा ले ली। उन दोनों ने राजा मारिदत्त से कहा कि संयोग-वश हम तुम्हारी नगरी में आहार के लिए आ रहे थे कि तुम्हारे सेवकों ने हमें पकड़ लिया और यहां ले आए। राजा मारिदत्त यशोधर के पूर्व भवों की कथा को सुनकर भयभीत हो गया तथा दोनों के पांवों में पड़ गया। उधर सुदत्ताचार्य ने अपने ज्ञान से अभयकुमार की बात जानकर तत्काल देवी के मन्दिर में आ गये। राजा मारिदत्त आचार्य श्री को देखकर उनके पांवों में पड़ गया। उसने देवी के मन्दिर को पूर्णतः स्वच्छ करा दिया। उसने विनय पूर्वक अपने तथा दूसरों के पूर्व भवों के बारे में पूछा। राजा मारिदत्त ने जब अपने पूर्व भवों के बारे में जाना तो उसे वैराग्य हो गया। उसने पंच मुष्ठि केश लोंच करके मुनि दीक्षा ले ली। भैरवानन्द जोगी भी उनके पांवों में गिर गया, सब पाखण्ड भाव छोड़ दिये और मुनि दीक्षा देने के लिए निवेदन किया। सुदत्ताचार्य ने कहा कि उसकी आयु केवल २२ दिन है। जोगी ने यह जानकर कठोर तप साधना की और मरकर दूसरे स्वर्ग में जन्म लिया। अभयरुचि एवं अभयमति मर कर प्रथम स्वर्ग में गये। इसी तरह मारिदत्त एव सेठ भी तपस्या के बाद स्वर्ग में देव हुआ। आचार्य सुदत्त सम्मेद शिखर पर तपस्या करते हुए सातवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए।

काव्य की विशेषताएँ

इस प्रकार यशोधर चौपई की कथा पूर्णतः रोचक एवं धाराप्रवाह में निबद्ध है। चौपई हिन्दी साहित्य की एक अनुपम कृति है जिसके सभी वर्णन अत्यधिक सरस एवं सुन्दर हैं। कवि घटनाओं के वर्णन के साथ-साथ व्यक्ति विशेष एवं स्थान विशेष का जब चित्रण करता है तो उनको भी सुन्दर एवं रुचिकर शब्दों में प्रस्तुत करता है। एक ओर वह स्थान विशेष की सुन्दरता के वर्णन करने में सक्षम है तो

उसी के विकृत वर्णन में भी वह अपनी योग्यता प्रस्तुत करता है। जहां एक ओर वह प्रकृति वर्णन में पाठकों का मन मोहता है तो दूसरी ओर घटना विशेष का वर्णन करके पाठकों के हृदय को द्रवित कर बैठता है।

कथा के एक प्रमुख पात्र हैं भैरवानन्द जिनके कारण ही सारा कथा स्रोत बहता है। उसी भैरवानन्द का जब कवि वर्णन करने लगता है तो वह स्वयं भैरवानन्द बनकर लिखने लगता है। उसकी दीर्घ जटाएँ हैं। शरीर पर भस्म रमा रखी है तथा कानों मे मुद्रिका पहिन रखी है। भंग चढ़ा रखी है जिससे आंखें एवं मुख लाल प्रतीत होता है। रंग से वह गोरे हैं और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर लगते हैं।

> भस्म चढाई मुद्राकान, अनही बूझे कहै कहान।
> दीरघ जटा बढाए भंग, नयन घुलावैं चंदन रंग।
> गौर वरण मनो पून्यो चंदु, प्रगट्यो नाम भैरवानन्दु ॥३१॥

कवि श्मशान का वर्णन करने मे और भी चतुरता प्रकट करता है। मुनि अपने संघ के साथ श्मशान मे जाकर विराजते हैं। एक ओर श्मशान की भयानकता तो दूसरी ओर निर्ग्रन्थ मुनियों का वहीं ध्यानस्थ होना—कितना उत्तम संयोग है—श्मशान का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

> संग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान।
> मुंड रुंड दीसहि बहु परे, कृमि कीला लवि गंधि घृण भरे ॥६०॥
>
> जबुक साल गधि अरु काग, व्यंतर भूत खपरिहा लाग।
> डाइनि पिवहि रुधिरु भरि चुरू, सूकै तरु वरि वासै उरू ॥६१॥
>
> चिता बहुत पजलहि वो पास, धूमानलु भमि रह्यो अकास।
> नयननु देखत फटै हियो, वैवस भवनु जनकु विहि कियो ॥६२॥

इसी तरह कवि के देवी के वर्णन में वीभत्स रस के दर्शन होते हैं। उसके हाथ में त्रिसूल है तथा वह सिंह पर आरुढ़ है। गले मे मुंड माला पहिने हुए है तथा उसकी जीभ बाहर निकले हुए है। आंखें लाल हो रही हैं। ऐसा लगता है मानों अग्नि की ज्वाला उसके शरीर से ही निकल रही हो। उस देवी का पूरा शरीर ही रुधिर से सना हुआ था तथा पूरे शरीर में सर्प डोल रहे थे।

ऐसे भयानक स्थान पर भी जब साधु आते हैं तो उन्हें देखकर सभी नत-मस्तक हो जाते हैं। राजा मारिदत्त ने जब अभयरुचि और अभयमति को वहां देखा तो वह उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गया—

को हरिहर संकर परमेसु, के दीसे विद्याधर भेसु ।
अरु अरुणका एहु कुमारि, सुरि नरि किन्नरि को उनहारि ॥९८॥
यहु रंभा कि पुरंदरि सची, रोहिणि रूप कवन विहि रचि ।
सीता तारकि मंदोदरी, को दमयन्ती जोबन भरी ॥९९॥

प्रस्तुत काव्य में कितने ही ऐसे प्रसंग हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक दशा का भी पता चलता है । उस समय जब बालक आठ वर्ष का हो जाता था तो उसे पढ़ने के लिए चटशाला में भेज दिया करते थे । राजा यशोधर को भी उसी तरह पाठशाला भेजा गया था । गुरु के पास पढ़ने जाने पर भी गुड़ के लड्डू बना कर बांटा करते थे तथा सरस्वती की विनयपूर्वक पूजा की जाती थी—

पढन हेत सौप्यो चटसार, घिय गुरा लाडू किये कसार ।
पूजि विनायगु जिन सरस्वती जासु पसाइ होइ बहुमती ॥१३१॥
भाउ भक्ति गुरु तनी पयासि, पाटी लिखलीनी ता पासि ।
पढ्यो तरकु व्याकरण पुराणु, हय गय वाहन आवध ठान ॥१३२॥

राजा वृद्धावस्था आते ही अपना राज्य अपने पुत्र को देकर स्वयं आत्मा साधना में लीन हो जाते थे । महाराजा यशोधर के पिता ने भी जब अपना एक श्वेत केश देखा तो उन्हें वैराग्य हो गया और राज्य कार्य अपने पुत्र को सौंप कर स्वयं तपस्या करने वन में चले गये ।

अवर बहुत बैठे नरनाथ, पेष्यो मुहु दर्प्पनु लै हाथ ।
धवलो एकु कनेपुता केसु, मन वैराग्यो ताम नरेसु ॥१४०॥
राउ जसोधर थाप्यो राज, आपनु चल्यो परम तप काज ।
लीनो दीक्ष परम गुरु पास, तपु करि मुयो गयो सुर पास ॥१४४॥

पूरी कथा में कितनी बार उतार-चढ़ाव आते हैं । प्रारम्भ में भैरवानन्द के प्रवेश से नगर में हिंसा एवं बलि देने की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा देवी देवताओं को प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान मांगने की प्रवृत्ति की ओर हमारी कहानी आगे बढ़ती है । यह बलि पशु पक्षी तक ही सीमित नहीं रहती किन्तु अपने स्वार्थपूर्ति के लिए मानव युगल की भी बलि देने में तरस नहीं आता ।

लेकिन जब अभयरुचि एवं अभयमति के रूप में मानव युगल देवी के मन्दिर में प्रवेश करते हैं तो कथा दूसरी ओर घूमने लगती है । उसका कारण बनता है राजा की उनके पूर्व जीवन को जानने की उत्सुकता । अभयरुचि बड़े शान्त भाव से अपने पूर्व भवों की कहानी कहने लगते हैं । राजा यशोधर के जीवन तक

प्रस्तुत काव्य की कथा बड़े रोचक ढंग से आगे बढ़ती है। पाठक बड़े धैर्य से उसे सुनते हैं। लेकिन महारानी अमिय देवी एवं कोढ़ी का प्रेमालाप उन्हें उत्सुकता एवं आश्चर्य में डालने वाला सिद्ध होता है। नारी कहां तक गिर सकती है, धोखा दे सकती है और पति तक को विष दे सकती है, जैसी घटनाएँ एक के बाद एक घटती रहती हैं और पाठक आश्चर्यचकित होकर सुनता रहता है।

यशोधर एवं चन्द्रमती के आगे के भवों की कहानी, उनका परस्पर का वैर विरोध, संसार के स्वरूप के साथ कर्मों की विचित्रता को बतलाने वाला है। यशोधर एवं चन्द्रमती सात भवों तक एक दूसरे के प्राणों को लेने वाले बनते हैं। उनके सात भवों की कहानी को पाठक मानों श्वास रोककर सुनता है और जब उसे अभयरुचि एवं अभयमति के रूप में पाता है तो उसे कुछ आश्वस्त होने का अवसर मिलता है। राजा मारिदत्त कभी भय विह्वल होता है तो कभी भयाक्रान्त होकर सभा स्थल से ही भागने का प्रयास करता है क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि मानों वह उसी के जीवन की कहानी हो।

काव्य का अन्त सुखान्त है। सैकड़ों जीवों की बलि करने वाला स्वयं भैरवानन्द अपने पापो का प्रायश्चित करना चाहता है। और जब उसे अपनी आयु के २२ दिन ही शेष जान पड़ते हैं तो वह कठोर साधना में लीन हो जाता है और मर कर स्वर्ग प्राप्त करता है। इसी तरह राजा मारिदत्त भी सब कुछ छोड़कर प्रायश्चित के रूप में साधु मार्ग अपनाता है। यही नहीं स्वय देवी की भी प्रवृत्ति बदल जाती है और वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा का आश्रय लेती है। पहिले उसका मन्दिर जहा रक्त एवं चिल्लाहट से युक्त था वहा अहिंसा का साम्राज्य हो जाता है। अभयरुचि, अभययति एवं आचार्य सुदत्त सभी अपनी-अपनी तप साधना के अनुसार स्वर्ग लक्ष्मी प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार यशोधर चौपई एक अतीव सजीव काव्य है जिसकी प्रत्येक चौपई एवं दोहा रोचकता को लिए हुए है। सचमुच १६ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में ऐसी सरस रचना हिन्दी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। क्योंकि यह वह समय था जब देश में सामान्यजन मे भक्ति की ओर तथा अध्यात्म की ओर झुकाव हो रहा था। मुसलिम युग होने के कारण चारों ओर युद्ध एवं मारकाट मची रहती थी इसलिए मनुष्य को ऐसे काव्य पढ़कर कुछ सीखने को मिलता था।

कवि ने काव्य समाप्ति पर निम्न मंगल कामना की है—

सयलु संघु नंदो सुख पूरु, जब लगि गंग जलधि ससि सूरु ॥५३५॥

मेघमाल बरसै असराल, मोच बजाए मंगलचार ।
ति सुनि मिच्छजन आवहु कोरि, होनु बणिक सो कीजहु जोरि ॥२३६ ॥

कवि ने अन्तिम पद्य में अपनी रचना के प्रचार प्रसार पर भी जोर दिया है तथा लिखा है कि जो भी उसकी प्रतिलिपि करेगा, करवायेगा तथा उसे औरों को सुनावेगा उसे अपार सुख होगा । पुत्र जन्म एवं सुख सम्पत्ति मिलेगी ।[1]

भाषा

भाषा की दृष्टि से यशोधर चौपई ब्रज भाषा की कृति है । गारवदास फफोदपुर (फफोंदू) के निवासी होने के कारण ब्रज प्रदेश से उनका अधिक सम्बन्ध था । साथ ही मे वे ब्रज भाषा की मधुरता एवं कोमलता से भी परिचित थे । इसलिए अपनी रचना में सीधे सादे ब्रज शब्दों का प्रयोग किया हैं । नीचे दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(१) तोहि कहा एते सौ परी जो हौं कही सुन्दरि रावरी ।
विहिना लिख्यो न मेट्यौ जाइ, मन मो सखी खरी पछिताहि ॥२२२॥

(२) एक नारि कौ नंदनु भयो, जसहर पास बधैया गयो ॥१४५॥

छन्द

यशोधर चौपई अपने नाम के अनुसार चौपई प्रधान रचना है । कवि के समय चौपई छन्द ब्रज भाषा का लाडला छन्द था तथा जन साधारण भी चौपई छन्द की रचनाओं को ही अधिक पसन्द करता था । चौपई छन्द के अतिरिक्त कवि ने दोहा, दोहरा, वस्तुबन्ध एवं साटकु छन्द का भी प्रयोग किया है । चौपई छन्द के पश्चात् दोहा छन्द का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है तथा दो वस्तुबन्ध एवं एक साटकु छन्द का भी प्रयोग करके कवि ने अपने छन्द ज्ञान का परिचय दिया है । इन छन्दों के अतिरिक्त कवि ने अपने पांडित्य प्रदर्शन के लिए संस्कृत के श्लोकों, प्राकृत गाथाओं[2] का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है । इससे मालूम पड़ता है कि उस समय जन साधारण की संस्कृत के प्रति भी अभिरुचि थी ।

अलंकार

अलंकारों के प्रयोग की ओर कवि ने विशेष ध्यान नहीं दिया । सीधी-सादी

---

१. पढै गुणै लिखि देई लिखाइ, अरु सूरिख सौ कही सिखाइ ।
ता गुण वर्णि बहुतु कवि कही, पुत्र जनमु सुख सम्पत्ति लही ॥५३७॥

२. ८६ वीं पद्य प्राकृत भाषा का है ।

बोलचाल की भाषा में काव्य रचना का मुख्य उद्देश्य होने के कारण उपमा एवं अनुप्रास अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का अधिक प्रयोग नहीं हो सका है।

शैली

काव्य की वर्णन शैली बहुत सुन्दर एवं प्रवाहक है। कवि ने कथा की प्रत्येक घटना को बहुत ही सुन्दर शब्दों मे निबद्ध किया है। कवि के वर्णन इतने सजीव होते हैं कि पाठक पढ़ता-पढ़ता आश्चर्यचकित होकर कवि के काव्य निर्माण की प्रशंसा करने लगता है। रानी एवं दासी में पर पुरुष के प्रसंग में जब वाद-विवाद होने लगता है तो पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। यहां उसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

दासी—

सुंदरि जोवनु राजधनु, पेषिन कीजै गव्वु।
संवरु सीलनु छाडिये, अवसि विनसौ सव्वु ।।२०२।।
सुनि फुल्लार विंद मूख जोति, छाडहि रयनु गहहि किम पोति।
तजहि हसु किम सेवहि कागु, भूलो भई खिलावहि नागु ।।

रानी—

परि जब मयनु सतावे वीर, तू न सखी जनहि पर पीर।
मन भावतो चढै चित आणि, सोई सखी अमर वर जानि ।।२१६।।

इस प्रकार यशोधर चौपई कथानक, भाषा एवं शैली की दृष्टि से १६ वीं शताब्दि का एक महत्वपूर्ण हिन्दी काव्य है। प्रस्तुत काव्य अभी तक अप्रकाशित है और उसका प्रथम बार प्रकाशन किया जा रहा है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में काव्य की एकमात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन बड़ा तेरहपंथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित हैं। प्रस्तुत पाण्डुलिपि संवत् १९३० मगसिर सुदी ११ रविवार के दिन समाप्त हुई थी ऐसा उसकी लेखक-प्रशस्ति में उल्लेख है। पाण्डुलिपि सुन्दर एवं शुद्ध है लेकिन उसमें लिपि संवत् के अतिरिक्त लिपिकार का परिचय नहीं दिया गया है। पाण्डुलिपि के ४३ पृष्ठ हैं जो $१०\times४\frac{1}{2}$ इञ्च ग्रन्थ आकार के हैं।[1]

□ □ □

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग—चतुर्थ—पृ०

यशोधर चौपई

॥ ॐ नमः ॥ अथ यशोधर चौपई लिख्यते ॥

मंगलाचरण —

अथउ जिनवरु विमलु अरहंतु सुमहंतु सिव कंतवरु।
अमर णयण रणिम्यर वंदिउ।
उवसमिय कलूसरइ तिजय बंधु दहधम्म णंदिउ ॥

दोहा

पणविवि पंच पमेठि गुरु अरकमि पुन्न पवित्त्।
णिसुणहु भव्व विचित्त कह जसहर तनउ चरित्त् ॥१॥

फुनि पणवमि सामिणि भारहि, जासु पसाइ सुबुधि मइ लही।
चंद्रवदणि मृग णयणि विसाल, धवलंबर आरुही मराल ॥२॥

अविरल विमल भास रस खाणि, वीणा दंड सुमंडिय पाणि।
छह दरसनि माणी वहुभाइं, सरसै सामिणि होइ हाइ ॥३॥

पणविवि भाव सम्मुं गुरु सूरि, भासमि सुकह सुयण सुधु पूरि।
गुर गूगुर चंदन तिल तेल, जल चंदन घरु पुप्फरण एल ॥४॥

पूजमि पडिम जासु के भाल, चेत्रपाल सुसु करहु दयाल।
लाजे दुरिजन ता कहिं परछेद, बिनु कारण प्रगटहि बहु भेद ॥५॥

जे पर दुषसुखु माणहिं आपु, मूढ रयणे विनु विढवहिं पापु।
अवल्यो देनिहुराई रहै, बोलत बुरो पराई कहै ॥६॥

श्लोक

मुहुपद्माकारं वाचासोतलसंयुतं।
हृदयं कर्तरि संयुक्तं त्रिविधि दुर्जनलक्षणं ॥७॥

न विना परवादेसु दुर्जनो रमतोजसः।
स्वान सर्व्वरसं भोक्तं अमेधं विनुना तप्यसे ॥८॥

तिनको नाम न लीजे भोर दान पुण्य की धरे कठौर।
ते सबहीनु दूरि परिहरौ, तिन अपतनु कोतासिन करौ ॥९॥
भलौ ना कछु निपजै तिन पास, करत निहोरौ धरे उदास।
तिनके बचन कीजहि कान, अंधं जोवहि दीजहि जान ॥१०॥

श्लोक

भवन्ति सफला वृक्षाः भवन्ति सजनाः जनाः।
सुष्ककाष्टं च मूर्खं च न गर्वंति भजंतिजः ॥११॥

जिनके बयनु न निकसै पोचा, निसि दिनु करहि दया पर रोचा।
जे पर कौ चितवहि उपगारु, निम्मंलु सुजसु भम्यौ ससारु ॥१२॥

ते कलिमहु पंचानन सीहा, तिन थुति करनि केम इक जीहु।
तिन सवहिनु सौ विनौ पयासि, मो पर दया करहु गुण रासि ॥१३॥

दोहा

जे परभीर समुद्धरण, पर घर करण समत्थ।
ते विहि पुरिसा भ्रमरु करि, हुरिस्यो जोरि विहत्थ ॥१४॥

पयडु महीयलि उत्तम बंसु, निय कुल मान सरोवर हंसु।
पदमावती बंस धवल जस रासि, तागुण सयल सकै को भासि ॥१५॥

आश्रयदाता का परिचय—

भारग सुतनु थेघु गुनगेहु, जिनवर पय अंवुरुहु दुरेहु।
कीनै बहुत संतोष विहान, पिणिभव्व विच सचौदान ॥१६॥
निसि दिनु करै गुणी कौ मानु, धम्मुं छाडि चित धरै न आनु।
नग कैलई निवसै सोइ, जहि श्रावग निवसै बहु लोइ ॥१७॥
थेघु सनै कवि गारवदासु, निसुनि वयनु चित भयौ हुलासु।
दुँ कर जोरि भणी गुणगेहू, सफलु जन्मु मेरौ करि लेहू ॥१८॥
सलिल कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि।
जे बहू आदि कविसुर भए, परथ कठोर चरित रचे नए ॥१९॥
तासु छाहु ले मौसौ भासि, कवितु चौपही बंध पयासि।
गारमु भनै निसुनि कुल सूर, परियन विबस आस रस पूर ॥२०॥

कवि द्वारा अपनी लघुता प्रकट करना—

पढचौ न मैं व्याकरण पुराण, छंद भाइ अक्षर कौ ज्ञाता।
जौ बुधि बिनु कछु कीजे जोरि, तौ बुधजन हसि लावहि खोरि ॥२१॥

सौ कहुमि तिनके कारण, काढे अप्पु काइ सम् मानि ।
बार बार पनविवि जिनराउ, सरसै मांगि तिसु गुर पसाउ ॥२२॥

गाथा पयडिय आगम सुत्त अंतिम तित्थयर वीर समसरणं ।
भणिए गोयमेण भणियं, सिसुनिय सिरिसेणि एन कहू विमलं ॥२३॥

वीरवानि सुनि गोयम भनी, प्रगटी कथा जसोधर तनी ।
सुनि श्रेणिक प्रगटी कलिमाह, भारवु मने तासु की छाह ॥२४॥

कथा का प्रारम्भ—

जंबूदीपु सुदंसनु मेर, लवनोदधि वेठयो बहुफेर ।
भरह खेतु दाहिनि दिसि बसै, पेषत मनु सुर बेकौ लसै ॥२५॥

रायगेहु पाटन सुभ ठौर, जा सम महियलि भयरु ण ओरु ।
पंच वरस्स मनि दीसै वच्यो, सोमहि तनो तिवहु विहि रच्यो ॥२६॥

मारिदत्त राजा—

चारि पवरि सतपने अवासा, वन उपवन सरवर चौपासा ।
तहि पुर मारिदत्त महिपालु, सूरज तेजु कुवड रसालु ॥२७॥

जोवनवंतु राजमद मस्यौ, अति प्रचंडु महियलि अवतरयौ ।
रुपिनि नाम गेह वर नारि, अति सरूप रंभा उनहारि ॥२८॥

कोक कला संगीत निवास, सेवहि अगरु कुसम रसवास ।
ता समेतु मानै बहु भोगु, निसुनहु अवरु कथा को योगु ॥२९॥

भैरवानन्द का आगमन—

योगी एकु तहा अवधूतु, राज गेह पुर आइ पहूतु ।
भस्म चढाइ मुद्रा कान, अनही बूझै कहे कहान ॥३०॥

दीरहु जटा बढाए अंग, नयन घुलावै चंदन रंग ।
गौर वरण मनो पून्यौ चंदु, प्रगट्यो नाम भैरवानंदु ॥३१॥

काहू जाय राइ सौ कह्यौ, जोगी एकु नगर मो रह्यौ ।
तंत्र मंत्र जानैं बहुभाइ, जोगी गुन गरुवो सुनि राइ ॥३२॥

राजा भनै जाहू ता पासि, लै आवहु बहु विनउ पयासि ।
जो किंकर नरवे पठायो, पवन वेग जोपहु भयो ॥३३॥

पभनै स्वामी करहु पसाउ, वेगैं चलहु बुलावै राउ ।
आडंबर सौ जोगी चल्यौ, कौतिग लोग नगर को मिल्यौ ॥३४॥

योगिहि पेखि राउ गहगह्यौ, आसनु छाडि पाइ परि रह्यौ ।
कर उचाइ तिनि दई असीसा, हूओ राजु तुम्हारे सीसा ॥३५॥

श्लोक

पुष्पदंतप्रभालोके यावो सुरतरंगिनी ।
तावत् मित्रसमं जीव, मरिदत्तो नराधिपः ॥३६॥

आशीर्वाद—

हौ तोको सुनि तूठो राइ, मांगि मांगि यो हियैइ समाई ।
भने अमरहो महि अवतर्यौ, जानमि सयलु महागुन भर्यौ ॥३७॥
व्यंतर भूत हमारे ईठ, रावनु रामु भिरत मैं दीठ ।
अब मारयु वीत्यौ कुरखेता, पेख्यौ भीमुह कारै वेता ॥३८॥
जवहि कंसु नारायन हयौ, पेषत जरासिंधु क्षौ गयौ ।
बरणे भुवनु जिते महि भए, मो आगै ब्यारघौ जुग गए ॥३९॥
द्वै कर जोरि भन्यौ तव राइ, पुण्य हमारी भयो सहाइ ।
तौ मो तेरो दरसनु भयौ, देषत पापु हमारो गयौ ॥४०॥
जो तूसौं किमि मंगमि प्राणा, करहि अमरु अरु चलमि विवाना ।
एक छत्र ज्यो अविचल राजू, इतनै करमि हमारौ काजू ॥४१॥
पाखंडी बोलै धरि घ्यानु, साचौ जाको फुरै न ज्ञानु ।
पुजवमि राय तुमारी आसा, होहि अमरु अरु चलहि अकासा ॥४२॥

चंडमारि देवी का वर्णन—

एकु बचनु करि मेरौ एहु, जैतो इन वार्ता नको गेहु ।
चडमारि देवी आप पनो, बहु बिधि पूजा करिता तनी ॥४३॥
जे ते जीव जुयल सब आनि, नरवर आषिनि सुनि गुणखाणि ।
देवलि सब देवी कै थाना, सिद्धवमि कायु निसुनि सिव जाना ॥४४॥
तब सुनि राव मूढ मति भयौ, राजा राजु करत परिहर्यौ ।
योगी तनी कुमति प्रभु छुह्यौ, कुंजर उवरि राउ आरुह्यौ ॥४५॥
कीयौ बहुतु योगी को मान, गयौ तहा देवी को थान ।
योगी देवी भगतु नरेसु, किंकर को दीनो उपदेसु ॥४६॥

देवी के लिए जीवों को पकड़ कर लाना—

इतनों करहू हमारो काजू, देविहि बलि अब आवहु आजु ।
राव वचनु सुनि धाए वरे, वन मो जीव जाय पाकरे ॥४७॥

हरिण रोझहू सूकर सिवसान, महिस्त मेस छेरे लवकाना ।
कुंजर सीहू बाघ फणि नोरखा, तारी आदि मनै को औरा ॥४८॥

जेते जीव पिवे सब अंधि, लए तिठर करि पसु पंखि ।
फुनि कर योरि पयासहि सेवा, हस नर युवलु न पायो देवा ॥४६॥

तब नर वे अवरा निसो कही, मनुव युवलु बिनु पूजा रही ।
नेरो कायु सवारहू एहु, मनुव जुवलु गहि देवेहि देहु ॥५०॥

निसु दिनु रहे हिंस मति मई, चंड कर्म्म कक्कश निर्दई ।
दस दिसि गए राय उपदेस, मठ बिहार वन फिरहि असेस ॥५१॥

सुदत्त मुनि का बिहार—

निसुनहु भव्व कहंतरु ग्रानु, दया धर्म्म गुणसील पहानु ।
तहि अवसरि सुदत्त मुनि सूर, कर्म्म पयडिब्यो कीनो चूरि ॥५२॥

मुद्रा नगन कमंडर हाथ, बहुत रिखीश्वर ताके साथ ।
भवंतु भवतु सो तीरथ तान, पेष्यो तिवनु केवल नान ॥५३॥

तिहि नयरी आयो मुनि नाहु, जा सिवरमनि रमन को गाहु ।
भव्व कुमु पयडिबोहन चंदु, नाय नरिंद पुरंदर वंदु ॥५४॥

श्लोक

साम मुनिवरु पत्तु तव तत्तु गुण जुत्तु संजमतिलउ ।
कोह-लोह-मय-मोहवत्तउ, बहु मुनिवर परियउ ।
सील जलहि सिवरमनि रत्तउ, तव कम्मा सव संवरणु ।
भव्व सरोरुह मित्तु, अंबरहीनु अनंग हरु निम्मल सुचरित्तु ॥५५॥

जहि णंदन वनु नरवे तनो, दल फल पल्लव सीसी घनी ।
जहि वसंत फूली फुलावाइ, कोइल मधुरो साद कराइ ॥५६॥

घुमु घुमु संति पंषी सुक मोर, सुरकामिनि मोहै सुनि घोर ।
चैत मासु सुदि णवलु वसंतु, गुंजारै मधुकरु मयमंतु ॥५७॥

जनै रिषीसुर वनु अवलोइ, इहि ठा मुनि थिर ध्यानु न होइ ।
इहि वण केम जतीसुर बसैं, निवसत मयनु भुजंगमु डसै ॥५८॥

इक सोरण फूली फूल बादि, पेषत होइ महा तपु बादि ।
जहि निवसत मूसै मन चारु, नासै तपो तनो तप घोर ॥५६॥
जहि वन गन गंध्रब निवासु, विलसहि सुर कामिनि रस वासु ।
निवसत होइ सील की हानि, मुनिवरु छाडि चल्यौ मन जानि ॥६०॥

श्मशान का दृश्य—

सग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान ।
मुंड रुंड दीसहि बहु परे, कृमि की लालचि गधि घूण भरे ॥६१॥
जबुकसान गंधि ग्ररु काग, व्यंतर भूत खपरिहा लाग ।
डाइनि पिबहि रुधिरु भरि चूरू, सूकै तरु वढि बासै उरु ॥६२॥
चिता बहुत पजलहि वो पास, धूमानलु भमि रह्यौ ग्रकास ।
नयननु देषत फटै हियो, वैवस भवनु जनकु विहि कियो ॥६३॥
तहि ठा पेषि परासगु ठानु, संघ सहित मुनि हान·········।
ग्रनुवयध्वर तासु कै सग, चपक्कु सुम सम कोमल ग्रंग ॥६४॥
तिनहि सकोसल मुनिवरु जानि, पभन्यो सुगुरु सरस रस बानि ।
निसुनि ग्रभयरुचि नाम कुमार, लेहू भोजु तुम नयरि मझार ॥६५॥

बहिन भाई द्वारा नगर में भिक्षा के लिए जाना—

बालक तुम जो करहू उपासु, आरति उपजि होइ तप नासु ।
सुनि गुरु वयनु बहिनि ग्ररु वीरु, चंद्र बदन सम कनक सरीरु ॥६६॥
लेकर पुत्र चले निरगंथ, कुमरु कुमारि नगर को पंथ ।
तहि ग्रवसर जन राजा तने, ढूढत फिरै जुवल बन घने ॥६७॥
देवी बलि कारण ग्रातुरे, दोऊ दृष्टि तासु की परे ।
पभन्यो कूकि सफलु भयौ काजु, ए बलि पूजा दीवे ग्राइ ॥६८॥
लषण बत्तीस कनक सम देह, पकरि चले देवी कै गेह ।
जनौ रविचंदु राहु पाकर्यौ, जनौ कुरंगु केसरि ग्रसपर्यौ ॥६९॥

चिन्तन—

संजम कर शील निरमले, तिनहि पकरि जब किंकर चले ।
ता मन चितै ग्रभैकुमार, जीवनु मरनु जासु एक सारु ॥७०॥

पेख्यो वहिनि वदनु अवलोइ, जान्यो मत जिय डरपति होइ।
पभन्यो निसुनि अमैमति वीर, किम सुंदरि संकुचहि सरीर ॥७१॥

मुह मयंक किम होहि मलीन, ए किम करहि हमारो हीन।
जो जिन सासन आगम कह्यौ, हम गुरु पास सुदृढ़करि गह्यौ ॥७२॥

जीव हि कोई सकै न मारि, काया थिरु न होइ संसारि।
तातै मुनिवर करहि न लोहु, काया ऊपरि छाडहि मोह ॥७३॥

छूटै आवन राखै कोई, तिम अनछूटै मरणु न होइ।
बहिनु लियह संसारु असारु, एकुइ धर्म्म उतारण हारु ॥७४॥

दोहा

छिज्जउ भिज्झउ जाऊ, वहिनु लिएहु सरीरु।
अप्पा भावहि निम्मलऊ, जे पावहि भवतीरु ॥७५॥

कम्मह केरो भाव मुनि, देहु अचेयनु दव्वु।
जीव सहावँ भिन्नु इहु, वहिनुलि वुझहि सव्वु ॥७६॥

अप्पा जानहि नानमऊ, अन्नु परायउ भाउ।
सो छडेपिनु भोवहि, निसावाहि अप्प सहाउ ॥७७॥

अट्ठह कम्मह वाहि रऊ, सयलह दोसह चित्तु।
दंसन नान चरित्तमऊ, भावहि वहिणि निरुत्तु ॥७८॥

अप्पैं अप्पु मुनंत्तु जिउ, सम्माइट्ठि हवेइ।
सम्माइट्ठी जीवु फुडु लहु कम्मे मुच्चेइ ॥७९॥

समिकत रयनु न दीजै छाडि, हम सो सुगुर कह्यो जो टाडि।
बार बार किम कहिए वीर, सुंदरि होह अडोल शरीर ॥८०॥

भायर वचनु निसुनि सुकुमारि, सारद मयंक वयन उनहारि।
तुम जानी भयभीत शरीर, तो मो सिख दीनी वर वीर ॥८१॥

ताते वीर तुम्हारो न्याव, तुम जाणो भामनि परजाउ।
जानमि मरणु पहूच्यो आनि, डरपमि नही वीर गुण खानि ॥८२॥

को काको संसार असारु, हिंडिउ जीव लेतु अवतारु।
सो कुलि को जा लईन वीर, सो दुखु कोपु न सह्यौ सरीर ॥८३॥

जे हम सात भवंतर फिरे, ते किम वीर वेगि वीसरे।
जिनवर धम्मु सुगुरु को कह्यौ, दई दई करि सो हम सह्यौ ॥८४॥

जिनवरु जपत मरन जौ होइ, याते भलो न भायर कोइ।
सो किम भायर दीजे छाडि, हो सन्यासु रह्यौ मन माहि ॥८५॥

गाथा

मुणि भोयरणेन दव्वं, जस्स सरीरं पिषीनु तव यरणं।
सन्नासे गय पानं तन्नगयं कि गयं तस्स ॥८६॥

दाढयो धीर सिरावमह्यो, भायर वहिनि मोनु तव गह्यो।
गहि कर किंकर चाले धीठ, मारिदत्त कारज मन इठ ॥८७॥

चंडमारि देवी का वर्णन—

एहु चले देवी कै थान, जीव जुवल जहे बंधे भ्रान।
वाजहि वाजे समिढो दुनो, नाचहि जोगी अरु जोगिनी ॥८८॥

वाजहि तूर भयान भेरि, जनौ जमु त्रिभुवनु मारे घेरि।
जहु देवी बैठी बिगराल, मंड पुछ यो महिष की षाल ॥८९॥

हाथ त्रिसूलु सिंह आरुही, मुंडनु को करि काठो गुही।
वरडे दत जीह वाहिरी, वारवार मुखु वावे षरी ॥९०॥

अरुण नयन सिर सूघे वार, जानहूवरै अगिनिकी ज्वाल।
रुधिरु उवटनौ जाकै अग, श्रास पास बिढि रहे भुजग ॥९१॥

आमिषु भषे उठ लरकाइ, मह नस केलै षरी जह्याइ।
करि कटाष जव देवी हसो, पेषतं गर्मुनारि को षसे ॥९२॥

जीव भषण को अति आतुरी, जनौ जम रूप आणि अवतरी।
पेषत षरो भिहावन ठोरु, नीको कहा तासु महि ओरु ॥९३॥

श्लोक

भयभीत सदा कूर्यं निर्द्दयोपलभक्षिनी।
निर्घ्विनी जीवघातिश्चेदृशी कस्य भवे प्रिया ॥९४॥

साधु साध्वी की सुन्दरता का वर्णन—

जहु योगी राजा नर ओर, गहि किंकर लाए तहि ठौरा।
कुमरु कुमारि सकोमल अंग, केसरि चंप कुसुम सम रंग ॥९५॥

नर वेमन पेष्यो अवलोइ, मनुव जुवलु इहि रूपन होइ।
अमरु पुरंदरु की ससि सुरु, किम अनंगु मानिनि मनचूरु ॥९६॥

को हरि हरु संकरु धरएसु, के दीसै विद्याधर भेसु ।
अतिसुरूप का एहु कुमारि, सुरि नरि किन्नरि को उनहारि ।।९७।।

यहु रंभा कि पुरंदरि सची, रौहिनि रूप कवन विहि रची ।
सीता तारा कि मंदोदरी, को दमयंती जोवन भरी ।।९८।।

पोमावेसर सेवन देवि, नाम कुमारि रही तपु लेवि ।
कै अनंगु जब संकर डह्यौ, तब हो रति विधवा पनु लह्यौ ।।९९।।

ताकौ विरहू न सक्यो सहारि, तौ बालक तपु लियो विचारि ।
कै यह देवी मानौ होइ. मैरी वलि पूजा अवलोइ ।।१००।।

सुप्रसन्न हुइ आइ एह, भेषु फेरि करि निरमल देह ।
कुसुमावलि बहिनि मो तनो, कै यह तासु कोषि की जनो ।।१०१।।

पुत्री पुत्रु तासु हो भयो, निसुन्यो तिन बालक तपु लह्यौ ।
पेषि रूपु मन वाढ्यो मोहु, राजा तनौ भयो गलि कोहु ।।१०२।।

राजा द्वारा प्रश्न—

तव हसि नरवे वावाभनो, सुंदर पभणि वात आपनी ।
देसु नयरु कुलु माता वापु, सुंदरि कवन कौन तु आपु ।।१०३।।

अति सरूप तुम दीसहू कौन, कारण कवन रहे गहि मौन ।
किम वैराग भाव मन भयो, बालक वैस केम तपुलयो ।।१०४।।

अभयकुमार का उत्तर—

राय वयनु सुनि अभयकुमार, भासै विहसि दया गुणसार ।
आकुरतु वरते असमान, तह किम मेरो धर्म्म कहान ।।१०५।।

संठ पास जिम तरणि कटाय, वायस जेम छुहारि दाप ।
सोवत आगै जेम पुरानु, जिमविनु नेहहि कीजै मानु ।।१०६।।

सरस कथा जिम मूरिष पास, कोनी जैसी किरपन आस ।
जिम पल को कीनौ उपवास, जिम विनु भूषहि छरस अहारु ।।१०७।।

बहिरे आगे जैसो गीउ, जिम सीतज्जुर दीनो घीउ ।
माइ पिता बिनु जैसो आरि, जिम सिंगार पिया बिनु नारि ।।१०८।।

अंधहि पास निरतु जिम कियो, जिम धनु अनषायो अनवियो ।
ऊसर खेत बए जिम धानु, जैसे भाव भक्ति बिनु दानु ।।१०९।।

जिम एवि हुल जाहि प्रभु आनि, तेम हमारी धर्म्म कहानि ।
जहि आनंदु करत जिय घात, तिहि किम राय हमारी बात ।।११०।।
जीव जुयल जह वधे वराक, देविहि वलि पूजा कताक ।
ताहि ठाकरै धरा हरि कीनु, ताते राय रहे गहि मोनु ।।१११।।
मारिदत्त मति निरमल भई, मानहु उतरि ठगौरी गई ।
राज पुरंधुरु हुंवर सूर, वाजत वरजि रहाए तूर ।।११२।।
जोगी चक्रु जुस्यो हो घनौ, वरन्यौ लोगु सयलु आपनौ ।
सयल लोक मुनिवर मुह पेषि, राषे अन कुचित्र के लेषि ।।११३।।
भनै राउ सुनि बाल जईस, जौ परि तेरौ मनहु नरोस ।
तौ पयडेहि कथा आपनी, जैसी बीती पैषी सुनो ।।११४।।
सुन्दर जती सयलु महु भासि, जो अनुभई सुनी गुरपासि ।
जोनि सुनौ सौनि सुनौ एह, जो न सुनै तसु कीजै केह ।।११५।।
आसिकु दे वोल्यो रिषि राउ, जान्यो राइ तनौ सुभ भाउ ।
निसुनि देव दिढ मन थिरकान, पभणमि अपनी कथा पहान ।।११६।।

वस्तु बंधु

ता अभयसुरुचि राय वयनेणा ।
आहासइ कुमर गुरु, सु हमवाणि सुकुमाल गत्तउ ।
जो सुह मग्ग पयासयरु, धम्म कह तरु एहू ।
नि सुनहू सुयज विचित्र कहा चंत सुनं तह देहू ।।११७।।
भासे अपनी कथा कुमारु, जामन तिनु कंचनु एक सारु ।
सुनि महिमा निणि माननहार, भोग पुरंदर राजकुमार ।।११८।।

अवन्ती देश एवं उज्जयिनी नगरी—

देसु अवंती नयरि उजैनि, भोगभूमि सम सुष की सैन ।
वन उपवन सरवर कुव वाइ, पेषत अमर विलंवहि आइ ।।११९।।
दल फल सघन कुसुम रस वास, कलप विरष सम पुजवहि आस ।
मठ मंदिर सतषणौं अवास, एक समान वसै चौपास ।।१२०।।
सुरहु रस मधर सुर समलोगा, धन कन कंचन विलसहि भोगा ।
वरण वयरि छत्तीसौ कुरी, जनकु सु धनपति निज रचि धरी ।।१२१।।

जसोहु राजा एवं चन्द्रमती रानी—

तहि पुरि नरवे नाम जसोहू, नियधन इंद्रहि लावै षोहु ।
चंद्रमती राणी ससि वयणि, मद गज गमनि एण समनयणि ।।१२२।।

कोमल तन कुच कठिन उतंग, जनु श्रीफल हुइ किये सुरंग ।
बीना हंस वंस सम बानि, अतेवर सयल हुनि पहानि ॥१२३॥

राजु करत पालत नय नीति, इहि बिधि भये बहुत दिन बीति ।
पुत्र बेलि विदि बीनी पोषि, नंदनु भयो तासु की कोषि ॥१२४॥

पुत्र का जन्म—

निसुनि राय नंदनु अवतरयौ, बाढ्यो रहसभाव सुष भर्यो ।
कोलाहलु बंदीजन कियो, दीनौ दानु उल्हास्यौ हियो ॥१२५॥

श्लोक

पुत्रजन्मोत्सव नित्या विवाहो शुभसंज्ञका ।
इष्ट-सजनमेलापं संसारोक-महासुषं ॥१२६॥

यशोधर नाम रखना—

धाधरु ज्यारै सुजस की खाणि, जसहरु नामु धर्यो इह जानि ।
बाल विनोद नारि मनु हरै, दिनु दिनु बाढै कर संचरै ॥१२७॥

आठ वरिष बीते सुष माहि, बालकु माइ पिता की छाहि ।
नयण पेषि रंज्यो परिवारु, सुरतेय सम राजकुमारु ॥१२८॥

अध्ययन —

पढन हेत सौप्यो चटसार, घिय गुरा लाडू किये कसार ।
पूजि विनायगु जिन सरस्वती, जासु पसाइ होइ बहुमती ॥१२९॥

भाउ भक्ति गुर तनी पयासि, पाटी लिषि लीनी ता पासि ।
पढ्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन आवधठान ॥१३०॥

पढि गुने सयलु पिता पहु गयो, सिर चुंबनु करि अंकौ लयो ।
पेषि पुत्रु सुषु उपज्यो गात, फुनि माता पहु पठयो तात ॥१३१॥

चंद्रमती भेंटी पग परयो, पुत्रहि देषि हियौ सुष भरयौ ।
रूपवंत विद्या गुण खानि, सफलु जनमु माता तहि मानि ॥१३२॥

ऐसौ माइपिता कोमाहु, पथनै जननि अमर विरु होऊ ।
पेषि तरुनु नंदन नर नाहु, बंस बेलि हित ठयो विवाहु ॥१३३॥

कुमारि पंचसै रायनु तनी, एक एक अछरि समसनी ।
कनकु सुमयन तनौ कट कोधु, चमकत चौकुल गावति चोधु ॥१३४॥

नयन वयन जोवन सुकमारि, जनौ सौरन फूली फुलवारि ।
भयो विवाहु जसोधर तनौ, सुयन कुटम सुखु उपन्यौ घनौ ।।१३५।।

अमिय महादेवी पटरारिण, पेषत रुपु अनग की हानि ।
नयन वयन कुच धरी अनूप, मानहु रची पुरंदरि रूप ।।१३६।।

भूल्यो कुमरु भोगत सुभग, बिछुरत डाहु परै दुहु अंग ।
एक दिवस जसहर कौ ताउ, सभा सहित सुस्थित महिराउ ।।१३७।।

प्रवर बहुत बैठे नरनाथ, पेख्यौ मुहु दर्प्पनु लै हाथ ।
धवलौ एकु कनपुता केसु, मन बैराग्यौ ताम नरेसु ।।१३८।।

मानहु कहतु पुकारैं कान, एर बुढापे केसहि दान ।
करिहै बुरी बुढापौ हाल, दृष्टि पतनु अरु हालैं खाल ।।१३९।।

श्लोक

जरामुष्टिप्रहारेण कुब्जो भवति मानवः,
गत जौवन मानिक्यौ निरीक्षति पदे पदे ।।१४०।।

जब लगि देह न व्यापे व्याधि, तव लगि लेमि परम पदु साधि ।
विरकत भाउ राउ मन भयो, राजु गेहु तिन जो तजि दयो ।।१४१।।
विरक्तस्य तृणं राज्यं, सूरस्य मरणं तृणं ।
ब्रह्मचारी तृणं नारी, ब्रह्मज्ञानी जगस्त्रिरण ।।१४२।।

राउ जसोधर थाप्यो राज, आपुनु चल्यो परम तप काज ।
लीनो दीक्ष परम गुरपास, तपु करि मुयो गयो सुरपास ।।१४३।।

महाराजा यशोधर का शासन—

महियलि राजु जसोधरु करै, हरि सम राजनीति ब्यौहरै ।
नयरि उजैनी स्वर्ग समान, करैं राजु जसहरु तहि थान ।।१४४।।

पुत्र जन्म—

अमिय महादेवी सुरतिरी, बहुत दिवस मानि निवसिरी ।
एक नारिकौ नदनु भयो, जसहर पास वधैया गयो ।।१४५।।

तहि सबु कुटमु महासुख भर्यो, मनौ जिन जननि देवु अवतर्यो ।
बाढ्यो कुमरु रूप गुण सारु, धरघौ जसोमति नाम कुमार ।।१४६।।

कियो जसोमति तनौ विवाहु, सुवन अनंदु दुवन उर डाहु ।
दै जुगराजु पट्ट बैसारि, मंगल घोष कलस सिर टारि ।।१४७।।

जन सेवग सब सौंपे काहु, आपनु भोग करै घर माहु ।
कबहू सभा बैठे आइ, निसुदिनु पिय भोगवत बिहाइ ॥१४८॥

सुनि संपै निवास गुनरासि, नारि चरितुहौ कहमि पयासि ।
मारिदत्त सुनि देषिह कानु, जसहर राजा तनौ कहानु ॥१४९॥

तहि अवसरि सुखमौ दिन एक, जसहर राउ राज की टेक ।
सभा उठी दिनयरु अंथयो, रानी तनौ बुलावो गयो ॥१५०॥

ता महल्यो बोलै सिरु नाइ, रानिहि तुम बिनु न सुहाइ ।
चाहइ बाट तुम्हारी नाहु, जिम जलहर बिनु बारि साहु ॥१५१॥

तिम तुम बिनु रानी कलमलौ, जोवनु सफलु देवु जवचलौ ।
निसुनि वयनु तब नरवै हसै, रानी पुनि चित ताकै वसै ॥१५२॥

जेसौ भवरु उमाह्यो वास, युग रति रंग रवण की आस ।
चल्यौ राउ रानी के गेह, जेम हंसु हंसिनि कै नेह ॥१५३॥

दोहा

यशोधर एवं अमृता का प्रेम—

एक हिरावै सुख नहीं, जौ न दौवराचंति ।
मालुति मन मधुकर वसै, मधुकर न मालुंति ॥१५४॥

चौपई

चंपक मला अरु ससिरेहु, दोऊ सषी कनक सम देहु ।
दोऊ छयल चतुर परवीन, जोवन साम कटि षीन ॥१५५॥

अमिय माहादे तनो पवासि, निसु बिनु निवसहि रानी पासि ।
राय तनौक रूप कस्यो आइ, चित्र साल ले गई चढाइ ॥१५६॥

राउ पेषि रानी बिहसाइ, पालिक ते उतरि अकुलाई ।
राय बिहसि कर षैंचो चीर, उघर्यो रानी तनौ शरीर ॥१५७॥

सावै टारि जनकु विहिगढ्यो, मानहु कनकु अगनि ते कढ्यो ।
किब्ल करीक्यौं वैनीहरो, जनुकु गरुड मै नागिनि दुरे ॥१५८॥

विहिसति दंत पंक्ति ऊजरी, जनौ घन मौ कौषी बीजुरी ।
चंचल नयन मरोरति अंगु, जनु कुरंगि विछोहे संगु ॥१५९॥

हाव भाव बिभ्रम सविलास, रुलु धुलंति मधुकर रस वास ।
रच्यो सुरतु सुषु उपज्यो गात, सोयो राउ भई अध रात ॥१६०॥

कुंवर द्वारा संगीत प्रदर्शन—

मारिदत्त यहु निसुनहि बात, नादु पठ्यो रानी कै कान ।
हरित भाल निवर्स कूवरो, व्याप्यो रोम छुवाहू वरो ॥१६१॥
धरो सुकंठी गावै गीउ, सो निसि विनु कहरावै जीउ ।
राग छत्तीस मुनै बहु भेय, भूलहि सुर कामिनि सुनि गेय ॥१६२॥
प्रथम रागु भैरी परभात, सुंदरि निसुनि उल्हास्यी गात ।
ललित भैरवी कीनी रागि, अनुकु विरह बन दीनी आगि ॥१६३॥
रामकरी गूजरी सुठान, निकुनत मयन हुई जनौवान ।
आसासँ धूमिलवे भाउ, सुनि गज गामिनि भयौ उमाउ ॥१६४॥
गौरी धरी सुहाई नादु, चन्द्रबदनि मोही सुनि सादु ।
करि गंधार सुकोमल भाष, भामिनि भूलि गई अभिलाष ॥१६५॥
माला कोश जब निसुन्यो बाल, नियतन मयन शलाए भाल ।
मारु जैतसिरी की छाहु, जो सुभटनु मीठो रस माहु ॥१६६॥
टोडि हि वैराटी सौ लगु, कामनि विरह मरोस्यौ अगु ।
मोब परासो अवर अडान, महिलहि परघो विरहु रसु कान ॥१६७॥
करि कामोद ठकुराई रागु, वनितहि परघौ मयन पुर दागु ।
सुनि हि दोल नारि कर मरी, मंक्षिस तुछि अभ जनौ परी ॥१६८॥
करि कल्यान अवरु कानरौ, गेहिनि कान सुहाई परौ ।
केदारौ कीनौ अधरात, मृगलोचनी पसीजी गात ॥१६९॥
रामु विभास अवरु वडहंसु, कीनौ जब हरि मारघो कंसु ।
कुविज कठूह राई गूजरी, कीनी राम सिया जब हरी ॥१७०॥
रागु विरावरु अरु बंगाला, तिरियहि लई कुसम की माला ।
दीपकु वडोरागु जब करै, जासु तेज उठि दीपकु बरै ॥१७१॥
कियो बधार बधु सवमेलि, सींचि मयन विरहु की केलि ।
विहागरौ सूहे सौ जोरि, जनु सुजान रमु लियो निचोरि ॥१७२॥
मेघ रागु जब लियो नवाजि, बरसै रिमिझिमि जलहर गाजि ।
अवर अलापै गौड मलार, विनुही बादर परै फुसार ॥१७३॥
धनासिरी मार उह जेज, रागिहि रह्यौ न भावे सेज ।
करी मलाई मध माधई, पंच मुनि सुनत मूरछि गई ॥१७४॥

बीरा सारगु सारस नाद, जनकु मुहई मयन को बाद ।
जो देखी चित वेधहु भाइ, सुनत अहेरै हरिनु भुलाइ ।।१७५।।

रागु वसंतु कूबरी करै, जनी मधुमास भवर गुंजरै ।
लागी लात सोरठी तनी, सुनि कनकंगि काम मरहनी ।।१७६।।

सिरि रागु सुनि दीनो कानु, मूरिषु नहीं होइ जो जानु ।
रानी अंगु काम सर हयो, जसहरु राजा बिसहरु भयो ।।१७७।।

भुज पंजर तेसो नीसरी, ज्यो घनते निकसी वीजुरी ।
सरद पटल ते जनी ससि रेह, निकरी एम सकुचिकरि देह ।।१७८।।

फुणि अरगाइ धरची मुइ पाउ, डरपै सो जिनि जाणै राउ ।
चंपक माला लीनी बोलि, द्वार कपाट दिये तहि खोलि ।।१७९।।

रानी एवं दासी की वार्ता—

रानी बात कहै अरगाइ, तो ते मेरो काजु सिराइ ।
गधर्व कला रागु जिनि करची, ता बिनु जीव जाइ नीकस्यो ।।१८०।।

जो तू सखी सुजानी आपु, तौ खोवहि मेरो तन तापु ।
निसुनत रागु बहुत दिन भए, ते सवि पाछै जुग वरिखए ।।१८१।।

करति निहोरो तोसो भाषि, अब लौं प्राण हमारो राषि ।
तासु चरण लै मोहि दिखाइ, सोई सिव भषिमो सिव राइ ।।१८२।।

ऐसो बचनु भन्यो तब बाल, तब तन सकुचि चंपक माल ।
हा हा भनि बोली घर थूंकि, सुन्दरि बचनु भन्यो किम चूकि ।।१८३।।

कूबड़े का वर्णन—

बहु कूबरी दईको हयो, फुटि अंगु सबु बाको गयो ।
जैसो जस्यो दावा को डूडु, मानहु काटि बहोरयो मूडु ।।१८४।।

पाइ खिवाई मुहु उरचो, निसि दिनु रहै लीदि महु परचो ।
कीरा परे विगधि कोमूलु, अनुदिनु माथै व्यापै सूलु ।।१८५।।

उलटि पटल अषिनु के रहे, बरे कुबणे व्याधि के गहे ।
पूठी साइ रही हर हुधु, महियलि सहे नरक को दुषु ।।१८६।।

लाठी लात मुठी का सहै, रामो कवनु वरनि चित कहे ।
माथै कौवा मारहि चौट, सो विहि रच्यो पाप को मोट ।।१८७।।

हसै न कबहू नीको कहै, परचो हुडोलै रोवतु रहै ।
घरी अलप निकु बायस दीठि, करिहा सो मिलि आई पीठि ।।१८८।।

हौ रानी किम वरनौ तासु, मुहू पेषै तिहु परै उपासु ।
जाहि सुनत दुषु उपजै कान, सुंदरि कहहि तासु पहूजान ॥१८९॥
वात नु हासी छूटी मोहि, भमिनि पभनि सदो किम तोहि ।
तो पिउ रमत भई अघरात, तौ न तो रति उपजो गात ॥१९०॥

रानी वचनु—

सुनि वचनु रानी कलमली, पभनै तै सिष दीनी भली ।
वयनु एकु मेरौ निसु नेह, चपक माला कानु थिरु देह ॥१९१॥
गीत नाद वेधिये सुजानु, निसुनि हरिन फुनि देइ परानु ।
अरु जो वालकु रोवतु होइ, निसुनत रहै गोद महू सोई ॥१९२॥
होइ कौविजो डस्यो भुजंग, निसुनि गीतु विषु रहै न अंग ।
चतुर सुजान जिते नर नारि, जे जानहि सुनि मूढ गवारि ॥१९३॥

श्लोक

सुषणिसुखनिधानं दुखितानां विनोदः ।
श्रवण हृदयहारो मन्मथस्याग्रदूतः ।
ग्रति चतुर सुगम्यो वल्लभो कामिनीनां ।
जयति जगति नादो पचमो भाति वेदः ॥१९४॥

राग तनै गुण जानहि माइ, मो मूरिष सौ कहा वसाइ ।
जानहि तू न हमारी भीर, पाहनु जिम भेदिये न नीर ॥१९५॥
किमि मुहू मोरि हसै घर वसी, मेरौ मरणु तुहारी हसी ।
जामि सखी तेरी वलिहारु, इतनौ करि मेरौ उपगारु ॥१९६॥

चंपक माला का उत्तर—

चंपक माल कहै विचारि, आनी निजु सत डोली नारि ।
रानी केम भइ बावरी, को सुनि सीतु कि अंतर छरी ॥१९७॥

दोहरा

हा सुर सुंदरि सम सरिस, केम पयासहि एहु ।
सतो न वल्लहु परिहरै, अवरु करै नहि नेहू ॥१९८॥
मामे निम्र सहश पुरिषवस, केम समप्पहि देह ।
सील नवल्ली वल्लरी, जालि करै किम षेह ॥१९९॥

सुंदरि जोवनु जात है, अरु जो आइस जाउ।
सीलु महंगो मति टरी, आगहू जनम सहाउ ॥२००॥

सुंदरि जोवनु राजु धनु, पेषिन किज्जै गव्वु।
सबरु सीलु न छांडिये, अवसि विनस्सै सब्ब ॥२०१॥

सुनि फुल्लार-बिंद मुख जोति, छाडहि रयनु गहहि किम पोति।
तजहि हंसु किम सेवहि कागु, भूलो भई पिलावहि नागु ॥२०२॥

अम्रतु तजि पीवहि विष मूतु, सुरपति छाडि रमहि किम भूतु।
छाडि ईष किम गोवहि मंडु, रानी केम करहि घरु मंडु ॥२०३॥

सील रयनु तिहुलोक पहानु, सीलु नारिमंडन गुन ठानु।
सोभू संजम भाव करहि, फोरि दहै डीकागनु देहि ॥२०४॥

माता-पिता ससुरु अरु सासु, पेषि बिचारि बंस कुलु वासु।
राउ भतारु तरुनु घर सूनु, चौक चढो चाटहि किम चूनु ॥२०५॥

अरु तू एक बिचारहि आपु, करत कुकर्म न छुरिहै पापु।
ता वही कान दुवन के परै, जैसै तेलु नीर बिस्तरै ॥२०६॥

अरु जो केम केम दुरि रहै, तौ पाछै कर तारुण सहै।
व्यापै रोग सोग तन रोर, फुनि नरकादि सहै दुष घोर ॥१०७॥

अरु तू सामिनि पेषि बिचारि, यह अपजसु चलिहे जुग चारि।
मेरे कहत राषि मनु पैंचि, तिय तुस कारण रयनु मन बेचि ॥२०८॥

तू आसुरी करहि किस एह, जाहि रमनप्यो छाडहि गेह।
काढहि जिया तस सेकी षाल, नारि मरण बुधि भई अकाल ॥२०९॥

पिसुनै पेषै करत कुपाउ, तौ महिषो दिगडावै राउ।
तौ सुन्दरि मरिये दुष देषि, मै सिष सामिनि दई बिशेषि ॥२१०॥

जिम माषि चंदनु परिहरै, बिगषि अमेध जाइ रति करै।
रवहि कुबरो राजा छाडि, तेलु षाइ घो धरियै गाडि ॥२११॥

ताकै जोवन दीजै ऊक, वयण थेहु अरु जीवस थूक।
तपत तासु अग दीजै डाहू, सा जो छाडि वरै परनाहु ॥२१२॥

रानी का उत्तर—

सषी बयनु सुनि बिलषी बाल, जरी रवि किरणि पुप्फकी माल।
कुंद दसनि बोलै यहू नारि, काज आपनो करि मनुहारि ॥२१३॥

जाम मि बंसु गेहु कुलुठानु, जोबनु रूपु तेजु गुन मानु ।
रूपु कुरूपु हेतु प्रनहेतु, पीवु प्रपोवु किष्क प्ररु सेतु ।।२१४।।
परि जब मयनु सतावे बीर, तू नही सषी जानहि पर पीर ।
मन भाव तौ चढै चित प्राणि, सोई सषी प्रमर वर जानि ।।२१५।।

श्लोक

वयो नवं रूपमती वरम्यं कुलोन्नतिश्चेति सुबुद्धि रेषा ।
यस्य प्रसन्नो भगवान्मनोभू, स एव देवो सषि सुन्दरीनां ।।२१६।।
जौ तू मो भावति सुमोह, तौ तू साथ हमारै होइ ।
जब रानी पभनै कर जोरि, बोलै सषी बहुरि मुषु मोरि ।।२१७।।

दोहरा

रानी जे प्रचलन चलहि, जानत प्रष जुजि ताहि ।
दिवस चारि कै पाव मौ, संमूले चलि जाहि ।।२१८।।
जे पर पुरिसहि राचहि घनी, ते गति पति काटहि प्रापनी ।
तू सिष देत न मानहि दापु, षिन सुषु जनम जनम कौ पापु ।।२१९।।
रानी निसुनि भई प्रनमनी, मोरी बात सषी अवगनी ।
मैं तू जानी सषी सुजानि, तौ मै करी तुम्हारी कानि ।।२२०।।
तो हि कहाए ते सौ परी, जोहौं कहौ सु करि रावरी ।
विहिना लिष्यौ न मेट्यौ जाइ, मन मौ सषी षरी पछिताहि ।।२२१।।

रानी एवं दासी का कूबड़े के पास प्रस्थान—

बरजै कवनु प्रमारग जाति, तव उनि चली संग मुसिकाति ।
दोऊ जनी चली मरगाइ, मंदे देति सुहाए पाइ ।।२२२।।
चमकति चलीजु मोही राग, जनुकु सुहरिणि विछोही वाग ।
चलत पाउ पाहन सौ षग्यौ, नेवर धुनि सुनि राजा जग्यौ ।।२२३।।
प्रमिय महादे पेषी जात, चितयो कहा चली अधरात ।
बाढ्यौ कोपु राय कै प्रंग, हाथ षरगु लै चाल्यो संग ।।२२४।।
ढूकतु लुकतु पाइ थिर देतु, नारी तनौ कनसुवा लेतु ।
प्रमिय महादे चंपक माल, सोह दुसवार पहुती तहि काल ।।२२५।।
दौने जहि कपाट पर दारु, जाग्यो सुनि नेवर झुनकारु ।
भनै रिसानौ कौ तुम चली, तारे फिरे प्रर्द्ध निसि गली ।।२२६।।

उत्तर दियो तासु सुंदरि, एक ससि रेषा है दूसरी ।
और मूढ को आवे थान, गउ माडो राजा के पास ।।२२७।।

जानि बूंझि तू उठहि रिसाइ, मानो तो ताकी बुढवाइ ।
चली नारि यहु उत्तर कीयो, उसही खेव राव पगु दीयो ।।२२८।।

कूबड़े के पास पहुंचना—

जासु रमरण की राणि हि आस, सेहिनि गई कूबरा पास ।
जाइ जगाओ चरण नु लागि, अति रिस भर्यो उठउ सो जागि ।।२२९।।

तिनि डाली मनि दीनी मारि, सुन्दरि विहसि करी मनुहारि ।
जो जसु भावे सो तसु ईठु, सत्य पखानो जग महु दीठु ।

जो जाने जस्य गुरगे, सो तस्य आयर कुणए ।
फलियो दवहू विडयो, कावो निवाहलि चुणए ।।२३०।।

दोहा

सेजहू छडिउ वालहा वा कारण निसि जग्गि ।
कंठ लागि दोऊ रहे आवरि बूरी ब जग्गि ।।२३१।।

रानी का विनय—

रहि न सको तुभु बिनु, सकमि न तोहि बुलाइ ।
पंजरु म्महि राजा रह्यो, ज्यो तो उवरि पाइ ।।२३२।।

रानी गई तासु के संग, मनो स्वान बिटारी गंग ।
गरुड नारि मनु मानी नाग, हसिनि जनुकु भागई काग ।।२३३।।

जुनुकु पुरंदरि सेई भूत, जनु ससि रेह राहु ग्रहु धूत ।
सोहिनि जनुकु सुबहु को सेठ, रानी रही कूबरा हेठ ।।२३४।।

आपुनु पेषि राउ पर जर्यो, जनो ज्योतिष हुतासन पर्यो ।
काढि खडग एहु घालै घाउ, फुणि चित चेति चमंक्यो राउ ।।२३५।।

इहु तिय निंद दुष्ट मत लाज, णीचऊ ठबुधि करै अकाज ।
अमितराशिणि चिरा अविचार, साहसु करतन लागै वार ।।२३६।।

उसिनु छाडि नीचु संग्रहो, मलमहु पवड मबमुह कहै ।
पापिणो के किम हरमि पराण, भारह कह्यो न वेद पुराण ।।२३७।।

कपुरिसु एहु कूबरो राडा, वोवड बूरो पीठि को हाडु ।
मडी थाइ पेट दिन भरै, पाइन बंलहि सीढि भी परै ।।२३८।।

श्लोक

दालिद्री च रोगिनो मूर्खः दयादान विवर्जितः ।
क्षण ग्राही कलंकी च जीवितोपिमृतोपि च ।।२३९।।
ताक पुरिसहि करमि किम घाउ, रह्यौ विचारि भवणि को राउ ।
दोऊ हणत परतःकी हाहि, बहुर्‌यो राउ एहु मन जाणि ।।२४०।।

राजा यशोधर का वापस आना—

चित्रसाल पालिक परिगयो, णिवडिउ जनकु वज्र को हयो ।
कारणु करै राउ मन कूरि, परिहस अगिणि वई तण पूरि ।।२४१।।
राणी काम भूत की गही, रमि कूवरी चली मुण ग्ही ।
डगमगाति डरपति डर लई, वेदि स्वानस्यारि बन वई ।।२४२।।
जणु गाडर विजुराई मेह, मलिण सडील पसीनी देहु ।
फुणि पिय भुज पजर सचरी, नागिणि जणकु महाविष भरी ।।२४३।।
करतौ राउ सरस रस केलि, सो भवभई महाविस वेलि ।
यह दुषु वह सुषु वरणै कौनु, पापिनि दियो धाइ जनु लौनु ।।२४४।।

श्लोक

नमृत न विष किंचित्, एषा मुक्ता वरांगणां ।
सैवामृतमयो रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ।।२४५।।

चौपई

मामर्‍णि लागी केम णरेस, जनु राषि सिनि भिहा वण भेस ।
अपत निलज्ज पापकी पुरी, डाइणो जणकु मुदी गहि जुरी ।।२४६।।

दोहा

तहि णरवै मन चितवै, पेषिवि नारि चरित्तु ।
देहु महातरु प्रभु तणौ, दुष महाघन सित्तु ।।२४७।।
हाहा एहु अणछु जगि कासु कहि जइ भासि ।
अपजस लाज पयासणो पावकु कम्मह रासि ।।२४८।।
ही कोहानलु तिय चरिउ देह वनंतरि लग्गु ।
चित्त विहगमु मुह्व तनौ उड्डिवि दह दिहि भग्गु ।।२४९।।

हुउ' आएमि मो वाल हिय याहि बिचारहु पोउ ।
पंजर मुक्कु समप्पि कहु, अण्ण समप्पउ जीउ ।।२५०।।

चौपई

राजा यशोधर द्वारा चिंतन—

तहि अवसर चिंतइ मन राउ, अब फुणि भयो मरण कौ दाउ ।
छाडिम राजु गेहु धनु मोगु, माणिणि कुटमु सरस रस भोगु ।।२५१।।

तपु करि सहमि परीसह धीर, भवभय भवनु निवारमि भीर ।
बिनु तप नही कम्मं कौ घातु, तारे भरात भयो परभात ।।२५२।।

तव चूल वाले रविउयो, अंबर तारागणु लुकि गयो ।
तीरणि चकवा मिले अणंदि, सूर राइ मनौ काटी बंदि ।।२५३।।

पंच सबद बाजे दरबार, बंभण पढहि वेद झुणकार ।
जसहरु सभा बैठ्यो आइ, जिसि दीठौ बैरा गुण जाइ ।।२५४।।

चन्द्रमती रानी का आगमन—

तहि अवसरि चन्द्रमती राणी, पूजि किश्न आसिकु लै पाणि ।
आई जहा जसोधरु राव, मोह कम्मु सुबळ परभाउ ।।२५५।।
आसिकु दयो राइ कै हाथ, पभण्यो चिरु जीवहि नरणाथ ।
माता चरण परयौ तब राउ, आई माता कियो पसाउ ।।२५६।।

यशोधर द्वारा स्वप्न वर्णन—

भणै राउ माता णिसुणेहु, भासमि सुपिणु कानु थिरु देहु ।
जैसो सुपिणु दीठ णिसि आजु, मानहु अवसि बिनासै राजु ।।२५७।।

चितंरु एकु महा परचंडु, किस्न अंग कर लीनै दंडु ।
चित्रसाल अंबर ते परयौ, सो भैभीतु पेषि हौ डर्यौ ।।२५८।।

णिसियरु भणै राइ संचरौ, स्यौं परिवारण गरुष्यौ करौ ।
जौ तपु करहित छाडमि आजु, ना तरु अवसि बिनासै राजु ।।२५९।।

मेरौ बचन राइ प्रतिपालि, जीतव ईछु लेहु तपु कालि ।
मै भास्यौ तपु करमि बिहाण, तब सुरु गयौ आपनै थान ।।२६०।।

हौ तपु करमि आइ ससि मती, जासु पसाइ काटमि भवगति ।
कलमलि माइ बचनु तब भन्यौ, जिनवर तणौ धम्मु अवगन्यौ ।।२६१।।

चन्द्रमती द्वारा शिक्षा—

ऐसो बचनु ण सुव मुह काढि, याहू तेर बवगनी बाढि।
सपिणु पेषि भैभीतु ण होहि, कुटमु मुयनु क्व लाग्यो तोहि ॥२६२॥
जै सुपिणहि डरपै वरवीर, समर केम सहहि सुव भीर।
डरपै हीनु दीनु कुवि रंकु, तू कुल मडनु राउ निसंकु ॥२६३॥
देविनि के दिन भारे पूत, महियलि मैं मदमाते भूत।
भवहि रैनि जोगिणि के ठाट, मढ मदिर वण तोरणि घाट ॥२६४॥
जो सुव बूझहि साची बात, मोहु रयणि आइ बर रात।
कचाइणि देवी तो तनी, ताको बलि पूजा करि घनी ॥२६५॥
महिस मेस अज गंडवराह, देवी की सुव पूज कराह।
भास्यौ दिय वर तनै पुराण, जिनवर धम्मु ण णिसुण्यो काण ॥२६६॥
हो इकु सर सुमु राजु अषड, कचाइणि राषौ भुव दड।
णिसुणि बचनु बोलै महिराउ, हा किमि मूढ भण्यौ जिय घाव ॥२६७॥

राजा द्वारा हिंसा का प्रतिरोध—

जीव घात जो उवजै धम्मु, तौको अवरु पाप को कम्मु।
जे ते लष चौरासी षाणि, ते सब कुटमु माइ तू जाणि ॥२६८॥
सो ण भवतरु गह्यौण माइ, सो पसु घातु करण किमि जाइ।
जीव घातु जो कोइ करै, णिहचै णरक माइ सो परै ॥२६९॥

श्लोक

नास्ति अर्हत्परो देवो, धर्म्मो नास्ति दया विना।
तप. परम निरग्रन्थो, एतत्सम्यक्त लक्षणं ॥२७०॥

चन्द्रमती द्वारा अनिष्ट निवारण का उपाय—

चन्द्रमती बोली विहसि, हीरा दतपंति झलकंति।
एकु बचनु सुव मेरो पारि, देवी तनी ण पूजा टारि ॥२७१॥
जैसे कुसरा भागै हू होइ, दुषु दालिद्र ण व्यापै कोइ।
वण कुक्कुट करवा वहि एकु, देवहि देह होइ दुष छेकु ॥२७२॥
फुणि तू तप लीजहि सुकुमार, बलि पूजा करि अबकी बार।
मान्यौ बचनु चन्द्रमति तनौ, माता माउ पयास्यौ घनौ ॥२७३॥

बण कूकुर कीनौ सुति टारि, पेषि रहसु मान्यौ परिवार ।
करत कुमाउ या राजा डरयौ, लै करि दीपु कुवामहु परयौ ।।२७४।।

आणि बूझि कीजै जिय घात, कवणु निवारै एर कहि जात ।
गयो राव देवी के गेह, परमेसुरी अपनी बलि लेय ।।२७५।।

हुयौ अचेतु रहसु मन माणि, जनु कुसु सची महा दुषाणि ।
चन्द्रमती बोली तहि थाणि, मोरैं भलौ हमारो माणि ।।२७६।।

तू कुलदेवी कुल की वारि, रख रावर तू लेहु उवारि ।
बहुत भगति करि रहसी देह, फुणि नंदणस्यौ चाली गेह ।।२७७।।

जसहर अस मैं कुमरु हकारि, कलस ढारि आसन बैसारी ।
दीनौ राजु पट्टु दलु देसु, आपुनु बण तप चल्यौ नरेसु ।।२७८।।

तहि ठा मारदत्त सुवि राइ, कर्म तनी गति कहण न जाइ ।
अमिय महादेवी ससि वयणि, सरस कंजदल दीरह णयणि ।।२७९।।

भूलीही न कुवि जकै हेत, जसहरु राउ सुन्यौ तपु लेतु ।
अकुलानी विहु लंघल गई, जिम णव बेलि पवन की हुई ।।२८०।।

जो ण होइ थिरु एकौ घरी, दिनु अथव तप रै कर मरी ।
सुनी न पेषी जो अनवबी, कतहि लैन केम तपु सदी ।।२८१।।

यह फुणि मानौ कछु विचारु, जिहि ते दीक्षा लेइ भतारु ।
जाणमि राजा भया उदास, देषी रयणि कूबरे पास ।।२८२।।

रानी अमृता की प्रार्थना—

पेषत मानु राइ को मल्यौ, ताते कंतु लैन तपु चल्यौ ।
जो राजा फिरि माडै राजु, मेरौ सकल विनासै काजु ।।२८३।।

ऐसौ जानि डिभ मनभरी, चवल आइ राइ पग परी ।
नयन कमल भरि छाड्यौ नीरु, विरह बाण घन घुम्यौ सरीर ।।२८४।।

भणै नाह हौ तेरी दासि, साई मोहि तजहि का पासि ।
मो तजि किम तप लेहु भतार, तौ विनु प्राण जाहि सुविमार ।।२८५।।

दोहरा

बालम जोबनु कुसुम वनु, कैम चले बबलाइ ।
सरस अवन विनु जलहु रहि, ता विनु कैम बुझाइ ।।२८६।।

बालम तुव महुवाल हुउ, तो बिनु एह अकद्ध ।
कै जरि वरि माटी भली, कैर तुमारै सद्ध ।।२८७।।

बालम तुम विनु रूवरी, लहियलि भारी होइ ।
सोता किझइ जणहु जगु धीरी घरै ण कोइ ।।२८८।।

बालम विनु किम भामिनि किम भामिनि विनु गेहु ।
दान विहीनो जेम घरु, सील विहीनो देहु ।।२८९।।

चौपई

रानी भनै जोरि द्वै हाथ, हौ तपु करमि तुमारै साथ ।
परि मो वचनु एकु प्रभु देह, भोजनु करहि हमारै गेह ।।२९०।।

दियवर भणहि वेद की आदि, वलि विषानु भोजन विनु वादि ।
ताते एहु बचनु प्रतिपालि, फुणि तुम हम तपु लीवौ कालि ।।२९१।।

रानी वचनु मोहि प्रभु रह्यौ, मानहु मोहु निसाचर गह्यौ ।
जनु पडि ठउना मेले सीस, भूली सवै पाछिली रीस ।।२९२।।

रानी चरितु रयणि जो रयौ, भाई मो सुपिनु हो भयो ।
भरम भुलानो ठगि सो लयो, माग्यौ बचनु नारि कहूं दयौ ।।२९३।।

रूपणि रवण कथा णिसुणेहु, मैटै कवनु कर्म की रेह ।
मानी राइ नारि की वात, भामिनि रोम हुलासी गात ।।२९४।।

रानी द्वारा जहर के लड्डू बनाना एवं राजा को खिलाना—

तब राणी अपनै घर गई, बोली सषी रसोइ ठई ।
लडू किये बहुत बिसु घालि, कछुकु तै वन दीनो चालि ।।२९५।।

हीन वात किम बरणमि और, लौपि सोधि करि दीनौ ठौर ।
जसहरु चन्द्रमती सु पहाणि, दोऊ जैव न वैठे आणि ।।२९६।।

लाडू आनि परोसे चापि, भोजन करत उठौ तनु कापि ।
ताकी उपमा दीजै कौन, भूमि चालु सौ लाग्यौ होन ।।२९७।।

जुर जाडे जहू घूम्यो अगु, भयौ नयन काणनि को भंगु ।
नसणी टूटि जीभ लठराण, चन्द्रमती के विकसे प्राण ।।२९८।।

वैदु वैदु करि राजा परयौ, अमिय महा दे को ज्यौ हस्यो ।
जौ राजा को जीवन होइ, तौ प्रभु मारै मोहि विगोइ ।।२९९।।

पापिणि भई आपने भेस, सिर मुकराइ दिये तिनि केस ।
पकरि जरक सी दीनौ दंत, णिग्गिण हूयौ आपनौ कंतु ॥३००॥

जसवै नंदनु आयौ धाइ, पितहि पेषि रह्यौ मुहु बाइ ।
विबस लोग समुझावहि तासु, जाणि राइ जग भौ को कासु ॥३०१॥

आदि अनादि भए अरु गए, आनैं कवनु किनिक निरमए ।
पाप पुण्य दुइ चलहि सघात, ऊरण काहू दीसै जात ॥३०२॥

सुपुरिसु किम रोवे मुहु बाइ, लघुता होइ दुवनु विहसाइ ।
लाग्यौ सोहि बरणि धक बंधु, जस मै राज धुरा धरि कंधु ॥३०३॥

अमिय महादे मोको धाहु, मोकाकी करि चाले नाहु ।
सो फुणि प्रभु समुझाइ राषि, जस मै राइ स कोयलु भाषि ॥३०४॥

माता जाणि न थिरु संसारु, बरजि रहायौ सबु परिवारु ।
जसहरु राउ चन्द्रमति आए, अरथी करि ले गए मसान ॥३०५॥

श्लोक

पर्थी गृहानिवर्त्तते, मसानेषु च बांधवः ।
सरीराग्निसंजुक्तं च पुन्न-पापं सम व्रजेत् ॥३०६॥

चौपई

किरिया करि नैन्हाइ सरीर, कुसुलै दियौ चूरु भरि नीरु ।
कीनी सयल मरे की रीति, भासो कथा गई जिम बीति ॥३०७॥

वस्तुबंधु

देस जयवरु अभयरुह गाम,आहासई गुण गहिरु मारिदत्त पहु ।
सुनि भवंतरि कम्माह विचित्र पाव पुन्न फल निसुनि ।
अंतर जानंतहू जसहर णिवइ कूकुरु भयौ अचेउ ।
संसारं बुहि हिंडियउ आहासमि भव भेउ ॥३०८॥

चौपई

पभणइ कवि पणविवि परमेस मारग सुतरण बेध उपदेस ।
णिसुणहु भव्व सुदिढु करि काणु, जसहुर राजा तनौ कहानु ॥३०९॥

जस मै राउ उज्जैनी करै, उपमा आपु इन्द्र की धरै ।
कुसुमावलि कुसम सर बेलि, ता समान मानै सुष केलि ॥३१०॥

यशोधर का मोर एवं चन्द्रमती का कुत्ता होना—

कूकुड हूयौ अबेयनु मापु, जसहर जानत कीनौ पापु ।
बरणौं कवनु मह्रा ममु घोरु, जसहरु राव भयौ मरि मोरु ।।३११।।
चन्द्रमती मरि कूकरु मइ, धरमति रमति मापुनु रई ।
एक दिवस विहि सर मधुजाणि, जस वैढोंवउ दीनौ आणि ।।३१२।।
स्वानु पेषि मन उपज्यो भाउ, जो लायौ तहू कीयौ पसाउ ।
णिसि दिनु बंध्यौ मंदिर रहै, पारधि जात बहूत मृग गहे ।।३१३।।
फुणि जस मैं प्रवलोयौ मोरु, मति सुरपु गुणु कहूत न ऊरु ।
सोलै मेल्यौ मंदिर माह. कौतिगु बहूत करै सो साह ।।३१४।।
नेवर धुनि सुनि चित्त कराइ, रानिनु बेलत यिवसु विहाइ ।
एक दिवस पावस घनघोरु, मंदिर सिषिर भयौ चढि मोरु ।।३१५।।
तहि भव सुमरि नुणि मन जाणि, सयलु लोग पेष्यौ पहिचाणि ।
चित्रसाल पेषी प्रापनी, प्रवलोइ कुबिज कस्यौ धनी ।।३१६।।
लो लगीव यन उपज्यौ षोहु, तिनहू परणि बढ्यौ करि कोहू ।
कियौ चरण चंचू को धाउ, तहि पापिनि गहि तोस्यौ पाउ ।।३१७।।
मारिदत्त लै भग्यौ परानु गयौ तहां बध्योहो स्वानु ।
तहि कूकर माता कै जीव, पकरि स्वानु मुहु तोरी गीव ।।३१८।।
सारि पास बेलतु हो राउ, धायी तिनहि छुडावन प्राउ ।
छाडै नही स्वानु रिस लयौ, राइ स्वान सिरु मंदिर रह्यौ ।।३१९।।

काला सर्प एवं मोर होना—

निकस्यौ साथ दुहू कौ जीव, मुयौ स्वानु दूजौ हरि गीव ।
सिहिस्यौ बैरु स्वानु करि मर्यौ, किश्नु भुजंगु छाइ प्रवतर्यौ ।।३२०।।
जाहौ भयौ सोजि मरि मोरु, पाव कम्मंभव भव तन ऊरु ।
तिणि फुणि बैरु पुराणौ सरचौ, देषत दीठि नागु संघरचौ ।।३२१।।
दोऊ परे तछ की भेट, ते भषि दोऊ दीनै पेट ।
गौहिन परचौ विधाता रुसि, मरि भुजंगु जल उपनौ सूसि ।।३२२।।

नृत्यांगना—

प्रधम कर्म सो कीनौ षीनु, सो जाहौ मरि उपज्यौ मीनु ।
णयरे उजैनी जस मैं तनी, नाचणि रूर तिलोतम बनी ।।३२३।।

कणक वरण श्रतिहर मुष जोति, पेषत मुनि रति पति सम होति ।
चंचल डोल विलोल विसाल, कोमल जनुकु पुष्प की माल ॥३२४॥
कुच कंचुकी वनी कसि अंग, फाटे तर कि भ्रमत बहु संग ।
कटनि मेषला बंधी तानि, जनकु कुमदी विधाता आणि ॥३२५॥
बहुत कुसुम लै बैनी गुही, जनु चंदन नागिनि आरुही ।
ताल पषावज बीना बंस, नेवर धुनि सुनि भुलहि हंस ॥३२६॥
अगनित आनै कला विनाना, अवसरु करि जल आइ न्हान ।
कोला करै सषिनुस्यो मिली, षिणमौ सुंसुमार सो गिली ॥३२७॥
हाहा वादु नगर मो भयौ, सुंसुमारु नाचनि गिलि गयौ ।
शिसुनि राउ आयौ नदि तीर, आवि जोग दुहु भयौ सरीर ॥३२८॥
धीवर बोलि बलायौ जारु, पकर्‌यौ तुसि मेलि मुहणारु ।
लाए पकरि वाहिरी तुसि, मारी लात लठा मुह घुसि ॥३२९॥
वरणौ कवनु महादुष षानि, दुष दिषराये नरक समानि ।
सहिए सोजि सहावै दई, तिस पुनि सो मरि छेरी भई ॥३३०॥
मारिदत्त सुनि भव भयभीति, कछु दिवस जब गए वितीत ।
जीव न लहै कर्म्म पहु ठालि, मीनु गह्यो मुष मारौ षालि ॥३३१॥
आवघ लात मुठी कनु हन्यौ, सुर गुर पहु दुष जाइ न गन्यौ ।
रोहौ भषि तिनि दीनौ ठोउ, जस मै ताको कियौ विगोउ ॥३३२॥
पिता मरिवि जो उपज्यौ मीनु, सोइ नाइ पिता कै दीनु ।
ग्रैसै धीवर भाषहि वेद, मूढण लहहि धर्म्म कौ भेदु ॥३३३॥
जीवण आइ कर्म बस परयौ, छेरी तनै गर्भु अवतर्‌यौ ।
जब तिरजंच बकेरी भयौ, मातहि रवत अज हण्यो ॥३३४॥
आपु वाज सो उपन्यौ आपु, मारिदत्त को मेटै पापु ।
पूरे दिवस भए जब पेट, एक दिवस प्रभु गयौ अषेट ॥३३५॥
तिहि दिन राजहि भई न घात, वाण हणी छेरी बरजात ।
पेष्यौ उदर बो करावालु, ताको काढि कियौ प्रतिपालु ॥३३६॥
दिय ब्राह्मण वर सन्यौ अजीनी जातु, बडो भयो डोलै पर घातु ।
तिहि अवसरि शिसुणहु धरि भाउ, गयो अहेरै जस मै राउ ॥३३७॥
हरिण रोझ सूकर हरि ससे, मारे जीव बहुत बण बसे ।
दिवकर भणहि शिसुणि प्रभु साधु, जसहूर राजा तनी सराधु ॥३३८॥

आजि पिता तनौ दिनु एहु, तासु नाम बहु भोजनु देहु।
जूठी वहतु अमिय की रासि, शोर सुवा वहू छेरे पासि ॥३३९॥
निरमलु वोकु अजौनी जातु, लहै सुरमु सुष आजि तात।
तिनकै कहत अजाघर प्राणि, दिठु करि मंदिर वाध्यौ तानि ॥३४०॥
अमिय महादेवी को गेह, वोकु क्षुधा तृस ब्याप्यौ देह।
तालू वेल पयासी घनी, तहि अजाभव सुमरी आपनी ॥३४१॥
देष्यौ कुटमु दासि अरु दासु, मारिदत्त दुषु कहिये कासु।
सवु मंदिरु पेष्यौ अवलोइ, तब पछितानैं कछू न होइ ॥३४२॥
ही तिरजचु पुकारौ कासु, कोइ देइ नपान्यौ घासु।
रूपिनि गाहनि अंसुनिरा घरी, अमीय महादे दीठित परी ॥३४३॥
तहि अवसरि रावर की हासि, पापिनि रानी तनी षवासि।
जोवन तरुण कनक समगात, कहति चली आपु समहु वात ॥३४४॥
दासि एक पभनै तनु मेरि, करि कटाषु मुहु नाक सकोरि।
रावर विगधि कहा रमि रही, अवर भनै तुम बात न लही ॥३४५॥
मरमु न जानहि कछू गवारी, राजा स्याव जलयौ मारि।
जसहर चन्द्रमती दिनु आजु, होइ बहुत भोजन कौ साजु ॥३४६॥
सरयौ मासु गधि साची एहा, अमिय महादेवी कै गेहा।
अवर दासी बोली अरगाई, कहमि वात परि कहण न जाइ ॥३४७॥
निसि दिनु सेवा जाकी कीज, सषी तासु किमि वुरी कहीज।
पाछै तुम्ह देहौ मारि, सुनैत सामि निकारै मारि ॥३४८॥
तऊ कहमि जो कहण न जोगु, अमिय महादे वाढ्यौ रोगु।
विसु दै भोजण मारयौ णाहु, फुनि कूवरो रयौ करि गाहु ॥३४९॥
षाइ अमिणु डाइनि अवतरि, पापिनि कुष्ट व्याधि सरि परी।
दुष्ट कर्म्म मो मारी चूरि, ताकी विगधि रही भरि पूरि ॥३५०॥
दासी तनौ वयनु सुनि कान, मैं घरतन पेष्यौ तहि थान।
तब बैठी देषी सोनारि, कोढिणी बिघना करी विचारि ॥३५१॥
पायो वेगि आपनो कियौ, जैसो वयो तिसौ लुनि लयौ।
मो सुषु भयौ नारि अवलोई, जिमि निर्धन धनु पाए होइ ॥३५२॥
मारिदत्त निसुनिहि धरि भाव, काटिउ एकु अभाकौ पाउ।
तीनि पाइसौ वपुरा रह्यौ, छूटै नही कर्म्म दिढु गह्यौ ॥३५३॥

कथा सुबोधिल निसुनहु माण, छेरी जो प्रभु मारी बाण ।
सो मरि देस महिषु अवतरयौ, अति प्रचंडु बल दीसै भर्यो ॥३५४॥

ता परि बणिकु कठारी घालि, लादि चलायौ मथुरी चालि ।
आयौ सो उजैणि नदि तीर, चलत पंथ कौ भई उमीर ॥३५५॥

सो तहि महिषु पैठि जल गयौ, राजा तनौ तुरंग महुणायो ।
तब थन वारणु कीनी सोक, पकरयौ महिषु घालि गल डोक ॥३५६॥

राजा आगै विणइ सेव, हण्यौ तुरंग तुमारौ देव ।
सुणि रिसाइ बोल्यौ महिराउ, याकौ करहु दुहेलौ चाउ ॥३५७॥

पाइ बांधित रखऊ आगि, तिम मारहु जिम जाइ ण भागि ।
छेरे सहुलै मारहु एहु, खाइ पिता आ जोकै देहु ॥३५८॥

फोरै काण एहु पग तीनि, देऊ पितर जिम पावहि पाणि ।
छेरी महिषु अगिनि सहि मरो, तब चूल दोऊ अवतरे ॥३५९॥

तहि अवसरि कर लाठी धारु, जस मै राय तनौ फुटवारु ।
दोऊ लए अणुपम जाणि, तिणि राजहि दिखराए आणि ॥३६०॥

कुक्कट जुगलु अनुपम पेषि, राच्यौ राव रंग मनु भेषि ।
बहुत मोहू सुष उपनौ दीठि, निज कर तरसी तिनकी पीठि ॥३६१॥

कोटवाल पभणै सुनि राइ, जूझू पेषि मनु घरौ सिहाइ ।
भनै राउ तल वर प्रतिपालि, देहु कूरु पंजर लै घालि ॥३६२॥

नंदन बन मेरैं वर तीर, लै चलि तांव चूल बलवीर ।
अज गामिनि भामिनि मो तनी, ता सहू कील करमि बन वनी ॥३६३॥

तहि कोतिगु पेषमि वन माह, सुफल कुसुम तपवर उन छाह ।
निसुनि बचनु तलवरु सिर णाइ, कुक्कुट लैवण पहुच्यौ जाइ ॥३६४॥

साटकु

अंबनि बकयं व चंदनघनं क किलि वल्लीहूरं ।
दरकासलि लवंग पूग कदली सेबि गुजर कामरं ॥
जाती चंपक मालती व कुसुमं मुंकरादि देरं ।
गायंती भूणि बीए किणरिउ लंप अवसं साणरं ॥३६५॥

कोटवालु धनु बनु अवलोइ, मन मोहनु सोहनु फिरि सोइ ।
तहि अवसरि सिव मंदिर पास, अहि असोय तरुवरु घन सा ॥३६६॥

भमिनु दिगंवर कीनै भनु, सुहड दीठु तस्वरु तरहानु ।
कीटवार मन चितयौ तहा, इहु निलज्जु वन आयौ कहा ।।३६७।।

देषि राउ मन कोपु करेइ, याकौ रिस मेरै सिर देइ ।
मुनिवरु वातनु लेमिउ चाटि, यावन ते कडमि निरघाटि ।।३६८।।

डिम भरयौ आयौ मुनि तीर, नमसि कालु कीनौ वरवीर ।
मुनिवरु लि जग सरोरुहु सूर, धर्म्म बुद्धि दीनी गुण पूर ।।३६९।।

सुनि मुनि वचनु सुहडु भनि कहै, कहियै धम्मु कवनु को लहौ ।
धर्म्म धनुषु सिव सूचे वाण, यहु भासिउ दीवर परवाण ।।३७०।।

मुनिवरु भनै नि सुनि कुटवार, पभणमि धर्म्म तनै विवहार ।
कहियै मुकति अमर पद थान, सुखु अनतु को कहण समानु ।।६७१।।

कहियै धम्मु अहिंसा आदि, जा विनु हिंडिउ आदि अनादि ।
मुनिवर वचन सुहु दुहु सि परयौ, मुनिवर वादि धषु महु परयौ ।।३७२।।

कवनु जीव को दुखु सहाइ, मूढ देहु माटिहि मिलि जाइ ।
पवन हि पवनु मिलै मन जाणि, किम मुनि भासहि झूठु बखाणि ।।३७३।।

कवन काज दुषु सहहि सरीरा, हाह अंगतन पहिरहि चीरा ।
वहूनिण जीव लेइ अवतारु, विनु कण कूटहि काइ पियारु ।।३७४।।

फुणि रिसि वोल्यौ भडणिसु सुणेहा, भिन्न जीव करि जाणहि देहा ।
तातै तपु करि काटहि पापु, जान्यौ देव जीव गुनु आपु ।।३७५।।

जौ परि पवनु गयौ मिलि यौनु, दुष सुष मूढ सहौ तौ कौनु ।
भलौ बुरौ तौ कीजइ काइ, तलवरही णाव कहि किम वाइ ।।३७६।।

जो गुण मुनि वरु भासी पेषि, सो गुणु तलवरु मेटइ दोषि ।
भणै सुभटु दरसण अंगु, मुनिवरु भासि करै तिण भंगु ।।३७७।।

तलवर झूठु भणै सवु जोरि, सो संसौ मुनि घालै तौरि ।
जितौ वादु मुनि तलवर कीणु, तेतौ किमि भासमि वुधि हीनु ।।३७८।।

तलवर तनौ रह्यौ मनु माणि, पादु सुपरौ सु दिढु मुणि आणि ।
उपमा बहुत केमकरि भनौ, किम घटाइ मुस की लीपनो ।।३७९।।

तलवरु भणै निसुनि गुरदेव, दै आइ सुकरमि किम सेव ।
भासै स मनु सुभट करि एहु, आठ मूल गुण दिढु करि लेहु ।।३८०।।

जेसा थयथय भासहि चीरा, भासु पंसाइ तरहि भव तीरा ।
ए प्रतिपालि धर्म्म की रासि, भागम कह्यौ जिनेसुर भासि ॥३८१॥
कुणि भद्र भखे जु तुम मुणि दयी, सो मन वचन काय मैं लयौ ।
परि मेरैं कुल मारग एक, मुनिवर निसुनि धर्म्म की टेक ॥३८२॥
पिता पढायौ थौ पर वातु, भायौ चल्यौ वंश जीव घातु ।
जसमैं राय तनौं कुटवारु, मार मि चोर जार वट पारु ॥३८३॥
भाख मि देव वयनु परिहारि, पालमि सयलु अहिंसा छाडि ।
निसुनि वयनु मुनिवर हसि परयौ, जान्यौ अबहु मूढमति भरयौ ॥३८४॥
निसुनि मूढ जिम सिर विनु देह, लवन विनु भोजनु नारि बिनु गेह ।
जिम मुहु हीण नयण अरु रांक, जिम बहु सून एक विनु अंक ॥३८५॥
धम्मु अहिंस धर्म्म की आदि, ता विनु मूढ धम्मु सबु बादि ।
अरु तू कहहि मूढ निरमंस, आइ चली हमारैं वंस ॥३८६॥
ताको उत्तरु पभनौ भाषि, चलैं कोढु जो सातौ साषि ।
कोइ वैदु मिलै लै मूरी, परि सो कोढु करैं सब दूरी ॥३८७॥
कहि कहि मूढ भायु गुण साधी, तूबैं भलौ किस हियै व्याधी ।
तंब चूल कौणि सुणहि वाता, जिम ए फिरे भवंतर साता ॥३८८॥
सहे महा दुष नरक समाना, तिम तू सहि है मूढ अयाना ।
तब चित चेति वात भड भनौ, कहि कहि सुगुरु कथा इण तनी ॥३८९॥
जय वर भनौ अमोघ रस वाणि, सुनि वर बीर कथा चिरकाणि ।
जसहरु एक अचेयण घात, भवगति फिरयौ भवंतर सात ॥३९०॥

श्लोक

श्रीमथेह उज्जैनिनामनगरे सुरोजसोभो नृपः ।
पत्नी चन्द्रमती सुतो जसधरः, नारी चरित्रे मृता ।
संपत्तो सिहि स्वान आवह फणी जुम्मोपि अंमचरः ।
छेली आयु स्ववीर्य छेल महिषो एवं पुनः कुक्कुटः ॥३९१॥
इनके कहु भंवतर वीरा, तंब चूल पंजर तो तीरा ।
अब नर जनमु तनौ पंचलारु, लोक कहहि काटि कुहु भारु ॥३९२॥
तलवर चेति भाव प्रगु लयौ, जनु रवि किरण पेषि तुम गयौ ।
सिसुनी कथा मुनीसुर तनी, कुक्कुट अब सुमरी आपनी ॥३९३॥

जान्यौ सयलु पाछिलौ कियौ, तब पछिताइ विसूरयौ हियौ ।
पायौ दुलहु महा गुण बोहु, जीव भषण को कियौ निरोधु ।।३९४।।

आई काल-लबधि सुभ घरी, भव मय वेलि कटी दुष भरी ।
तंब चूल पंजर वन माहु, कीनौ सव दुसुरहु रीसाहू ।।३९५।।

जस वैराउ रयणि वण गयौ, राणि हि सहितु सुरतु सुषु लयौ ।
कोक भाव रमि खणि सुजाणि, पंषि सवद सर मारे ताणि ।।३९६।।

तंब चूल आरति तजि मरे, कुसुमावली गर्भ औतरे ।
पायो धम्मु सुगुरु उपदेस, पोतै परी सु किल सुभ लेस ।।३९७।।

गुरु भव सायर तारण हारु, भव तरुवर कप्परण कुठारु ।
कीजहु भव्व सुगुरु को कह्यौ, जासु पसाई उत्तिम कुल लयौ ।।३९८।।

सिसु सारंग नयणि ससि वयणि, पिय सौमानि सुरत सुषु रयणि ।
कुसुमावली सहितु धरणाहु, गयौ णयरि मन भयौ उछाहु ।।३९९।।

पयडु असा पति तण सहि दारु, दिन दिन गर्भु जु णवै आणु ।
जिनवर तनौ धर्म परभाउ, पुत्र दोहलौ पुरै राउ ।।४००।।

कुंजर चालि सुहाई मद, पंडरु वयनु सरद जनु चंद ।
घुलहि णयण जनु जागी राति, मोरति अंगु वयण अरसाति ।।४०१।।

कररुह भाणै धरी जह्नाई, कोमल जघ जुयलु थहराइ ।
चंदन चंदु कुसुम रस वासु, सीयल सेज र वैज्यौ तासु ।।४०२।।

विरीषंडि डारै अघघाइ, सुनै कहानी सखिनु वुलाइ ।
अनुकमेण पूजे दस मास, भयौ जु पलु पूरी मन आस ।।४०३।।

अभयरुचि का जन्म—

मंगलु भयौ राय कौ गेह, सुह वेली सींची सुघ मैहु ।
हीण दीण पूरै दै दानु, सुयण लोग को कीनो मानु ।।४०४।।

इकु राजा सुन जनम्यौ आनु, ताको सुपु को कहुण समानु ।
कीनौ अभौ कुटमु रुचि भरयौ, ताते नामु अभैरुचि धरयौ ।।४०५।।

सुतर अभैमति कंचन देहा, अति सरूप जनु ससि की रेहा ।
मारिदत्त सुनि कथा पहाणि, दुसह खरी कर्म गति जानि ।।४०६।।

वलि जौ जानि सवनुत दई, बहू हुती सो माता भई ।
नंदनु हुतो जसोमति राउ, सो फिरी भयौ हमारो ताउ ।।४०७।।

सबु संसार विकवनु आखि, राजा चेति धर्म्म पहिचानि ।
बालक बड़े पिता कै गेहु, निर्मल अंग सकोमल देहु ।।४०८।।

लखण बतीस कणक सम अंगु, अनहु अंग सहु भयौ अनंगु ।
खेलत बाल कुं देख्यौ तात, मुद्रा पेषि भयौ सुषु गात ।।४०९।।

फुणि सुन्दरि देखी सुकुमाल, सब बल सबल णयण सुबिसाल ।
णावकांकेलि वेलि सम अंगु, चितवत जनु भयभीत कुरंगु ।।४१०।।

दुहु पेषि पभणी नरणाहु, देमि राजु अरु करमि विवाहु ।
मारिदत्त सुनि ग्रहु धरि भाउ, पारधि चल्यौ हमारौ ताउ ।।४११।।

स्वान पचहूँ लीने साथ, कणक डोर गहि अपनैं हाथ ।
पेषहु चरितु दई को आनि, डाहिणि दिसि तबरु तरहाणु ।।४१२।।

मुनि दर्शन—

बिरकत भाव मुक्ति मन इठु, दीनैं ध्यानु मुनी सुदीठु ।
पभणै राउ कोप आतुरयौ, नगिनु दीठु किम मेरी परयौ ।।४१३।।

निर्धनु मलिनु अमंगलु एहु, दीवबरणिउ सदूबर देहु ।
सनमुख णगिन रह्यौ दै ध्यानु, या सम मो असगुण नहि आनु ।।४१४

याकौ मुषु देषत सबु जाइ, अण चीतीउ किम देख्यौ आइ ।
अरु मै बात पत्याई माण, भैंट बुरेस्यौ होइ अयाण ।।४१५।।

सब कूकर मेले मुणि तीर, ध्याए वण जिम लए समीर ।
मुनिवर नीरे मंडल जाइ, समहुइ रहे सीसु धरि लाइ ।।४१६।।

गोबर्द्धन सेठ—

तब मन को पुन सक्यो सहारी, धायौ राउ काढि तरवारि ।
तहि अवसर गोवरधनु सेठि, जामन अटल धंध परमैठि ।।४१७।।

अनिवरु अंतरु कीनौ आणि, जस मै तनो परम हितु जानि ।
पभनै तू जि अजिम कौ राउ, मुनिवर उपरि करहि किम घाउ ।।४१८।।

पणमहि चरण वेगि तजि माहु, मुनिवर तेज पुंज गमाहु ।
अनिवर वयणु निसुणि महिपालु, अनैं मिज किम जंपहि बालु ।।४१९।।

मुनि की आहिण मांगु उठाइ, यासिर करमि पसम की मानू ।
तू जो सहु पाल अंबा कहही, मांनहु मेरी भरमु ण सहहि ।।४२०।।

लियो मुणि दिय बरह पुराण, इनके बचन न सुनियहि काण ।
मेरे कूकुर राखे कीलि, अबय करज्यो कणकु सो लील ।।४२१।।
ऐसो बचनु राइ जब भन्यो, हा हा पभणि वनिक सिर धुन्यो ।
नरवै मूढ राज मद भरे, भूली बात कहहि बावरे ।।४२२।।

मुनि के गुणों का वर्णन—

मुनिवर सम को अवरु पहाण, वाको गुणनि सुणिहि दै कानि ।
मलिन देह अंतर मल हीनु, तिय ण संगु सिव भामिनि लीनु ।।४२३।।
निर्धनुहै परि धनहि न अंतु, तीन रयण गही रह्यौ महंतु ।
रोस हीनु परिहन्यौ अनंगु, जो रवि परै तम रहै न अंगु ।।४२४।।
षीण सरीर अतुल वल जाणि, को तप तेज कहै परवाणि ।
वयनु पेषि सुष उपजै गात, अस गुण करै नरक जनु जात ।।४२५।।
यह कलिंग नरवै सुपहानु, या समान राउ न होतउ आनु ।
तसकर कारण छाडिउ राजु, तजि आरंभु कियौ तप काजु ।।४२६।।
अरु जे ते सावज वणवास, जणते रहहि सदा मुनि पास ।
ता ऊपर किम घालहि घाउ, किम वे काज वढावहि पाउ ।।४२७।।
सुर नर खयर फनीसुर जिते, इणकी सेव करहि सब तितै ।
माया मोहु ण व्यापै सोकु, नान नयण सूझै तिर लोकु ।।४२८।।
जिन विनु काज वढावहि पापु, पणवहि चरण छाडि मन दापु ।
वनिवर तनी राव सुनि बात, चेत्यौ धरौ सकुचि करि गात ।।४२९।।

राजा द्वारा मुनि भक्ति—

मन विचार करि उपसम भाउ, मुनिवर चरण परयौ महिराउ ।
रागु रोसु अरु जिन वसि कियौ, धर्म्म वृद्धि भनि आसिषु दियौ ।।४३०।।
दूजो धम्मु पापु पै जाउ, यह मेरी आसिक को भाउ ।
मुनिवर बचनु राउ सुनि काण, तब नरवै लाग्यो पछितान ।।४३१।।
इण विनु एकु न कीनी रोस, करु उचाइ मो दई असीस ।
या सम महियलि साधु ण आनु, इणि पर जान्यौ आपु समानु ।।४३२।।
मेरी जेम पराछितु जाइ, सीसु काटि लै पर समि पाइ ।
मुनिवर भन्यो नि सुनि महिपाल, किम मन चितै मरनु अकाल ।।४३३।।

काटहि कीर केम तिस बाबु, कातु बाक कहि बाइ रु बाबु ।
किम परवतु मतु तिम बाणि, बचनु असोतु हमारो जाणि ॥४३४॥

जब यहु वचनु मुनीश्वर कह्यौ, मरते बेरि वचकि चित रह्यौ ।
सुनि कल्याण मित्र मुख बाणि, मन महु बात भई किम आणि ॥४३५॥

बणिवड भयौ राय मित्रलोह, किलिक बात जो जाणी एह ।
भई होइवी बरतति बहै, मुनिवच तिहु लोक की कहै ॥४३६॥

माता पिता पितर तो तनै, जो बूझै सो मुनि बह भनै ।
राजा तनौ गर्व गलि गयौ, बूझै वयनु आतुरो भयो ॥४३७॥

राजा द्वारा पूर्व भव जानने की इच्छा—

राउ जसोधु पिता सविमति, कहि मुनिवर जिनकी भवगती ।
जसहर अमिय महादे राणि, भए केम तिम संसौ भानि ॥४३८॥

मुनि द्वारा कथन—

सुनि मुनि वयण नारि मन चूरु, भासै सुमण सरोरुह सूरु ।
ब्योरौ कह्यौ भई जिम बात, जैसैं फिरे भवंतर सात ॥४३९॥

चन्द्रमती अरु तेरो ताउ, कियौ अचेयण कुक्कुट घाउ ।
होतैं तासु पाप के लए, अभैकुमार अभैमति भए ॥४४०॥

सिरस कुसुम सम कोमल देह, ते दोऊ पैलहि तुव गेह ।
भख्यौ अमिषु सेयौ परदारु, अरु विसु दै मारयौ भरतारु ॥४४१॥

कोढिनि भई महा दुखभरी, पंचम नरक जाइ अवतरी ।
सो तू अमिय महादे जाणि, तेरी माय पाप की खाणि ॥४४२॥

तो सौ भवण भवति गति कही, जिम जिनि करी तेम तिणि लही ।
यहु संसारु जीव करि भरयौ, कर्म कुलाल कमठ वस परयौ ॥४४३॥

बानी गढै घडै पुनि भानि, नर थैं जलद पटल वपु जाणि ।
पुरिस सीहु सुनि जस मै राइ, बिनु जिन धर्मंहि सुखु ण लहाइ ॥४४४॥

भव ब्योरो निसुण्यौ बरवीर, हा हा भणि धर हुल्यौ सरीर ।
चेतु लागि मुनिवर पग परयौ, मन विलखाइ हियौ गहु भरयौ ॥४४५॥

अमु टूटहि कंपइ देहु, जनु धर आयो बरसै मेहु ।
जौ जहु धापुण जाली धाइ, तव लगि तनु दै लिहु बसराइ ॥४४६॥

तब पन फरहि पुरंदर देव, अरु चक्के स पयाहि सेव ।
कहि कल्याण मिश्र पुण्य गेह, सूरि सुदत्त केषि तपु देहु ।।४४७।।

तहि अवसरि प्रभु तनौ पयासु, कूमयौ जाइ जहु रनवासु ।
किम सिगाह करहु वरनारि, यौवन गयौ भयौ तप धारि ।।४४८।।

किम कसि कंचुकि पहिरहु अंग, बहुरिण नाहु मिलै रति रंग ।
किम तण पहिरहु दक्षिरण चीर, किम मंडहु आभरण सरीर ।।४४६।।

कुंकुम रेह करहु किम वानि, केम कसनि कटि बंधहु तानि ।
अरु किम चलहु समोरति देहं, फिरिरण नाहु आवइ सगेह ।।४५०।।

अंजहू नयण केम सुहिणाल, वास सुगंध कुसुम की माल ।
अरु किम नेवर चलहु बजाइ, करि कटाषु किम मिल बहू भाइ ।।४५१।।

किम रचि वैनी बंधुहु फूल, सेज रचहू किम कोमल तूल ।
किम कर बीन बजावहु नारि, अरु किम विहसहु बयनु पसारि ।।४५२।।

अरु किम चदन चरचऊ अगु, कंत कियो सजम सिरि संगु ।
स कहुत जाइ वरो रहु णाऊ, सोतलु करहु बिरह तन दाऊ ।।४५३।।

जो कछु व्याऊ करै करतारु, तौ अब कीव मिलै भरतारु ।
चरण रतनौ वयनु सुनि काण, सब रानी लागी अकुलाण ।।४५४।।

अंतेवर बहू कीनौ सोरु, जनु निसिव तकरणु पेष्यौ चोरु ।
मधुकर मिले पवरण सुष वास, विरजति तिनहि चली पिय पास ।।४५५।।

जिहि वन सवरण पास, सुपियरु, तपु-मामत देष्यौ भरतार ।
बहुत भाति समुझायौ नाहु, परि तप ऊपर तजै ण माहु ।।४५६।।

जो मतिअसहै वहै बयारि, सकै हौनु किम परवतु टारि ।
तोरचौ मोहु कर्म को हेतु, हम फुणि सुण्यौ पिता तपु लेतु ।।४५७।।

रथ चढि वीरु वहिरिण वन गए, किंकर बहुत साथ करि लए ।
दरसनु पेषि मुनिसर तनौ, तब हम भौ सुमरचौ आपणौ ।।४५८।।

कुसुमावली हमारी माइ, ताकी छारि परे मुरझाइ ।
सींचि पवण जल चेयरण लही, अपनै मुहु अपनी भव कही ।।४५६।।

वस्तुबन्ध

हुउ जि जसहर बंद मै अम्हे पुणु गेह रहे ।
वितहि मरिबिदोविसिहि साण पसइ ।

तब्बावयह लिखुइ जाही कवि यह लिखु, जलह ।
जलचर छोनी जासु यहु महि तुमहु भूर महा ।
तब गूल ताहु करि तहि, हम ता रहाइ त्रिपत्त ॥४६०॥

सो विहि कुक्कुडु हयौ यशेहु, हिंसिव जाल, भवंतर लेहु ।
पुनु माइ तुव देवत फिरै, ते हम जीव बहिलि भवतरे ॥४६१॥

अब तपु दोऊ करहि अलेउ, मनधरि एकु जिनेस्वर देउ ।
भरिणवरु भनै सकोमल भास, निसुनि कुमार वयनु मो पास ॥४६२॥

लेह महातप तेरौ ताउ, तू कुमार कीनो महिराउ ।
बालक वयनु पिता को पालि, तौ निवहे कुल केरी चालि ॥४६३॥

पुत्र न करहि पिता की आन, तौ न काजु सीझै परवाण ।
लछनु रामु भयौ परचंड, पिता वचनु सेयौ बन खंडु ॥४६४॥

ताते राजु करहु दिन चारि, फुनि तपु लीजहु काजु विचारि ।
राजु सकति करिमो कहू दयौ, जस वे वनिक दुहु तपु लयौ ॥४६५॥

कुसुमावली अरजिका भई, बहुत नारि सहू दिष्या लई ।
मै दिन चारि राजु घर करयौ फुनि हँ भाइ हि सौ परिहरयौ ॥४६६॥

गए सुदत्त सूरि मुनि पास, जो तप तेज सह बनवास ।
नमसिकारु करि मागी दीखि, तब सुदत्त गुरु दीनी सीख ॥४६७॥

तुम दोऊ बालक सुकुमाल, कोमल जिसे पंक के नाल ।
पंचम महाव्रत दूसहं धरे, ते तुम पास जाहि किम धरे ॥४६८॥

जोग त्रिकाल देहि किम धीर, कैम परीसह सहहि सरीर ।
पाच मास किम सहहिस पास, लहि कुमार किम सहहि पियास ॥४६९॥

जब लगि दोऊ समरथ होऊ, अनुव्रत धरहु कुमर दलि कोहु ।
स गुर बचन सुनि कुमरु कुमारि, लीनौ तपु आभरण उतारि ॥४७०॥

दोऊ साहु बीत्यौ मो मानु, सुख दुख तिणहु मु एक समान ।
पोषहि भावनु बारहु अंग, निसि दिनु रहहि गुरु के संग ॥४७१॥

जिनवर मंदल तीरथ थान, संजम राखत पंच पुराण ।
करत विहार कम्मू सुनि राइ, नयरि तुमारी पहुचे आइ ॥४७२॥

गुरु उपदेस चले निरखंत, भोजन निमित नगर के पंथ ।
तुव किंकर लैते बरी थान, गहिलाए देवी के थान ॥४७३॥

हुन तू बैठो देख्यो राइ, जनु ससि अंबर उदी कराइ।
तुम प्रतिगहु करि बूझी बात, मै सब कही भयो सुष गात ॥४७४॥
देवी सुनि तई गुरु पासि, मारिदत्त तिम पडडी भासि।
को काको सबु जाणहि बंधु, मानसु मूढ ए केतई अंधु ॥४७५॥
कबहु जियहि ए लाग्यौ चेतु, सो गति फिरयो भवंतर लेतु।
मारिदत्त राजा सुषहाए, निसुन्यो असहूर तनो पुराणु ॥४७६॥

मारिदत्त का पापों से भयभीत होना—

चिमक्यौ राव पाप डर लयो, विसु सौं उतरि स वनु को गयो।
पाइ परयो जोगी अरु राइ, देवी बहुत विमन पछिताइ ॥४७७॥
मारिदत्त न खेवर वीरु, लयौ उसास नवरण भरि नीरु।
निदि अपनीको भासै वात, राषि राषि जब वर जगतात ॥४७८॥
नरक परत राषहि परचंड, भवगति सायर तरण तरंड।
दे तपु मोहि न्यौ सुर काल, वार वार विनयौ महिपाल ॥४७९॥

दोहरा

तहि मुनि सूरि सुदत्त गुरु, जान्यो अवधि प्रमाण।
नर वै अभय कुमार लहु, संबोहिउ तहि थान ॥४८०॥

सुदत्त मुनि का देवी के मन्दिर में आगमन—

निसुनहु कथा अपूरब आन, मुनि आयो देवी को थान।
मुद्रा पेषि अचम्यो राउ, आसनु छांडि करयौ पसबाउ ॥४८१॥
पाइनु अमेरुचि परयो, नमसि कालु जोगी सुर करयो।
देवी तनो गवुं गलि गयो, अपनो थानु सुहाउठयो ॥४८२॥
मुंड रुंड सब कीनो दूरि, कीनो गेहु कनको पूरि।
अंगनु चदन राष्यौ लोपि, चोया कु कुह पूरी सीपि ॥४८३॥
बहुत कुसुम तरु वदन वार, भवर वास गुंजरहि अपार।
फेरि रूपु तन अति सुन्दरि, रोहिणि जनकु सुध्यं ते धरि ॥४८४॥
जीव जुगल सब दे नै मेलि, मंगलु घोसिउ माडे केलि।
मारिदत्त पभणैं गुण रासि, मो सहु देव भवंत भासि ॥४८५॥
पभनहु स्वामि भव आपनी, गोवरधन अरु योगी तनी।
राउ जसोधु चन्द्रमति राणि, देवी की सब कहहु बखाणि ॥४८६॥

पूर्व भवों के बारे में प्रश्न—

कुसुमावलि अरु बन मैं राउ, मेरी अरु जिन जननी ताउ।
यह जिय महिष तुरंग मुहयो, अभिय महादै कूबज कूरचो ॥४८७॥
सरवमकी कांकी अवतरयो, आसि सुदत्त पोच रस भरयो।
मारिदत्त मुनि भासै भूरि, संसौ हुरमि चित्त को दूरि ॥४८८॥

सुदत्त मुनि द्वारा वर्णन—

गंधवु देसु अरु पुरु गंधवु, पेषत हुरै अमर को गवु।
तहि वैंध्रवु राउ परचंडु, एक छत्र भुंजै महिषंड ॥४८९॥
विभ्रसिरी भाँमिनि गुण रेह, रामचंद्र घरि सीता जेह।
गंधर्व सेनु पुनु तिन जन्यो, अति सुरुपु जनु सुरपति बन्यो ॥४९०॥
गंधर्वा पुत्री मृग नयनि अति मुख जोति चंदु जनु रयणि।
मंत्री रामु नामु प्रभु तनो, राज मंत्रु जो जानै घनो ॥४९१॥
प्रबला तासु कणक सम देह, बालक हरिण नयण ससि लेह।
नंदन बेवि पयड सरीर, नामु जितारि भीउ वर वीर ॥४९२॥
गंधर्वा सुव राजा तनी, सो जितारि ब्याही तन बनी।
सो देवर रमि चूरी पाप, दुसह आणि मयन की ताप ॥४९३॥
गंधवु राजा पारधि गयो, तहि बैराग भाव मन भयो।
सुव वैंध्रवहि दीनो राजु, आपुनु कियो परम तप काजु ॥४९४॥
अंतकाल करि सुव पर मोह, सो मरिण रवै भयो जसोह।
तहि जित सब पेषि रतवारि, करि बैरागु महा पुपारि ॥४९५॥
जिनवर धर्म्म पालि गुन षाणि, राउ जसोधर उपन्यो आनि।
गंधर्व बहिणि तनी सुनि बात, तपु करि सही परीषहु गात ॥४९६॥
करि सन्यासु काटि भव पापु, मारिदत्त सो जाणहि आपु।
गंधर्वा जिनि देवर रयो, समकी अन्त काल तपु लयो ॥४९७॥
सो आरि अमिय महादे भई, रमि कूबरी नरक सो गई।
भीमरथी आयर की सिरी, कुल कलंकु कीनो अति फिरी ॥४९८॥
सीलु मुंजि अपजसु संग्रही, पापी जन्मु कुमित्र को सही।
मंत्री रामु नयन ससि नेह, तपु करि संजम सो ही देह ॥४९९॥
पयड पमरि वीक अवतरे, वर्णौ कहा महागुन भरे।
जिनवर पुनि धम्मु संहिधानि, सो जमै कुसुमावलि जानि ॥५००॥

जो ही सबति चंद्रमति तनी, मरिवि तुरंगु जाय उपनी ।
सो सखिरै महिषनो हुयौ, सो मिथला पुरि बाछौ भयौ ॥५०१॥
अंत काल आपर मुनि काण, तिनि आरते तजि तिपे पराण ।
रुपि निखनि तुमारी राइ, ताकै उदर अवतरयौ आइ ॥५०२॥
राज धुरांधर वरिहे सोइ, पुण्ण पुरिषु तेरै घर होइ ।
तेरौ पिता कर्म्म कौ लयौ, चंडमारि देवी सो भयौ ॥५०३॥
सील निहाण तुमारी माइ, सो मरि जोगी उपन्यो आइ ।
जसवंधुरु अवनी कौ राउ, राइ जसोध तनी जो ताउ ॥५०४॥
सो सुहझाण चयौ तजि मोहु, जिनवर धर्म्म तनौ लहि बोहू ।
देसु कलिंग राउ भगदंतु, कुंद लता भामिनि कौ कंतु ॥५०५॥
धण कण कचण दीसै भन्यौ, जसवंधुरु तनरुहु अवतन्यौ ।
नामु सुदत्तु राउ गुण गेहू, सो मुनिवर हौ आयौ एहू ॥५०६॥
राय जसोध तनौ सुपहाण, मंत्री राज गेह परधाणु ।
आयु अंत सुमिरि परमेठि, सा जानै गोवरधन सेठि ॥५०७॥
मारिदत्त जो बूझौ मोहि, सब समुझई पयासो तोहि ।
अवधि णयण जान्यौ परमानु, मै भास्यौ भव भवण कहाणु ॥५०८॥
तुव पुर पंच वार फिरि गयौ, तौ सौ राइण दरसनु भयौ ।
काल लवधि जब आवै राइ, तब ही सुभ गति जीउ लहाइ ॥५०९॥

मारिदत्त द्वारा दीक्षा—

मारिदत्त तपु लयो बिचारि, पंच मूठि सिर केस उपारि ।
जोगी सु गुर तनै पग परयौ, सब पाखंड भाउ परिहरयौ ॥५१०॥
भनै दियंबर मो तपु देहु, दया गेह मत विरमु करेहू ।
चवे सुगुरु मुनि भैरौनंद, कौलागम रयणायर चंद ॥५११॥

सुदत्त का भैरवानन्द को उपदेश—

दिन बाईस तुमारी आयु, वेगि धर्म्म कौ करहि उपाउ ।
तब जोगी मन लाग्यौ चेतु, चित यौ आपु जीव कौ हेतु ॥५१२॥
परिहरि पानु पानु सबु भोगु, लै सन्यासु दियौ दिढ जोगु ।
बारह अनुपेया मन भाइ, मुअं तृतीय सुर उपन्यौ जाइ ॥५१३॥
ठौडी भई देवि कर जोरि, सा मि नरक मो जात बहोरि ।
मो वीराधि वीर तपु देह, भव सायर बूडत गहि लेह ॥५१४॥

कुसुमबाण मारिनि मन चूर, जासैं सुयश सरोरुह सूर ।
सो कहु कहुणु जोसु सुर थारि, समिकत रयणु लेहु चितु धारि ।।५१५।।

स्वयं देवी द्वारा अहिंसा धर्म पालन करना—

जीव घात को छाडहि भाव, जे पूजहि तिन वरजि रहाउ ।
तजहि आपनी पहिली बालि, जिनवर तनी धम्मु प्रतिपालि ।।५१६।।
जीव घातु सब देवी छाडि, आपुनु फिरी नगर महु टाडि ।
जो मेरै मडफ बलि देइ, ताके घर किनु देवी लेइ ।।५१७।।
लि सुनहू सबै नगर नर नारि, मो पूजत घर देमि उजारि ।
जो कहि है देवी बलि लेहु, कुसरंगि करिहौ ताके गेहु ।।५१८।।
मेरै नाम बजावै तूरु, ताकै पेट उठै दिन सूरु ।
समिकत रयनु देवि ले रही, परिहरि कुगति सुगति सुरि गई ।।५१९।।
लयौ महाव्रतु अभय कुमार, भए बहुत नर समिकत धार ।
पढम सुग्र भगिनी अरु वीरु, भए अमर सो सुद्ध सरीर ।।५२०।।
मारिदत्तु जस मैं अरु सेठि, ध्याइ ध्याइनु मन धरि परमेठि ।
करि तपु दुद्धरु उपनौ देव, सुकिल लेस सुर हुर भय लेव ।।५२१।।
सूरि सुदत्तु नाम सुपहाणु, चढि संमेदि सिहिरि दै ध्यानु ।
निद्दलि कर्म्म छीनि भवपति, सप्तम सुग्र भयो सुर पति ।।५२२।।
अनुकमेण पावहि सिव ठानु, गुण समूह को कहण समानु ।
जसहर चरितु वणि सबु कह्यौ, दया धम्मु फुणि सुन नर मह्यौ ।।५२३।।
मंगलु करौ जिनेसरु वीरु, तिमुवन निर्म्मल होइ सरीरु ।
निसुनहु नामु धामु सुभ थानु, जिहि निवसत मै ठयो पुराणु ।।५२४।।

ग्रंथ प्रशस्ति—

गंग जमुन विच अंतर वेलि, सुष समूह सुर मानहि केलि ।
नयरि कैलई जनु सुर पुरी, निवसै धनी छतीसो कुरी ।।५२५।।
अभयचंदु तह राउ निसंकु, जनुकु सुषोडस कला मयंकु ।
परजा दुषी न दीसै कोइ, घर घर वीध बधाऊ होइ ।।५२६।।
श्रावग बहुत बसहि जहि गाम, जनु धासि को दीनो सियराम ।
पोमावे पुर बर सुष सील, सुर समान नर मानहि कील ।।५२७।।
सा कन्हुर सुतु मारन साहु, जिनि धनुष रचि लियो जसलाहु ।
जस रानी पदमु सुभ ठोष, पीछ महापुरु हूवौ मोष ।।५२८।।
अनगरु चैतनुष अरु सोहाव, ब्यारथौ माव बसावन हारु ।
तासु नामु पडुवा सूरि तान, राक काज आन्यौ सुरिताणु ।।५२९।।

तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससि हर रौहिनि रति काम ।
सोलु महा तहि कीनौ पोषि, नंदन तीनि प्रवतरे कोषि ।।५३०।।
मेघु मेघुपर सूबस रासि, जनु कुसु सूर ससि सुकु प्रकासि ।
जेठौ पेघु साहू सुपहाणु, जासु नाम मैं ठयौ पुराणु ।।५३१।।
पुत्र हेतु जानै उपगारु, जिनवर जगिन करावरण हारु ।
बहुत गोठि लै चाल्यौ साथ, करी जात सिरी पारस णाथ ।।५३२।।
परचि बहुतु ग्रनु राव न थान, घर ग्रायौ दियौ भोयरा दाण ।
ताकौ पुत्र रत्नु अवतर्यौ, रयनायरु गुरण दीसै भर्यौ ।।५३३।।
भाव भगति करि दीजै दानु, कीजै भवन गुणी कौ मानु ।
जौ कुटंबु वरणौ विस्तरी, वाढै कथा अवर दूसरी ।।५३४।।
राम सुतनु कवि गारवदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु ।
वसत फफोतू पुर सुभ ठौर, श्रावग बहुत गुणी जहि ग्रौर ।।५३५।।

रचना काल—

वसुविहु पूजिनि नेस्वर एहानु, लै ग्रभाह दिन सुनहि पुरानु ।
संवतु पंद्रहसै इकप्रसी, भादौ सुकिल श्रवरण द्वादसी ।।५३६।।
सुर गुरुवारु करणु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली ।
जसहर कथा कही सव भासि, सिष लै भाव परम गुरपासि ।।५३७।।
वादिराज भासी गुर मूरि, तासु छाहु पभनी भरि पूरि ।
सयलु संघु नंदौ सुष पूरु, जब लगि गंग जलधि ससि सुरु ।।५३८।।
मेघ माल बरसै ग्रसरार, वोघ वधाए मंगलवार ।
निसुनिवि व सम तला वहू षोरि, हीनु ग्रधिक सो लीजहु जोरि ।।५३९।।
पढै गुणै लिषि देई लिषाइ, अरु मूरिष सौ कहौ सिषाइ ।
ता गुरण वरिण वहुतु कवि कहै, पुत्र जनमु सुष संपति लहै ।।५४०।।

इति जसोधर चोपई समाप्तः ।। संवत् १६३० मागसर सुदि ११ वार दीतवार ।।

□ □ □

५

कविवर ठक्कुरसी

भक्ति कालीन कवियों में कविवर ठक्कुरसी का नाम उल्लेखनीय है। उनकी पञ्चेन्द्रिय बेलि एवं कृपण छन्द बहु चर्चित कृतियां रही हैं। इनका परिचय प्रायः सभी विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में देने का प्रयास किया है। लेकिन फिर भी जो स्थान इन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलना चाहिए था वह अभी तक नहीं मिल सका है। इसके कई कारण हो सकते हैं। सर्वप्रथम पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने "जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास" में इनकी एक कृति कृपण चरित्र का परिचय दिया था। इसके पश्चात् डा० कामता प्रसाद जैन ने "हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" नामक पुस्तक में कवि की कृपण चरित्र के अतिरिक्त पञ्चेन्द्रिय बेलि का भी परिचय उपलब्ध कराया था।

सन् १९४७ से ही राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियों का कार्य प्रारम्भ होने से गुटकों से अन्य कवियों के साथ-साथ ठक्कुरसी की रचनाओं की भी उपलब्धि होने लगी और प्रथम भाग से लेकर पञ्चम भाग तक इनकी कृतियों का नामोल्लेख होता रहा इससे विद्वानों को कवि की रचनाओं का नामोल्लेख ही नहीं किन्तु परिचय भी प्राप्त होता रहा। पं० परमानन्द जी शास्त्री देहली का पहिले अनेकान्त में और फिर "तीर्थंकर महावीर स्मृति ग्रन्थ" में कवि पर एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें उसकी ७ रचनाओं का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। इससे कवि की ओर विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा। इसी तरह और भी जैन विद्वान कवि के सम्बन्ध में लिखते रहे हैं। इतिहास में स्थान देने वालों में डा० प्रेमसागर जैन का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' में कवि के सम्बन्ध में सामान्य रूप से मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

जैन विद्वानों के अतिरिक्त जैनेतर विद्वानों में डा० शिवप्रसाद सिंह का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" में कवि की तीन

रचनाओं का परिचय देते हुए कवि की इन कृतियों को राजस्थानी एवं ब्रज भाषा से प्रभावित कृतियां बतलायी।

लेकिन इतना होने पर भी कवि को जो स्थान एवं सम्मान मिलना चाहिए था वह उसे प्राप्त नहीं हो सका। इसका प्रमुख कारण भी वही है जो अन्य कवियों के सम्बन्ध में कहा जाता है।

ठक्कुरसी राजस्थान के ढूंढाहड क्षेत्र के कवि थे। इन्होंने स्वयं ने अपनी कृति "मेघमाला कहा" में ढूंढाहड शब्द का उल्लेख किया है और चम्पावती (चाटसू) को उस प्रदेश का नगर लिखा है।[1] कवि चम्पावती के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम घेल्ह था। ये स्वयं भी कवि थे जिसका उल्लेख कवि ने अपनी कितनी ही रचनाओं में किया है। घेल्ह कवि की अभी तक की रचनाएँ "बुद्धि प्रकाश एवं विशाल कीर्ति गीत" उपलब्ध हो सकी हैं। दोनों ही रचनाएँ लघु रचनाएँ हैं। ठक्कुरसी को कवित्व वंश परम्परा से प्राप्त था। ये जाति से खण्डेलवाल दि० जैन थे। इनका गोत्र पहाड़िया था। स्वय कवि ने अपने आपको पहाड़िया वंश शिरोमणि लिखा है।[2] कवि की माता भी बड़ी धर्मात्मा थी। इसलिए पूरे घर के संस्कार धार्मिक विचारधारा वाले थे।

ठक्कुरसी संभवत: व्यापार करते थे तथा राज्य सेवा मे वे नहीं थे। यद्यपि कवि ने चम्पावती के शासक 'रामचन्द्र' के नाम का उल्लेख किया है लेकिन उससे ऐसा प्रतीत नही होता कि वे राज्य में किसी ऊँचे पद पर काम करते हों। कवि का जन्म कब हुआ, उसकी बाल्यावस्था एवं युवावस्था कैसे बीती, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है और न कवि ने स्वयं ने ही अपने जीवन के बारे में कुछ लिखा है। कवि का वैवाहिक जीवन कैसे रहा तथा कितनी सन्तानों का उन्हें सुख मिला ये सब प्रश्न भी अभी तक अनुत्तर ही हैं।

लेकिन इतना अवश्य है कि इनके जमाने में चम्पावती पूर्णत: धन्य-धान्य पूर्ण थी। महाराजा रामचन्द्र का शासन था। तक्षकगढ (टोडारायसिंह) के शासक

---

१. विस्तरोक ढूंढाहड देस मज्झि, णयरी चंपावइ वरिद्ध सज्झि।
तहि अत्थि पास जिणवर णिकेउ, जो भव कम्महि तारण हुहेउ॥
मेघमाला कहा

२. पयड पहाडिह वंस सिरोमणि, घेल्हा सुव तसु तियवर धरमिणि।
ताह तणइ कवि ठाकुरि सुन्दरि, यह कहु किय संभव जिण मन्दिरि॥

ही चम्पावती के शासक थे। महाराजा रामचन्द्र के शासन काल में लिखी हुई पचासों पाण्डुलिपियां राजस्थान के विभिन्न जैन शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत हैं। ठक्कुरसी अजमेरा थे। पंडित माल्हा अजमेरा कवि के समय में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त श्रेष्ठी थे। कवि में और माल्हा अथवा मल्लिदास में विशेष मैत्री थी और कितनी ही रचनाओं को लिखने में मल्लिदास का विशेष आग्रह रहा था। लेकिन इसी चम्पावती में कुछ ऐसे श्रावक भी थे जो अत्यधिक कृपण थे और किञ्चित् भी पैसा धर्म कार्य में खर्च नहीं करते थे। कवि को इसीलिए 'कृपण छन्द' लिखना पड़ा जिसमें एक कृपण की एवं उसके कृपण मित्र की कहानी दी हुई है।

तत्कालीन समाज—कवि के समय के समाज को हम सम्पत्ति-शाली एवं ऐश्वर्य वाला समाज कह सकते हैं। कविवर ठक्कुरसी ने 'पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी' में ढूंढाहड प्रदेश एवं विशेषत: चम्पावती नगरी का जो वर्णन लिखा है उसके अनुसार चम्पावती व्यापार का केन्द्र थी तथा उसमें कोई भी व्यक्ति दु:खी नहीं दिखाई देता था। जैन समाज तो सम्पन्न समाज था। वहां समय-समय पर महोत्सव होते रहते थे। उस नगर में रहने वाले सभी भाग्यशाली होते थे ऐसी लोगों की धारणा थी।[1] कृपण छन्द में भी एक स्थान पर वर्णन आया है कि जब श्रावक संघ यात्रा से लौटते थे तो वापिस आने की खुशी में बड़े लम्बे-लम्बे भोज होते थे। लोगों का खान-पान रहन-सहन अच्छा था। पान खाने की लोगों में रुचि थी। लेकिन सम्पन्न समाज होने पर भी लोग व्यसनों में फंसे रहते थे। यही कारण है कि कवि को सप्त व्यसन पर दो कृतियां लिखनी पड़ी थी।

साधु मत—चम्पावती उस समय भट्टारकों का केन्द्र था और वहीं उनकी गादी था। प्रभाचन्द्र उस समय वहां भट्टारक थे। कवि ने उन्हें मुनि लिखा है और जब वे प्रवचन करते थे तो ऐसा लगता था कि मानों स्वयं गौतम गणधर ही प्रवचन कर रहे हों।[2] इन्हीं के शिष्य थे मुनि धर्मचन्द्र जो बाद में मंडलाचार्य कहलाने लगे थे। कवि ठक्कुरसी ने धर्मचन्द मुनि के उपदेश से 'व्यसन प्रबन्ध' की लघु कृति की रचना की थी।[3]

---

१. जहां न को जणु वसइ दुक्खिउ. जैन महोच्छव महुमयणा।
जहि जिणि जिणि कीलन्ति, तहा वसहि जे धण्णु सुर इव जसु जिवस कहंति।

२ तसु सिक्ख पहाणांसि वर गुणीसु, सहु संकिउ एं गोयमु मुणीसु।
मेघमाला कहा

३. मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठाकुरि विसन प्रबंध कह्यो।
व्यसन प्रबन्ध

खण्डेलवाल समाज—कवि के समय में चम्पावती में खण्डेलवाल दि० जैन समाज का अच्छा थोक था। अजमेरा, बाकलीवाल, पहाड़िया, सांह आदि गोत्रों के श्रावक परिवार प्रमुख रूप में थे। सभी श्रावक गण सम्पन्न थे। भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति विशेष श्रद्धा एवं भक्ति का केन्द्र थी। मूर्ति अतिशय युक्त थी। बादशाह इब्राहीम लोदी के आक्रमण का भी उसी की भक्ति एवं स्तवन ने रक्षा की थी। स्वयं कवि भी भगवान पार्श्वनाथ के पूरे भक्त थे इसलिए जब कभी अवसर मिला कवि पार्श्वनाथ के गीत गाने लगते थे।

काव्य रचना

कवि की अभी तक कोई बड़ी कृति देखने में नहीं आयी। मेघमाल कहा में अवश्य २१२ कडवक छन्द तथा २११ अन्य छन्द हैं। कवि की ७ रचनाओं का परिचय पं० परमानन्द जी ने दिया था लेकिन शास्त्र भण्डारों की ओर खोज करने पर अब तक कवि की १५ रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१. पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी	रचना	संवत्	१५७८
२. कृपण छन्द	"	"	१५८०
३. मेघमाला कहा	"	"	
४. पञ्चेन्द्रिय वेलि	"	"	१५८५

५. सीमंधर स्तवन
६. नेमिराजमति वेलि
७. चिन्तामणि जयमाल
८. जैन चउवीसी
९. शील गीत
१०. पार्श्वनाथ स्तवन
११. सप्त व्यसन षट पद
१२. व्यसन प्रबन्ध
१३. पार्श्वनाथ स्तवन
१४ ऋषभनाथ गीत
१५. कवित्त

उक्त १५ रचनाओं में प्रथम ४ रचनाओं में रचना संवत् का उल्लेख किया गया है शेष सब रचना काल से शून्य है। उक्त रचनाओं के आधार पर कवि का

साहित्यिक जीवन संवत् १५७५ से प्रारम्भ होकर संवत् १५६० तक चलता है। इन १५ वर्षों में कवि साहित्य निर्माण में लगे रहे और अपने पाठकों को नयी-नयी कृतियों से रसास्वादन कराते रहे। कवि के पूरे जीवन के सम्बन्ध में निश्चित तो कुछ नहीं कहा जा सकता है लेकिन ७० वर्ष की आयु भी यदि मान ली जावे तो कवि का समय संवत् १५२० से १५६० तक का माना जा सकता है।

पञ्चेन्द्रिय बेलि में इन्होंने अपने आपको जति शब्द से सम्बोधित किया है इसका अर्थ यह है कि इन्होंने अपने अन्तिम वर्षों में साधु जीवन अपना लिया था। तथा भट्टारकों के संघ में ही अपना जीवन व्यतीत करने लगे थे।

उक्त १५ रचनाओं में "मेघमाला कहा" के अतिरिक्त सभी लघु रचनायें हैं इसलिए मेरी तो ऐसी धारणा है कि कवि की अभी और भी बड़ी रचनायें मिलनी चाहिए क्योंकि बड़े कवि को छोटी-छोटी रचनाओं से ही सन्तोष नहीं होता उसे तो अपनी काव्य प्रतिभा बड़ी रचना निबद्ध करने में ही दिखाने का अवसर मिलता है। 'मेघमाला कहा' एक मात्र अपभ्रंश रचना है शेष सब रचनायें राजस्थानी भाषा की रचनायें कही जा सकती हैं। जिन पर ब्रज भाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है।

उक्त रचनाओं का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. सीमंधर स्तवन

इसमें विदेह क्षेत्र में शाश्वत विराजमान सीमंधर स्वामी का ३ छप्पय छन्दों में वर्णन किया गया है। रचना के अन्त में 'लिखितं ठाकुरसी' इस प्रकार उल्लेख किया हुआ है। भाषा एवं भावों की दृष्टि से स्तवन अच्छी कृति है। इसकी एक प्रति शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान् जयपुर के ८१ संख्या वाले गुटके में ४८—४६ पृष्ठ पर अंकित है।

२. नेमिराजमति बेलि

जैन कवियों ने बेलि संज्ञक रचनायें लिखने में खूब रुचि ली है। हमारे स्वयं कवि ने एक साथ दो बेलियां लिखी हैं जिनमें राजमति बेलि प्रथम बेलि है। इसका दूसरा नाम नेमीश्वर बेलि भी है। इसमें नेमिनाथ और राजुल के विवाह प्रसंग से लेकर वैराग्य धारण करने एवं अन्त में निर्वाण प्राप्त करने तक की संक्षिप्त कथा दी हुई है।

बसन्त ऋतु आती है और सब यादव वन विहार के लिए चले जाते हैं। इस अवसर पर नेमिनाथ के अपूर्व पौरुष का सब को पता चल जाता है और उसके

पीछे विवाह को लेकर अन्य घटनाएँ घटती हैं। नेमिकुमार जल क्रीड़ा करके सरोवर से निकलते हैं और गीले कपड़े निचोड़ने के लिए रुक्मिणी से प्रार्थना करते हैं। लेकिन रुक्मिणी तो उनके बड़े भाई नारायण श्रीकृष्ण की पत्नी थी इसलिए वह कैसे कपड़े निचोड़ती। उसने इतना कह दिया कि जो सारंग धनुष चढ़ा देगा, पाञ्चजन्य शंख पूर देगा तथा नाग शैय्या पर चढ़ जावेगा, उसी के रुक्मिणी कपड़े धो सकती है। रुक्मिणी का इतना कहना था कि नेमिकुमार चल दिये अपना पौरुष दिखलाने आयुध शाला मे। वहाँ जाकर पल भर में उन्होंने तीनों ही कार्य कर डाले। शंख पूरते ही यादवों में खलबली मच गई और स्वयं नारायण वहाँ आ पहुँचे। नेमिनाथ का बल एवं पौरुष देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गये। अन्त में नेमिनाथ को वैराग्य दिलाने की युक्ति निकाली गयी। विवाह का प्रस्ताव रखा गया। बारात चढी। तोरण द्वार के पास ही अनेक पशुओं को दिखलाया गया। नेमिनाथ के पूछने पर जब उन्हें मालूम चला कि ये सब बरातियों के लिए लाये गये हैं तो उन्हें ससार से विरक्ति हो गयी और तत्काल रथ से उतर कर कंकण तोड़ कर गिरनार पर जा चढे और मुनि दीक्षा धारण कर ली। राजुल के विलाप का क्या कहना। उसने नेमिनाथ को समझाया, प्रार्थना की, रोना रोया, आंसू बरसाये लेकिन सब व्यर्थ गया। अन्त में राजुल ने भी जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

प्रस्तुत कृति पद्धडिया छन्द के आधार पर लिखी गयी है। प्रारम्भ में २ दोहे हैं और फिर कडवक छन्द हैं। इस प्रकार पूरी वेलि में १० दोहे तथा ५ पद्धडिया छन्द हैं। सभी वर्णन रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं। भाषा ब्रज है जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है। जब राजुल के समक्ष दूसरे राजकुमार के साथ विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो राजुल ने दृढ़तापूर्वक निम्न शब्दों में विरोध किया—

> जंपइ रजमतीय अणेरा, जिण विणु वर बंधव मेरा ॥११॥
> कै वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लेउ कुमारी।
> चढि गैवरि को खरि बैसे, तजि सरगि नरगि को पैसै ॥१२॥
> तजि तीणि भवन को राई, किम अवरनु वरी बस साई ॥

नेमिकुमार की अपूर्व सुन्दरता, कमनीयता एवं रूप पर सभी मुग्ध थे। जब वे बसन्त क्रीड़ा के लिए जाने लगे तो उस समय की सुन्दरता का कवि के शब्दों में वर्णन देखिये—

> कवि कहइ सुनिय बणु घणु, जसु परसइ एहु मयणु।
> हरिण परितिम अणोक्क पवारा, बहु करिहिति काम विकारा।
> जिणु सब हुण दिठि दे वोलै, नाउ मेहु पवन मैं डोलै ॥५॥

कवि ने रचना के अन्त में अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

> कवि घेल्ह सुतनु ठाकुरसी, किवे नेमि सु जस मति सरसी।
> नर नारि जको नित गावै, सो चितैं सो फलु पावै ॥२०॥

नेमिराजमति वेलि की पाण्डुलिपियां राजस्थान के कितने ही भण्डारों में उपलब्ध होती हैं। जिनमें जयपुर, अजमेर के ग्रन्थागार भी हैं।

३. पञ्चेन्द्रिय वेलि

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की बहुत ही चर्चित कृति है। इसमें पांच इन्द्रियों की वासना एवं उनसे होने वाली विकृतियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। और अन्त में इन्द्रियों पर विजय पाने की कामना की गयी है। जिसने इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की वह अमर हो गया, निर्वाण पथ का पथिक बन गया लेकिन जो जीव इन्हीं इन्द्रियों की पूर्ति में लगा रहा उसका जीवन ही निकम्मा एवं निन्दनीय बन गया। इन्द्रियां पांच होती हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं श्रोत्र। और इन पांच इन्द्रियों से पांच काम अर्थात् अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं और वे हैं, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द। इन्द्रियों के इन पांच काम गुणो के वशीभूत होकर मन सासारिक भोगों में उलझ जाता है और अपने सच्चे स्वरूप को भूला बैठता है। इसलिए सच्चा वीर वही है जिसने इन काम गुणों पर विजय प्राप्त की हो। कबीर ने भी सूरमा की यही परिभाषा की है—

> कबीर सोइ सूरमा, मन सों मांडे जूझ।
> पांचों इन्द्री पकडि कै, दूर करे सब दूझ ॥

कबीर ने फिर कहा कि जो मन रूपी मृग को नहीं मार सका वह जीवन में अभ्युदय एवं श्रेयस का भागी कदापि नहीं हो सकता

> काया कसो कमान ज्यों, पांच तत्व कर बान।
> मारो तो मन मिट गया, नहीं तो मिथ्या जान ॥

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की संवतोल्लेख वाली अन्तिम कृति है अर्थात् इसके पश्चात् उसकी कोई अन्य कृति नहीं मिलती जिसमें उसने रचना संवत दिया हो। इसलिए प्रस्तुत कृति उसके परिपक्व जीवन की अनुभूति का निष्कर्ष रूप है। कवि द्वारा यह संवत् १५८५ कातिक सुक्ला १३ को समाप्त की गयी थी।[1]

---

१. संवत पनरहसैं पिच्यासे तेरसि सुदी कातिग मासे।
   जिहि मनु इंद्री वसि कीया, तिहि हर तरपत जग जीया ॥

ठक्कुरसी ने वेलि के अन्त में अपने और अपने पिता के नाम का भी उल्लेख किया है तथा अपने आपको 'गुणवास' विशेषण से सम्बोधित किया है। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि ठक्कुरसी की कीर्ति उस समय आकाश को छू रही थी।[1]

विषय प्रतिपादन

कवि ने एक-एक इन्द्रिय का स्वरूप उदाहरण देकर समझाया है। सबसे पहले वह स्पर्शन इन्द्रिय के लिए कहता है कि वन में स्वतन्त्र रहते हुए वृक्षों के पत्ते एवं फल खाते हुए स्पर्शन इन्द्रिय के वश में होकर ही हाथी जैसा जीव मनुष्य के वश में हो जाता है और फिर अंकुशों की मार खाता रहता है। कामातुर होकर हाथी कागज की हथिनी के पीछे सब कुछ भूल जाता है।

वन तरुवर फल खातु, फिरि पय पीवतौ सुछंद।
परसण इंद्री प्रेरियो, बहु दुख सहै मयन्द।
बहु दुख सहौ मयंदो, तसु होइ गई मति मंदो।
कागज के कुंजर काजे, पडि खाडन सक्यौ न भाजे।

कीचड़ में फंसने के पश्चात् मदोन्मत हाथी की जो दशा होती है उस पर कवि मानों आंसू बहाते हुए कहता है—

तहि सहीय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दूखो।
रखवाला वलगउ जाण्यौ, बेसासि राय घरि आण्यो।
बंध्यौ पगि सकुलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले।
परसण प्रेरे दुख पायो, निति अंकुस घावां घायो॥

कवि ने स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत होने के कारण जिन-जिन महापुरुषों ने अपने जीवन को नष्ट कर दिया है उनके भी कुछ उदाहरण देकर इस इन्द्री की भयंकरता को समझाया है। मैथुन के वशीभूत होने पर ही कीचक को जीवन से हाथ धोना पड़ा। रावण की सारी प्रतिष्ठा एवं रावणत्व धूल धूसरित हो गया। इसलिए जिस प्राणी ने स्पर्शन इन्द्रीय पर विजय प्राप्त की है उसी ने जीवन का असली फल चखा है।

परसण रस कीचक पूरयौ, जहि भीम सिला तलि चूरयौ।
परसण रस रावण नामै, मारियउ लंकेसुर रामै।

---

1. कवि घेल्ह सुतनु गुणवासु, जगि प्रगट ठकुरसी नासु।

परवस रस संकट राच्यो, जिम आगें नट ज्यों नाच्यो।
इहि परबस रस के भूला, वे नर सुर असुर बिगूता। ५॥

दूसरी इन्द्रिय रसना है। मानव सुस्वादु बन जाता है और अपना हिताहित भुला बैठता है। अपनी मृत्यु का कारण वह स्वयं बन जाता है। जल में स्वच्छन्द विचरने वाली मछली भी रसनेन्द्रिय के कारण ही जाल में फंस कर अपने प्राण गंवा बैठती है—

केलि करंतो जनम जलि, गाल्यो लोभ दिखालि।
मीन मुनिष संसारि सरि, काढयो धीवर कालि।
सो काढयो धीवरि कालैं, तिहि गाल्यो लोभ दिखालै।
मधु नीर गहीर पइट्ठो, दिठि जाइ नहीं जहि दीठो।

कवि ने मानव रूपी मछली के रूपक द्वारा रसनेन्द्रिय के दुष्प्रभाव की विशद व्याख्या की है। उसके शब्दों में जन्म को जल, मनुष्य को मछली, संसार को सरिता और काल को धीवर के रूप में देखने में कितनी यथार्थता है। इसके पश्चात् कवि ने रसनेन्द्रिय के प्रभाव की जो सत्य तस्वीर प्रस्तुत की है वह कितनी सुन्दर है—

इह रसणा रस कउ चाल्यो, बलि आइ मुवै दुख साल्यो।
इह रसना रस कै तांई, नर मुवै बाप गुरु भाई।
घर फोडै पाडै बाटां, निति करै कपट घण घाटां।
मुख झूंठ सांच सहिहि बोलै, घरि छोड दिसावर डोलै।

कवि के कथन में अनुभूति है और जीवन की जागती तस्वीर। रात दिन सुनते, देखते, पढ़ते हैं "इह रसना रस के तांई, नर मुवै बाप गुरु भाई।" इस रसना इन्द्रिय के चक्कर में पड़कर इस मानव को झूंठ कपट करना पड़ता है। अपने लहलहाते घर को उजाड़ना पड़ता है। झूंठ का सहारा लेना पड़ता है तथा घरबार को छोड़ देश देशान्तर भटकना पड़ता है। यही नहीं छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, सब की मर्यादाओं को वह समाप्त कर देता है। यह सब रसना इन्द्रिय का चक्कर है। कवि के शब्दों में कितनी सच्ची अनुभूति है। अन्त में कवि ने यही अभिलाषा प्रकट की है कि यदि मानव जीवन को सफल बनाना है तो फिर रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है—

रसना रस जिणी पचारो, बलि होइ न प्रोगण धारो।
जिहि ठकुर जिणी वसि कीयो, तिहि मुनिष जमन फल लीयो।

हिन्दी के अन्य कवियों ने रसना इन्द्रिय का कार्य केवल हरि भजन माना है। सूरदास ने "सोई रसना सो हरि गुण गावै" लिख कर रसना इन्द्रिय के प्रमुख कर्त्तव्य की ओर संकेत किया है। कबीर ने अपनी पीड़ा यों व्यक्त की है—जी भड़िया छाला परया राम पुकारि पुकारि।

तीसरी इन्द्रिय है घ्राण। इस घ्राण इन्द्रिय के वश में होकर भी प्राणी कभी-कभी अपने प्राण गवां बैठता है। घ्राण इन्द्रिय की शक्ति बड़ी प्रबल है। चिउटी को शक्कर का ज्ञान हो जाता है तथा भौरे कमल को खोज निकालते हैं हम स्वयं भी अच्छी गन्ध मिलने पर प्रसन्न चित्त होकर आनन्द का अनुभव करने लगते हैं तथा दूषित गंध मिलने पर नाक पर रुमाल लगा लेते हैं, नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं तथा वहां से भागने का प्रयास करते हैं। कवि ने भ्रमर का बहुत सुन्दर उदाहरण दिया है। जिस तरह गंध लोलुपी भ्रमर कमल पराग का रस पान करता रहता है और वह कलि में से निकलना भी भूल जाता है। बन्द कमल में भी वह रंगीन स्वप्न लेने लगता है—"रात भर खूब रस पीऊंगा, और प्रातःकाल होते ही स्वच्छ सरोवर में कमल की कलियां विकसित होगी मैं उसमें से निकल जाऊंगा।" एक ओर वह भ्रमर सुनहरे स्वप्न ले रहा है तो दूसरी ओर एक हाथी जल पीने सरोवर में आता है और जल पीकर उस कमल को उखाड़ लेता है और पूरे कमल को ही खा जाता है। बेचारा भौंरा अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है।

कमल पइठो भ्रमर दिनि, घ्राण गंधि रस रूढ।
रैणि पडी सो सकुच्यो, नीसरि सक्या न मूंढ।।

अति घ्राण गंधि रस रूढो, सो नीसर सक्यो न मूढो।
मनि चिंतै रयणि सवायो, रस लेस्यो अजि अघायो।
जब उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो।
नीसरि स्यौं तब इह छोडै, रस लेस्यौं आइ बहुडे।
चितवतै ही गज आयो, दिनकर उगवा न पायो।
अलि पैसि सरवर पीयो, नीसरत कमल खुडि लीयो।
गहि सुंडि पाव तलि चप्यो, अलि मारयौ थर हर कंप्यो।
इहु गध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यो न विचारि।
इह गध विषै वसि हुवो, अलि अहलु अखूटी मूवो।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गंध लोभ नहि कीजे।।३।।

अन्त मे कवि ने मानव को भ्रमर की मृत्यु से शिक्षा लेने को कहा है कि जो प्राणी इस ससार की गन्ध लेने में ही अपने आपको उसमें समर्पित कर देता है

उसकी भी भ्रमर के समान दशा होती है। आंखों का काम देखना है। इन नेत्रों द्वारा रूप सौंदर्य को देखा जाता है और यह मानव अपनी आंखों से रूप सौंदर्य को देखने का इतना आदि हो जाता है कि वह उसी देखने में अपना आपा खो बैठता है। यह मानव रूप पर कितना मरता है, आंखों की चोरी करता है और दूसरों की स्त्री की ओर झांकता रहता है। कवि ने अहिल्या और तिलोत्तमा का उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि की है। यही नहीं "लोयण लंपट झूंठा, वाड्या नहि होइ अपूठा" कह कर चक्षु इन्द्रिय पर करारी चोट की है। यही नहीं आगे कहा है कि मना करने पर भी वह नहीं मानता है। लेकिन पांचों इन्द्रियों का स्वामी तो मन है जब तक मन वश में नहीं होता तब तक बेचारी ये इन्द्रियां भी क्या करें।[1] इसलिए इसी के आगे कवि ने कहा है कि—

लोयणे दोस को नाहीं, मन मेरे देखन जांही।

श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है शब्द, उसकी मधुरता, कोमलता और प्रियता पर प्राण निछावर करना जीव का स्वभाव है। हरिण वधिक का गीत सुनकर प्राण घातक तीर से व्यथित हो प्राण को छोड़ देता है। सर्प जैसा विषैला जन्तु संगीत की मीठी ध्वनि सुनकर बिल से निकल कर मनुष्य के अधीन हो जाता है। इसलिए कवि ने मानव को सचेत किया है कि वह हिरण की तरह मधुर नाद के वशवर्ती होकर अपने प्राणों का परित्याग न करे।

इस तरह ठक्कुरसी ने पञ्चेन्द्रिय वेलि में पांचों इन्द्रियों के विषयासक्त पांच प्रतीकों द्वारा मानव को सचेत रहने को कहा है। जो मानव इन पांचों इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है वह जल्दी ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर बैठता है।

अलि गज मीन पतंग मृग एके कहि दुख दीध।
आइति भी भी दुख सहै, जिहि वसि पंच न किद्ध।

ठक्कुरसी कवि को अपनी कृति पर स्वाभिमान है इसलिए वह लिखता है—

करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समझाया।
मन मूरिख सक उपाई, तिहि तणइ चित्ति न सुहाई॥

इस वेलि का दूसरा नाम गुण वेलि भी है।[2]

---

१. नेहु सजमणु लेण कहु वाली बयण सुरंग।
रूप जोति परतिय दिवे, पडहिलि मुग्ध पतंग॥
२. देखिए राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग-२।

४. चिन्तामणि जयमाल

प्रस्तुत जयमाल ११ पद्यों की लघु कृति है जिसमें पार्श्वनाथ का स्तवन एवं उनकी भक्ति के प्रभाव से घटित घटनाओं का उल्लेख किया गया है। जिनेन्द्र स्वामी की भक्ति से मानव अथाह समुद्र को तैर कर पार कर सकता है, सूली फूलों की माला बन सकती है और न जाने क्या क्या विपत्तियों से वह बच सकता है। जयमाल की भाषा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी है। कवि ने अन्त में अपना नामोल्लेख निम्न प्रकार किया है—

> इह वर जयमाल गुणह बिसाला, थेल्ह सतनु ठाकुर कहए।
> जो पढ सिणि बिरक्खइ दिणि दिणि भक्खइ सो सुहमण वंछिउ लहए।

प्रस्तुत जयमाल की प्रति जयपुर के गोधों के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के ८१ वें गुटके में पृष्ठ २० से २२ तक संग्रहीत है।

५. कृपण छन्द

कविवर ठक्कुरसी का कृपण छन्द लौकिक जीवन के आधार पर निबद्ध कृति है। छीहल कवि ने पंच सहेली गीत लिखकर जहाँ एक ओर पति वियोग एवं पति मिलन में नवयुवतियों की मनोदशा का चित्रण किया था वहाँ कवि ठक्कुरसी ने कृपण छन्द लिखकर उस व्यक्ति का चित्रण किया है जो उसके संचय में ही विश्वास करता है और उसका उपयोग जीवन के अन्तिम क्षण तक नहीं करता।

कृपण छन्द का नाम कही कृपण चरित्र भी मिलता है। यह कवि की संवत् १५८० के पोष मास में निबद्ध रचना है। रचना एकदम सरस, रुचिकर एवं प्रसाद गुण से भरपूर है। इसमें ३५ पद्य हैं। जो षट्पद छन्द में निबद्ध है। इस कृति की एक पाण्डुलिपि जयपुर और एक भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर में सग्रहीत है। अजमेर वाली पाण्डुलिपि में तो कृति का ही नाम कृपण षट्पद दिया हुआ है। कृति की संक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है—

एक प्रसिद्ध कृपण व्यक्ति उसी नगर में अर्थात् चम्पावती में ही रहता था और वहीं कविवर ठक्कुरसी भी रहते थे। वह जितना अधिक कृपण था उसकी धर्मपत्नी उतनी ही अधिक उदार एवं विदुषी थी।

> किपणु एक परसिद्ध नयरि निवसंति निलक्खणु।
> कही करम संजोग तासु घरि नारि विचक्खण।

सारे नगर के निवासी इस जोड़ी को देखकर आश्चर्य में भर जाते थे क्योंकि स्त्री जितनी दानी, धर्मात्मा एवं विनयी थी उसका पति उतना ही कंजूस था। न स्वयं खर्च करता था और न अपनी पत्नी को खर्च करने देता था। इसी को लेकर दोनों में कलह होता रहता था। वह कृपण न गोठ करता, न मन्दिर जाता, यदि कोई उससे उधार मांगने आता तो वह गाली से बात करता, यही नहीं अपनी बहन, भुआ एवं भानजियों को भी अपने घर पर नहीं बुलाता था। यदि कोई घर में बिना बुलाये ही आ जाता तो मुंह छिपा कर बैठ जाता था।

घर में आंगण पर ही सो जाता। खटिया तो उसके घर पर थी ही नहीं तथा जो थी उसे भी बेच दी। घर पर छान बांध ली। जब आंधी चलती तो उसकी बड़ी दुर्दशा होती। वह सबसे पहिले उठता और दस कोस तक नंगे पांव ही घूम आता। न स्वयं खाता और न अपने परिवार वालों को खाने देता। दिन भर झूंठ बोलता रहता और झूंठ लिखता, पढ़ता और झूंठी कमाई करता। अपनी इस आदत के कारण वह नगर में प्रसिद्ध था। नगर का राजा भी उसकी आदतों को जानता था।

वह पान कभी नहीं खाता और न ही किसी को खिलाता था। न कभी सरस भोजन करता। न कभी नवीन कपड़े पहन कर शरीर को संवारता था। वह कभी सिर में तेल भी नहीं डालता और न मल-मल कर नहाता था। खेल तमाशे में तो कभी जाता ही नहीं था।

कदे न खाइ तंबोलु, सरसु भोजन नहीं भक्खे।
कदे न कपड़ा नवा पहिरि, काया सुख रक्खे।
कदे न सिर में तेल घालि, मल मल कर न्हावै।
कदे न चन्दन चरचै, अंग अबीरु लगावै।
पेखणो कदे देखे नहीं, श्रवणु न सुहाई गीत-रसु ॥६॥

उसकी पत्नी जब नगर की दूसरी स्त्रियों को अच्छा खाते-पीते, अच्छे वस्त्र पहिनते तथा पूजा-पाठ करते देखती तो वह अपने पति से भी वैसा ही करने को कहती। इस पर दोनों में कलह हो जाती। इस पर वह अपने भाग्य को कोसती और पूर्व जन्म में किये हुए पापों को याद करती जिसके कारण उसे ऐसा कृपण पति मिला। वह याद करती कि क्या उसने कुदेव की पूजा की, अथवा गुरु एवं साधुओं की निन्दा की, क्या झूंठ बोली या रात्रि में भोजन किया अथवा दया धर्म का पालन नहीं किया जो ऐसे कृपण पति से पाला पड़ा। जो न स्वयं खरचे और न उसे ही खरचने दे।

ज्यौ देखें देहुरे त्याहू की वर नारी ।
तलि पहूरया पटकूला सव्व सोवन सिंगारी ।
एकि करावै पूज एकि उभी गुण गावै ।
एक देहि तिय दाणु एक शुभ भावन भावै ।
तिहि देखि भणै हीयो हणें कवणु पापु दीयो दई ।
जहि पाप किण ही पापीणी कृपणु कंत घरि घण हुई ॥६॥

एक दिन कृपण की पत्नी ने सुना कि गिरनार की यात्रा करने संघ जा रहा है तो उसने रात्रि में हाथ जोड़कर हँसते हुए पति से यात्रा संघ का उल्लेख किया और कहा कि लोग उसी गिरनार की यात्रा करने जा रहे हैं जहाँ नेमिनाथ ने राजुल को छोड़ दिया था और तपस्या की थी। वहाँ पर्वत चढ़ेंगे, पूजा-पाठ करेंगे तथा पशु एवं नरक गति के बंध से मुक्त होंगे। इसलिए हम दोनों को भी चलना चाहिए। इतना सुनते ही कृपण के ललाट पर सलवटें पड़ गयी और वह बोला कि क्या तू बावली हो गई है जो धन खरचने की तेरी बुद्धि हुई है। मैंने अपना धन न चोरी से कमाया है और न मुझे पड़ा हुआ मिला है। दिन रात भूखा प्यासा मर कर उसे प्राप्त किया है। इसलिए भविष्य में उसे खरचने की कभी बात मत करना।

नारि वचन सुणि कृपणि, सीसि सलवटि घण घल्ली ।
कि तू हुई धण बावली, कि धण थारी मति चल्ली ।
मै धणु लद्ध न पडयो, मै र धणु लियो न चोरी ।
मै धणु राजु कमाइ, आपु आणियो ना जोरी ।
दिन राति नींद विरु भूख सहि, मैर उपायो दुख घणौ ।
खरचि ना तणौ वाहुडि, वचनु धण तू आगै मत भणौ ॥१४॥

कृपण की पत्नी भी बड़ी विदुषी थी इसलिए उसने कहा कि नाथ, लक्ष्मी तो बिजली के समान चंचल है। जिसके पास अटूट धन एवं नवनिधि थी वह भी साथ नहीं गयी। जिन्होंने केवल उसका संचय ही किया वे तो हार गये और जिन्होंने उसको खर्च किया उनका जीवन सफल हो गया। इसलिए यह यात्रा का अवसर नहीं चूकना चाहिए और कठोर मन करके यात्रा करनी चाहिए। क्योंकि न जाने किन शुभ परिणामों से अनन्त धन मिल जावे। इसके बाद पति पत्नी में खूब वाद-विवाद छिड़ जाता है। पत्नी कहती है कि सूम का कोई नाम ही नहीं लेता जब कि राजा कर्ण, भोज एवं विक्रमादित्य के सभी नाम लेते हैं। वह फिर कहने लगी कि वह नर धन्य है जिसने अपने धन का सदुपयोग किया है। पाप की होड़ न करके पुण्य कार्यों की तो अवश्य होड़ करनी चाहिए। पुण्य कार्य में धन लगाना अच्छी

बात है। जिसने केवल धन का संचय ही किया और उसे स्व पर उपकार में नहीं लगाया वह तो अचेतन के समान है तथा सर्प के डसे हुए के समान है।

पत्नी की बात सुनकर कृपण गुस्से में भर गया और उठ कर बाहर चला गया। बाहर आने पर उसे उसका एक कृपण ही साथी मिल गया। साथी ने जब उसकी उदासी का कारण पूछा और कहने लगा कि क्या तुम्हारा धन राजा ने छीन लिया या घर में कोई चोर आ गया अथवा घर में कोई पाहुना आ गया या पत्नी ने सरस भोजन बनाया है। किस कारण से तुम्हारा मुख म्लान दिखता है।

तबहि कृपणु करि रोस, रसि घर बाहिरि चलीयो।
ताम एकु सामहो मतु पूरवलो मिलियो।
कृपणु कहै रे कृपण आजि तू दूमणा दिठो।
किं तु रावलि गह्यो केम घरि चोर पइट्ठो।
आईयउ कि को घरि पाहुणो कीयो नर भोजन सरसि।
किणि काजि मीत रे आजिउ तु, मुख विनाण दीठो।

कृपण ने कहा कि मित्र मुझे घर मे पत्नी सताती है। यात्रा जाने के लिए धन खरचने के लिए कहती है जो मुझे अच्छी नहीं लगती। इसी कारण वह दुर्बल हो गया है और रात दिन भूख भी नहीं लगती। मेरा तो मरण आ गया। तुम्हारे सामने सब कुछ भेद की बात रख दी।

उस दूसरे कृपण मित्र ने कहा कि हे कृपण तू मन में दुख न कर। पापिनी को पीहर भेज दे जिससे तुझे कुछ सुख मिले।

कृपणु कहै रे मंत मुझ घरि नारी सतावै।
जाति चालि धन खरीचु कहै जो मोहि न भावै।
तिह कारणि दुब्बलै रयणा दिण भषण ण लगाइ।
मंतु मरण आइयो गुह्य अख्यो तू आगै।
ता कृपणु कहै रे कृपण सुणी मीत मरण न माहि दुखु।
पीहरि पठाइ दे पापिणी ज्यों को दिणु तू होइ सुख ॥२०॥

इसके पश्चात् उस कृपण ने एक आदमी को बुलाया तथा एक झूंठा पत्र लिख दिया कि तेरे जेठे भाई के पुत्र हुआ है अतः उसे बुलाया है। पत्नी पति के प्रपंच को जानते हुए भी पीहर चली गयी।

कुछ महीनों पश्चात् यात्रा संघ वापिस लौट आया। इस खुशी में जगह-जगह ज्योनारें दी गयी, महोत्सव किये गये। जगह-जगह पूजा पाठ होने लगे। विविध

दान दिये गये । बाजे बजे तथा लोगों ने खूब पैसा कमाया । कृपण ने यह सब सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ ।

कुछ समय पश्चात् वह बीमार पड़ गया । उसका अन्त समय समझ कर उसके परिवार वालों ने उसे दान पुण्य करने के लिए बहुत समझाया लेकिन उसके कुछ भी समझ में नहीं आया । उसने कहा कि चाहे वह मरे या जीये ज्योनार कभी नहीं देगा । उसका धन कौन ले सकता है । उसने बड़े यत्न से उसे कमाया है । अब वह मृत्यु के सन्मुख है इसलिए हे लक्ष्मी तू उसके साथ चल । लक्ष्मी ने इसका उत्तर निम्न प्रकार दिया—

लच्छि कहै रे कृपण झूठ हो कदे न बोलो ।
जु को चलण दुइ देह गलत मारगी तसु चालों ।
प्रथम चलण मुझ एहु देव देहुरे ठविज्जे ।
दूजे जात पतिट्ठ दाण चउसंघहि दिज्जै ।
ये चलण दुवै तै भंजिया ताहि विहूणी क्यों चलौं ।
भूख मारि जाय तू ही रही बहुडि न सगि थारे चलौ ।।२८।।

लक्ष्मी ने कहा कि उसकी दो बातें हैं । एक तो वह देव मन्दिरों में रहती है । दूसरे यात्रा, प्रतिष्ठा, दान और चतुर्विध सघ के पोषणादि कार्य हैं उनमें तूने एक भी नहीं किया । अतः वह कृपण के साथ नही जा सकती ।

कुछ समय पश्चात् कृपण मर गया और मर कर नरक में गया । वहां उसे अनेक प्रकार के दुःख सहन करने पड़े । इसलिए कवि ने निम्न निष्कर्ष के साथ कृपण छन्द की समाप्ति की है—

इसो जाणि सहु कोइ, मरइण पूरिय धनु सच्यो ।
दान पुण्य उपगार दित धनु कि वै न खचौ ।
दान पुजै वह रासो असो पोष पावै जगि जाणौं ।
जिसउ कपणु इकु दानु तिसउ गुणु कसु बखाण्यौ ।
कवि कहै ठकुरसी घेल्ह तणु, मै परमत्थु बिचार्यो ।
धरगियो त्यांह उपज्यो जनमु ज्या पाप्यो तिह हारियो ।।३५।।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि में ३५ छन्द हैं ।

१. पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी

कवि की सर्वोल्लेख यह प्रथम कृति है जिसकी रचना संवत १५७८ माघ शुक्ला २ के शुभ दिन चम्पावती में हुई थी।[1] उस समय देहली पर बादशाह इब्राहीम लोदी का शासन था तथा चम्पावती महाराजा रामचन्द्र के अधीन थी। सत्तावीसी एक स्तवनात्मक कृति है जिसमें चाकसू (चम्पावती) के पार्श्वनाथ के मन्दिर में विराजमान पार्श्वनाथ की ही स्तुति की गयी है। इसमें २७ पद्य हैं। रचना साधारण होते हुए भी सुन्दर एवं प्रवाह युक्त है और सोलहवीं शती के अन्तिम चरण में हिन्दी भाषा के विकास को बतलाने वाली है। सत्तावीसी स्तवन परक कृति होने पर भी इतिहास के पुट को लिये हुए है। प्रस्तुत कृति में इब्राहीम लोदी के रणथम्भोर आक्रमण का उल्लेख है तथा यह कहा गया है कि बादशाह ने अपने प्रबल सैन्य के साथ रणथम्भोर किले पर जब आक्रमण कर दिया तो उसकी सेना आस पास के क्षेत्र में भी उपद्रव मचाने लगी और वह चम्पावती तक आ पहुँची। लोग गांवों को छोड़कर भागने लगे।[2]

चम्पावती के निवासी भी भय से कांपने लगे तथा मना करने भी चारों ओर भागने लगे। लेकिन कुछ लोग नगर में ही रह गये और भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति करने लगे। ऐसे नागरिकों में पं० मल्लिदास, कविवर ठक्कुरसी आदि प्रमुख थे।[3] सभी नागरिक पार्श्वनाथ की स्तुति, पूजा-पाठ करने लगे तथा विपत्ति से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगे। भगवान पार्श्वनाथ की कृपा से शीघ्र ही भयंकर विपत्ति टल गयी। लोगों को अभय मिला। नगर में शान्ति हो गयी। चारों ओर पार्श्वनाथ

---

१. घेल्ह नंदणु ठकुरसी नामु, जिण पाय पंकय भसलु ।
तेण पास थुय किय सत्तो अवि, पंचरासय अट्ठत्तरइ ।
माह मासि सिय पक्खु पुर अवि, पढहि सुणहि जे नारि नर ।

२. जवहि सिकउ रासि संपत्ति, रणथंभुवि दुग्ग भडु ।
जब इब्राहिमु साहि कोपिउ, तसु लोली मो कसिउ ।
बोसु कोसु सवु देस लोपिउ, जिव लग उप्फालि हाइसिउ ।
तेख सूट भय कंपिय, तिणु चंपावती देस सहि भया बहुद विसि भज्जिय ।

३. तेण सुह जिण कहहि जगनाथ, निसुणि सिद्धि सुंदरि रमण ।
इहि निमित्त कउ किसउ कारणु, सूत सविचिंत कारण सुह ।
सुह समणु जपि तरण तारण, उच्चावेता उप्पज्जइ ।
ताह भय देसइ मोह, जइवि देवहि पास प्रभु होइ रहहु निच्चइ ॥२३॥

की जय बोली जाने लगी। जो लोग नगर छोड़कर चले गये थे वे अधिक दुःखी हुए और जो नगर में ही रहे वे शान्तिपूर्वक रहे।

एम जंपिय करिवि थुय पूज, मल्लिदास पंडिय पमुह।
सइं हुआ सामी उचायउ, तुच्छ मूरतिउ बनि तिलु।
हूवो जाणि सुरगिरि सवायउ, इणि विधि परतिउ वारतिहु।
पूरि विहूरी भराति जयवंतउ जगि पास तुहु, जेव करी सुख संपति ॥२४॥
तासु पर ते जिके णर अब्बनी अम्मा दिढु रह्या।
हुवा सुखी ते धरा वासैं, जे मगा भंति करि।
दुख पाया अरु रहया सांसैं, अवरइ परत्या बहु इसा।

प्रभु पूरिवा समथु, प्रजउन जिसु पतिसाइ मनु, मो नरु निगुणु निरथु ॥२५॥

पार्श्वनाथ 'सकुन सत्तावीसी' पं० मल्लिदास के आग्रह से रची गयी थी।[1] मल्लिदास ने ठक्कुरसी से पार्श्वनाथ के मन्दिर मे ही इस प्रकार के स्तवन लिखने की प्रार्थना की थी। कवि ने अपनी सर्वप्रथम अल्पज्ञता प्रकट की क्योंकि कहां भगवान पार्श्वनाथ के अनन्त गुण और कहां कवि का अल्पज्ञान। फिर भी कवि अपने मित्र के आग्रह को नहीं टाल सके और उन्होंने सत्तावीसी की रचना कर डाली। और अन्त में भी मल्लिदास से सत्तावीसी पढ़ने के लिए आग्रह किया है।

प्रस्तुत सत्तावीसी की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर प० लूणकरण जी पांड्या के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है। लेकिन गुटके मे एक पत्र कम होने से ५ से १४ वें पद्य तक नही है। सत्तावीसी की एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे भी संग्रहीत है।

७. जैन चउवीसी

जैन चउवीसी का उल्लेख पं० परमानन्द जी शास्त्री ने अपने लेख में किया है। यह स्तुति परक कृति है जिसमें २४ तीर्थंकरों का स्तवन है। राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में जैन चउवीसी की कोई पाण्डुलिपि नही मिलती।

---

१. एक दिवसह पास जिण गेह मल्लिदास पंडिय कहुत।
ठकुरसीह सुणि कवि गुणगाल गाहा गीय कवित कहु।
तइ कियमय निसुणी समभाल।
इव श्रीपास जिणंद गुण करहि म किंतु हु अब्ब।
जहि कीया थे पाविए मन वंछित सुख सब्ब ॥२॥

८. मेघमाला कहा

मेघमाला कहा की एक मात्र पाण्डुलिपि भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर के एक गुटके में संग्रहीत है। इसकी उपलब्धि का श्रेय पं० परमानन्द जी शास्त्री देहली को है।

मेघमाला व्रत करने का उस समय चम्पावती में बहुत प्रचार था। ठक्कुरसी ने अपने मित्र मल्लिदास हाथुव साहु नामक श्रेष्ठि के आग्रह एवं भ० प्रभाचन्द्र के उपदेश से इस कहा की अपभ्रंश में रचना की थी। उस समय चम्पावती नगरी खण्डेलवाल दि० जैन समाज का केन्द्र थी तथा अजमेरा, पहाड़िया, बाकलीवाल आदि गोत्रों के श्रावकों का प्रमुख रूप से निवास था। सभी श्रावकों में जैनाचार के प्रति आस्था थी। कवि ने उस समय के कितने ही श्रावकों के नाम गिनाये हैं जिनमें जीणा, तोल्हा, पारस, नेमिदास, माधूसि, मुल्लण आदि के नाम उल्लेखनीय है। कवि तोषा पंडित का और नाम गिनाया है।

मेघमाला व्रत भाद्रपद मास की प्रथम प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है। इस दिन उपवास एवं दिन भर पूजन करनी चाहिए। यह व्रत पांच वर्ष तक किया जाता है। इसके पश्चात् व्रत का उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापन न कर सके तो इतने ही वर्ष व्रत का और पालन करना चाहिए।

मेघमाला कहा की समाप्ति सावन शुक्ला ६ मंगलवार संवत १५८० के शुभ दिन हुई थी। पूरी कहा में ११५ कडवक तथा २११ पद्य हैं। रचना अपभ्रंश भाषा में निबद्ध है।

मेघमाला कहा का आदि एवं अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

णुय चरिम जिणिदु वि दय कंदु वि सुय सिद्धत्थ वि सिद्धयरो।
कह कहमि रसाला वयघणमाला णर णिसुणहु करिकण्णसिरो॥
दिण्णेक दु ढाहड देस मज्झि, णयरी चंपावइ अरिय सत्थि।
तहि अत्थि पास जिणवरणिकेउ, जो भव कण्णिहि तारणहसेउ।
तसु मज्झि पहासवि वर मुणीसु, सह संठिउ ण गोयमु मुणीसु।
तहु पुरउ णिविट्ठिय लोय भव्व, णिसुणंत धम्मु मणि गलिय-गव्व।
तहं मल्लिदास वणि तणु कहेण. सेवइ सुयत्तु विणयं सहेण।
भो पेल्हणंद ! सुणि ठकुरसीह, कइ कुलह मज्झि तुहु लहणु लीह।

तहु मेहमालवय कह पयासि, इण किवइ केण फलु लद्ध आसि ।
इह कह किय चिरु किण सहसकित्त, तुहु करि पद्धडिया बंध मित्त ।
ता विहसि वि जंपइ चेल्हणंदु, जो धम्म कहा कहणि अमंदु ।
भो मित्त ! पइमि वुज्झिउ हियत्थु, कह कहमि केम वुज्झउ ण सत्थु ।
वायरणु न मइं गुणियउं गुणालु, कोवद्दम दीठउ रसु रसालु ।
जो हुरइ जड तण तणउ दोसु, सो सवणि सुणिवउ तिय सकोसु ।
कह कहणि वुहयण हसहि मज्झु, किहकरि रंजावमि चित्त तुज्झ ।।

अन्तिम भाग—

सुयमंयडी चिक्क लेवि सुत्तयं, करी कहा एह महा पवित्तयं ।
उणम्गलं जंपय मत्त जंपिया, खमेउ तं देवी भारही मया ।।
ता माल्हा कुल-कमलु दिवायरु, अजमेराह वंसि मय सायरु ।
विणयं सज्जण जणमण रंजणु, दाणि वुहियणह उल-मं जणु ।।
रूवें मयरद्ध य सम सरिसु वि, परयण पुरह मज्झि मह पुरि सु वि ।
जिण गुण णिग्गंथह पयमत्तु वि लोसण पंडिय कवियण चित्तु वि ।
वुच्छिय वयण सयल परिपालणु, बवव तिय सहयर सुयलालणु ।
एलीतिय मण रहइल सोहणु, मल्लिदास यातहु मणु मोहणु ।
तिणि सेवइ सुन्दरि यह कह सुणि, सरिसु वउलीमउ सु दिढु मणि ।
पुणु तोल्हा तणेण परमत्थें, कह सुणि वउली योसिर हत्थें ?
पुणुवि पहाडियाह वरवंसवि, लद्धीसयल णयरि सुपसंसवि ।
जीणा नंदणेण जिणभत्तें, ताल्हू वउली यो विहसंतें ।
पुणु पारस तणेण वुहुवीरें, गहिउ सुवउ अइ तइजस धीरें ।
पुणु खाकुलीयवाल सुविसालुवि, वालू वउली यो घणमालुवि ।
पुणु कह मुणिवि ठकुरसी णंदणि, णेमिदास भावण भाईय मणि ।
पुणु णाथूसी वग्गरि मुल्लणि, लीयउ वउ जीउ रिय मय डुल्लणि ।
पुणु कह सुणिवि मणोहर णारिहि, अवरहि भव्वण यर णर-णारहि ।
मेघमालाव उ चंगउ महियउ, इंछिउ फलु लहि सहि कवि करियउ ।
चंपावतीव णयरि णिवसंते, रामचन्दपहु रज्जु करंते ।
हाथुवसाहु महत्ति महत्तें, पद्मनन्द गुरु उवएसंते ।
पणवह सइजि असीवे मग्गल सावण मासि अट सिय मंगल ।
पयउ पहाडिए वंससिरोमणि, चेल्हा गरु तसु तिय घर घर मिणि ।
तह तणइ कवि ठाकुरि सुंदरि, यह कहि किय संभव जिन मंदिरि ।

घत्ता—जो पढइ पढावइ णियमणि भावइ लेहइ लिहइ करि लिहिये ।
तहु भव की यहु फलु होइ निश्चिन्तु राम सुयशि गोयमु कहिये ।
वत्थुबंध—जेण सुमरि जिणवइ णवरोण करावियं एहु कहु ।
मेहुमालवय जिहि रयणिमय गुणु पुणि यहु लिहाविय करि ।
पयड कज्जि पंडियह विण्णिय मल्लाणंदु सु महियलह सेवउ सेवउ गुणह गहीर ।
नंदउ तब लगु कउलइ, वहइ गंगनदि नीर ॥११५॥

९. शील गीत

यह एक छोटा-सा गीत है जिसमें ब्रह्मचर्य की महिमा बतलायी गयी है। प्रारम्भ में कुछ उदाहरण दिये गये हैं जिनमें विश्वामित्र एवं पाराशर ऋषियों के नाम विशेष रूप से गिनाये गये हैं जो ब्रह्मचर्य के परिपालन में खरे नहीं उतर सके। अन्त में इन्द्रियों पर विजय पाने पर जोर दिया गया है। गीत का दूसरा एवं अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

सिंघु वसइ बन मज्झि मंस आहारि बली अति ।
वार एक वरस मैं करइ सिंघणी सरि सुरति ।
पेषि परे वो पाषु जासु मन मुडइ न मासुर ।
खाइ खंड पाषाण कामु सेवइ निसि वासर ।
भोयणि असेसु महु ठकुरसी इहु विकार सब मन तणौ ।
सील रहहि ते स्यंभ नर नहि यति पारापति गिणौ ॥२॥

१०. पार्श्वनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन पं० मल्लिदास के आग्रह पर निबद्ध किया गया था। इसमें चंपावती (चाकसू) के पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की गयी है। पूरा स्तवन १५ पद्यों में पूर्ण होता है। स्तवन प्रभावक एवं सुरुचिपूर्ण है। इसका अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है—

पास तणै सुपसाइ, पाइ पणमंति आइ धरि ।
पास तणै सुपसाइ आइ, चक्कवइ रिद्धि घरि ।
पास तणै सुपसाइ सग्ग सिव सुक्ख लहिज्जै ।
पास तासु पणमंति भंगि आलस कुन किजे ।
ठकुरसी कहि मलिदास सुणि हमि इहु पायो भेदु इव ।
जिणि जं जं संपद संपजै, तं तं पास पसाउ सव ॥१२॥

११. सप्त व्यसन षट्पद

कविवर ठक्कुरसी की जिन ६ कृतियों की प्रथम बार उपलब्धि हुई है उनमें "सप्त व्यसन षट्पद" प्रमुख कृति है। जिस प्रकार कवि ने पञ्चेन्द्रिय वेलि में पांच इन्द्रियों की प्रबलता, तथा उनके दमन पर जोर दिया गया है उसी प्रकार सप्त व्यसनों में पड़कर यह मानव किस प्रकार अपना अहित स्वयं ही कर बैठता है। व्यसन सात प्रकार के हैं—जुवां खेलना, माँस खाना, मदिरा पीना, वेश्यागमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना। ये सातों ही व्यसन हेय हैं, त्याज्य हैं तथा मानव जीवन का विनाश करने वाले हैं।

पार्श्व वन्दना के साथ षट्पद को प्रारम्भ किया है। कवि ने कहा है कि पार्श्व प्रभु के गुणो का तो स्वयं इन्द्र भी वर्णन करने में जब समर्थ नहीं है तो यह अल्प बुद्धि उनके गुणों का कैसे वर्णन कर सकता है। कवि ने बड़ी ओजपूर्ण भाषा में अपनी लघुता प्रकट की है—

पुहमि पट्टि मसि मेरु होहि भायण जर सागर।
अघस अनोपम लेखि साख सुरतर गुण आगर।
आपु इंदु करि लिहै, कहै फणिराउ सहसमुख।
लिहइ देवि सरसत्ति लिहत पुणु रहइ नही चुप।
लेखणि मसि मही न उअरइ, थक्कइ सरसइ इंद पुणि।
आयो नवोडु कहि ठकुरसी तवइ जिणेसर पास गुणि ॥१॥

जुआ खेलना प्रथम व्यसन है। जुआ खेलने मे किञ्चित् भी लाभ नहीं है। संसार जानता है कि पाचों पाण्डवों एव नल राजा को जुआ खेलने के क्या फल भुगतने पड़े थे। उन्हें राज्य सम्पदा छोड़ने के साथ-साथ युद्ध का भी सामना करना पड़ा था। द्यूत क्रीड़ा करने से अनेक दुःख सहन करने पड़ते हैं। इसलिए जो मनुष्य द्यूत क्रीड़ा के अवगुण जानते हुए भी इसे खेलता है वह तो बिना सींग के पशु है।

जूव जुवारुयो घणी लाभु गुण किवइं न दीसइ।
मतिहीणा मानइ वेलि मति चिसि जपीसइ।
जगु जाणइ दुखु सह्यौ पंच पंडव नरवइ नलि।
राज रिधि परहरी रण्णु सेविउ जूवा फलि।
इह विसन संगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत्तु वसु।
इव जाणि जके जूवा रमै ते नर गिणिवि ण सींगु पसु ॥१॥

दूसरा व्यसन है मांस खाना। जीभ के स्वाद के लिए जीवों की हत्या करना एवं करवाना दोनों ही महा पाप के कारण हैं। मांस में अनन्तानन्त जीवों की प्रतिक्षण उत्पत्ति होती रहती है इसलिए मांस खाना सर्वथा वर्जनीय है।

मद्य पान तीसरा व्यसन है। मद्य पान से मनुष्य के गुण स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। शराब के नशे में वह अपनी मां को भी स्त्री समझ लेता है। मद्य पान से वह दुःखों को भी सुख मान बैठता है। यादवों की द्वारिका मद्य पान से ही जल गयी थी। यह व्यसन कलह का मूल है तथा यश और धन दोनों को ही हानि पहुँचाने वाला है एवं बुद्धि का विनाशक है। वर्तमान में मद्य पान के विरुद्ध जिस वातावरण की कल्पना की जा रही है, जैन धर्म प्रारम्भ से ही मद्य पान का विरोधी रहा है।

मज्ज पिये गुण गलहि जीव जोगै उवास्यो भणि।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि मणि।
मज्जु पिये वहु दुखु सुखु सुणहा मैथुन इव।
मज्ज पिये जा जादव नरिंद सकुटंब विगय खिव।
धण धम्म हाणि नर यहु गमणु कलहु मूल अवजस उतपति।
हारंति जनमु हेलइ मुगध मज्ज पियें जे विकलमति ।।३।।

वेश्या गमन चतुर्थ व्यसन है जो प्रत्येक मानव के लिए वर्जनीय है। यह व्यसन धन, संपत्ति, प्रतिष्ठा एवं स्वास्थ्य सबको नष्ट करने वाला है। सेठ चारुदत्त की बर्बादी वेश्यागमन के कारण ही हुई थी। कालिदास जैसे महाकवि को वेश्यागमन के कारण मृत्यु का शिकार होना पड़ा था। इसलिए वेश्यागमन पूर्णतः वर्जनीय है।

इसी तरह शिकार खेलना, चोरी करना एवं पर-स्त्री गमन करना वर्जनीय है तथा इन तीनों को व्यसनों में गिनाया है। ये तीनों ही व्यसन मनुष्य के विनाश के कारण हैं। शिकार खेलना महा पाप है। जिस कार्य में दूसरे की जान जाती हो वह कितना बड़ा पाप है इसे सभी जानते हैं। किसी के मनोविनोद के लिए अथवा जीभ की लालसा को शान्त करने के लिए दूसरे जीव का घात करना कितना निन्दनीय है? इन तीनों ही व्यसनों से कुल की कीर्ति नष्ट हो जाती है और केवल अपयश ही हाथ लगता है। रावण जैसे महाबली को सीता को चुराकर ले जाने के कारण कितना अपयश हाथ लगा जिसकी कोई समानता नहीं है। इसलिए ये तीनों व्यसन ही निन्दनीय है वर्जनीय हैं एवं अनेकों कष्टों का कारण है।

कवि ने अन्तिम पद्य में सभी सातों व्यसनों को त्याग करने का उपदेश देते हुए उनके अवगुणों को उदाहरण देकर बतलाया है।

जूव विसनि बन वासि अमिय पंडव नरवइ नलु।
मंसि गयो बगराउ सुरा खोयो जादम कुलु।
वेसा वणियर चारिदत्तु पारधि सवं उनिउ।
चोरी गउ सिउभूति विपु परती लंकाहिउ।
इक्के विसनि कहि ठकुरसी, नरइ नीचु नइ दुहु सहइ।
जइ अंगि अधिक अच्छहि विसन, ताह तणी गति को कहइ ॥८॥

रचना की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पांडे लूणकरण जी, जयपुर के गुटके में संग्रहीत है।

१२. व्यसन प्रबन्ध

कवि की यह दूसरी कृति है जिसमें सात व्यसनों की चर्चा की गयी है। उनके अवगुन बताये गये हैं और उन्हें छोड़ने का आग्रह किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध मुनि धर्मचन्द्र के उपदेश से लिखी गयी थी। मुनि धर्मचन्द्र भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और बाद में मंडलाचार्य बन गये थे। इन्होंने राजस्थान में प्रतिष्ठा महोत्सवों के आयोजन में विशेष रुचि ली थी।

मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठकुरि विस्न प्रबंध कह्यो।
पर हुरई जको ए जाणि गुणं, सो लहइ सरब सुख वंछित धणं ॥८॥
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं. तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥

प्रबन्ध में केवल आठ पद्य हैं तथा उनमें संक्षिप्त रूप से एक-एक व्यसन के अवगुणों का वर्णन किया गया है।

सप्त व्यसनों के सम्बन्ध में दो-दो कृतियां निबद्ध करने का अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि कवि के युग में समाज में अथवा नगर में सात व्यसनों में से कुछ व्यसनो का अधिक प्रचार हो। और उनको दूर करने के लिए कवि को पुनः प्रबन्ध लिखने की आवश्यकता पड़ी हो।

मद्य पान के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि मद्य पीने से आठ प्रकार के अनर्थ होते हैं। शराब पीने के पश्चात् वह माता एवं पत्नी का भेद भूल जाता है। मद्य पान से पता नहीं कौन-सा सुख मिलता है। मद्य पान से ही सारा यादव वंश समाप्त हुआ था।

जहि पीये पाठ अनर्थ करै, जननी महिला न विचार करै।
तहि मज्ज पिये भणु कवणु सुखो, अहि आदम वसहु विण्णु दुखो ॥३॥

१३. पार्श्वनाथ जयमाला

यह जयमाला भी स्तवन के रूप में है। चम्पावती में पार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर था और उसमें जो पार्श्वनाथ की प्रतिमा है उसी के स्तवन में प्रस्तुत जयमाला लिखी गयी है। जयमाला में ग्यारह पद्य हैं। अन्तिम पद्य में कवि ने अपना और अपने पिता का नामोल्लेख किया है। जयमाला का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

इह वर जइमाला, पास जिणु गुण विसाला।
पढहि जिणर णारी, तिण्णि सम्भ्र विचारी।
कहइ करि अमंदो, ठकुरसी घेल्ह नन्दो।
लहहिति सुख सारं, वंछियं बहु पयारं॥

१४. ऋषभदेव स्तवन

यह भी लघु स्तवन है जिसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की स्तुति की गयी है। स्तवन में केवल दो अन्तरे हैं। दूसरा अन्तरा निम्न प्रकार है—

इश्वाक वंस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भम भव हरणु।
सब अहल अवरु कहि ठकुरसी, तुहु समथ तारण तरणु॥

१५. कवित्त

कविवर ठक्कुरसी ने सभी प्रकार के काव्य लिखे हैं और वे सभी विषयों से ओतप्रोत हैं। प्रस्तुत कवित्त भी विविध विषय परक है और सम्भवत: कवि के अन्तिम जीवन की रचना है। कवित्त का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

अइरु बहिरइ सुण्यो नहु गीतु, जइ न दीठु ससि अंधलइ।
जइ न तरुणि रसु सढि जाण्यौ, जइ न भवरु चंपइ रम्यो।
जइ न धणकु कर हीणि ताण्यौं, जइ किणि नि गुणिनि लखणी।
कवि न कीयो मणणु, कहि ठाकुर तउ गुणी गुण नांउ जासी सुणु॥६॥

इस प्रकार अभी तक ठक्कुरसी की १५ कृतियों की खोज की जा सकी है लेकिन नागौर, अजमेर, एवं अन्य स्थानों के गुटकों की विस्तृत छानबीन एवं खोज होने पर कवि की और भी रचनाओं की उपलब्धि की सम्भावना है। ठक्कुरसी प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा सम्पन्न कवि थे इसलिए सम्भव है कोई महाकाव्य भी हाथ लग जावे।

कविवर ठक्कुरसी १६ वीं शताब्दि के ढूंढाड प्रदेश के प्रमुख कवि थे। उनकी रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होगा कि कवि ने या तो भक्ति परक रचनायें लिखी हैं या फिर समाज में से बुराइयों को मिटाने के लिए काव्य लिखे हैं। कवि का कृपण छन्द उन लोगों पर करारी चोट है जो केवल सम्पत्ति का सचय करना ही जानते हैं। उसका उपयोग करना अथवा त्याग करना नही जानते। कृपण छन्द जैसी रचना सारे हिन्दी साहित्य में बहुत कम मिलती हैं। इसी तरह पञ्चेन्द्रिय वेलि एवं 'सप्त व्यसन षट्पद' भी शिक्षाप्रद रचनायें है जिनको पढ़ने के पश्चात् कोई भी पाठक आत्म चिन्तन करने की ओर बढ़ता है। ठक्कुरसी का समय मुसलिम शासको की धर्मान्धता का समय था लेकिन कवि ने समाज का अपनी रचनाओं के माध्यम से जिस प्रकार पथ प्रदर्शन किया वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

ठक्कुरसी की रचनायें भाव, भाषा एवं शैली तीनो ही दृष्टियों से उत्तम रचनाये हैं उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उचित स्थान मिलना चाहिये।

□ □ □
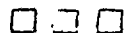
सीमंधर स्तवन

श्री सीमंधर जिन पय वंदौ, भवि नेत्र चकोरभिनंदौ ।
पुंडरीकणी पूर्व विदेहो, अतिशयवंत तहा प्रभु रे हो ।
रे है ज परमातशय जुत प्रभु, समवसृति मह्मिंडणो ।
तिहुलोक विजयी मोह रिपु, बलु काम दल सह भंजणो ।
परमेठि परमारथ प्रकाशक, पाप नाश दिगंबरो ।
भव जलधि पोतक पास मोचक, नमहु जिन सीमंधरो ।।१।।

तह युग्मंधर जिनराजै, साकेता मंडण छाजै ।
तिहुलोक जनाधिप वंद्यौ, मोहारि विजय अभिनंद्यो ।
अभिनंदियौ जगदेक स्वामी, मोक्ष गामी नीर जो ।
पंचसै धनुष प्रमाण देहो, मान माय विहंडणो ।
तत्वादि वेदी क्रोध भेदी, भव्य पूज्य परंपरो ।
दिन नाथ कोटि प्रभाधि शोभी, जयउ जिन युग्मंधरो ।।२।।

पछिम दिशि बाहु मुनीशो, विजयार्थ पुरी सिरि सीसो ।
निमितामर नर फणि लोको, विनि वारि तज न भय शोको ।
जन शोक वारण सौख्य कारण, जनम मरण जरा हरो ।
परमारथ रत्नत्रय विराजित, सुध चेयण गुणधरो ।
चर अचर लोक अतीत नागत, वर्त्तमान सु गोचरो ।
उत्पादन ध्रौव्य यैक ग्याता, जयहु बाहु जिनेस्वरो ।।३।।

।। लीखंत ठाकुरसी ।।

नेमिराजमति वेलि

सरसय सामिणि पय जुयल, नमौ जोडि कर दोइ ।
नेमिकुमार राजमती जती कहु'उ, सुणहु सब कोइ ॥१॥

आइ मास बसंत रुति, जन मन भयौ अनंदु ।
सब्बइ वन कीला चल्या, मिलि द्वारिका नरिंद ।
मिलि द्वारिका नरिंदो, वसुधो बलिभद्दु गोविंदो ।
समदविजै दर्स दसारा, सिवदेस्यो नेमिकुवारा ।
सतिभामा रुपिणि राही, जंबवंती रुरिसउ माही ।
ले सोलह सहस मगिवाणी, चारथो चाली पटराणी ।

चाल्या दल बल रूप निधानो, पडदवरा जुभानु सुभानो ।
परधान परोहित मंत्री, मिलि चल्या सयल भड खित्री ।
हय गय रथ जाग जंपाणा, मिलि चाल्या जादम राणा ।
मुखि कहै किता इक जोडे, मिलि चलिया छप्पण कोडे ।
हल रज पसरी चौपासा, नहु सूझै सूर अगासा ।
गवि सुग छोडि सहु देसी, वन मिसि मति मारै केसो ।
सिरि छत्र चमर दुइ पासा, सोहइ सिरि पडी पभाषा ।
बाजा बाजै बहु भंते, बंदियण विरुद पभणंते ।
मनि आनदु अधिकु वहंता, हरि विंदु बनिहि संपत्ता ॥२॥

दोहडा

गीत नाद रस पेषणा, परिमल सुख संजोग ।
तरु छाया वल्लीभवण, फिरि फिरि भुंज्या भोग ॥३॥

जहि जहि केलि करंतु, वनिहीडो नेमिकुवारु ।
तहि तिय काही स्याममहि, लागी फिरैति लार ॥४॥

लागी फिरहिति लारा, भरि जोवन रूप अपारा ।
कातोव जिसु दीठो चाहैं, तलि वधु खिस्योरि न साहैं ।
कवि रूप रवणरलि वाली, चलि एक आजि उठ चाली ।
कवि कहै कुंवर मा जाहे, तुझु रूपु मिलो थिर थाहे ।

किकि विठि केवण की बाऊ, तिसु ससि जे चलितु विलाऊ ।
कवि कहइ सुणिय बसु असु, बसु परनइ मुहु मयसु ।
इणि परिहिं पसोपक पवारा, बहु करिहिति काम विकारा ।
जिणु तब इल विठि दे बोलैं, बाउं मेरु पवन भी डोलैं ।
तब रैवयणु नर नारे, रंगि रमाहिति वनहु मझारे ।
वनि रमत हुवो बहु काका, जलि न्हाणि सरोवर धाया ।
जल माहि केलि कीइं जैसी, कवि सकइ कवणु कहि तैसी ।

दोहरा

जल विनोद करि नीसरया, मन हरषी नरनारि ।
पहिरि वस्त्र आभरण अंगि, आवहि नयर मझारि ॥५॥

सिवदे रूपिणिस्यौ कह्यौ कहा रही मुह मोडि ।
नेमि कुवर कपहरणी, देने बहु निचोडि ॥६॥

देनैं बहु निचोडे, तिन उत्तरु दियौ बहोडे ।
जो सारगु धणकु चढावै, सौ संखु पंचाइणु बावै ।
चढि नाग सेज जो सोवै, रूपिणि तसु वस्त्र निचोवै ।
सुणि सतिभामा कर जोडे, ले दोनौ वस्तु निचोडे ।
तब सिवदे तणइं कुमारे, मनि निमय चढ्यो अहंकारे ।
वरजंता सहि रखवाला, प्रभु पैठौं आइधु साला ।
मनि भिणइं न क्यों रंगि रत्तौ, चढि नाग सेज सिरि सूतौ ।
चरणांगुलि धणकु चडायो, नासिका संखु धरि बायौ ।
सुणि सबदु संखु जग कंप्यौ, इहु कहा हुवउ इम जंप्यौ ।
सुणि संख सबद हरि डोल्यौ, बलिभद्र इम बोल्यौ ।
अहो भाई विरण ठीकाजो, अहि तवि यह लेसी राजो ।
को मोटो मंत्र उपाये, तसु ले धरि तजि वन जाये ।
तब कुडइ मनि सलिअंगी, आयौ उग्रसेणि विय मंगी ॥

दोहरा

सुरवर जादव मिलि चल्या, ब्याहण नेमिकुमारि ।
पसु दीया गुवाडा भरया, बंध्या ससुर दुवारि ॥७॥

हरण रोझ सूवर ससा पुकारहि मुह वाहि ।
नेम कुमर रथु थांभि करि, बूझ्यो कारण काहि ॥८॥

रे सारथि ए आजे, पसु बंधि धर्या किरिण काजे ।
तिरिण जंप्यौ कृष्न अनाथी पसु जाति जके भमिआया ।
पोर्खीबा अपति बराती, पसु वधि वासहु परभाती ।
तव नेमिकुमरु रथु छोडी, पसु मुकलाया बंध तोडो ।
भयभीत जीव ले भागा, त्रिभुवनु गुरु चीतरण लागा ।
इहु जीव विषइ कउ चाल्यौ, हुउं जिहि जहि जोरणी चाल्यौ ।
तिहि तिहि तिय पासि बधायौ.............................
इब सो तपु तपउं विचारे, ज्यौं फिर न पडौ संसारे ।
इम चीति कं चल्यौ कुमारो, आयो राखण परिवारो ।
अहो कवर कवरिण तूं वांछौ, तप्र लेवा जोग उमाह्यौ ।
तपु तपिउ न वालैं आई, करि व्याहु करहि समझाइ ।
जब प्रोढउ होहि कुमारि, तव लीजह तपु भवतारि ।
हसि नेमि कुवरु तब बोलै, मुझ जनम मरणु मन डोलै ।
जइ अइ पहुचइ कालो, तव गिणइ ण वूढो बालो ।
जहि जहि जोणी हो जायौ, तिहि तउ कुटंबु उपायौ ।
इहु मोहु कवरण परिकीजै, तिणि काजि माइ तपु लीजै ।
माइ बापु दुवै समझावै, परियण जण सयल समावै ।
विलवंतु साधु सवु छोडे, गो नेहु निमष मै तोडे ।
आभरण ते वस्त्र उतारे, चढि लीयो तपु गिरनारे ॥

दोहडा

सुरिणय बात राजमति कवरि परिहरियो सिगारु ।
पिउ पिउ करती तिह चली, जहि बनि नेम कुवारु ॥६॥

माइ बाप बंधव सखी, समझावहि कहि भाउ ।
अवरु वरहि वरु भावतो, गयो नेमि तौ जाउ ॥१०॥

गयउनु दै पिउ जाणी, उन कहहि सुकरु किरि प्राणी ।
जंपइ रजमतीय अणेरा, जिण विरणु वर बंधव मेरा ॥११॥

कइ वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लैउ कुमारी ।
चढि गैवरि को खरि वैसे, तजि सरगि नरकि को पैसे ॥१२॥

तजि तीणि भवन कौ राई, किम अवरनु बरौ वरु माई ।
समझाइ राखि सवु साथो, तिहां चलीय जिहा पिउ साथो ॥१३॥

तिय भाव अनेक दिखाया, तिनि संवइ न चित्त डुलाया ।
भूली राजमती मनि चिंतै, नाउं घुणु लागै वज्र थंभै ॥१४॥

बिलखी पडि हियै विचारी, लघु तपिउ तिहां पिउ पासै ।
लघु तपिउ करी क्रिषि काया, रजमतीय अमर फल पाया ॥१५॥

राखियो कामि मन जोरो, तप तपिउ नेमि अति घोरो ।
तजि मोहु मानु मदु रासा, अति सहिया विषम परीसा ॥१६॥

तिहसंठ कर्म्म बलु घायो, पर केवल णाणु उपायो ।
मलधौत भई सब दूरे, हुउ समोसरणु रिषि पूरे ॥१७॥

फिरि देसु सयलु समझाया, नर तिरिय धरम पथ लाया ।
बूंझता हरिबल तोसो, भाख्यो द्वारिका हि विणासो ॥१८॥

जहि जहि मनिऊ मति अनेरी, बूंझता हरि तिहि केरी ।
अवसाणि आइ गिरणारे, गये मुकतिहु दो भवपारै ॥१९॥

जर जनमु मरणु करि दूरे, हुउ सिद्ध गुणहं परि पूरें ।
कवि घेल्ह सुतन ठाकुरसी, किये नेमि सुजसि मति सरसी ।
नर नारि जको नित गावैं, जो चिंतै सो फलु पावैं ॥२०॥

॥ इति श्री नेमि राजमति वेलि अति ठाकुरसी कृतं समाप्त ॥

पञ्चेन्द्रिय बेलि

स्पर्शन इन्द्रिय

दोहा—

बन तरुवर फल खातु फिरि, पय पीवतौ सुछंद ।
परसण इन्द्री प्रेरियौ, बहु दुख सहै गयंद ॥

छंद—

बहु दुख सही गयंदो, तसु होइ गई मति मंदो ।
कागज के कुंजर काजे, पडि खाडम सक्यौ न भाजे ।
तहि सहिय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दुखो ।
रखवाला बलगउ जाण्यौ, वेसासिराय धरि आण्यौ ।
बंध्यौ पगि संकलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले ।
परसण प्रैरै दुख पायो, निति अंकुस घावां घायो ।
परसण रस कीचकु पूर्यौ, गहि भीम सिला तल चूर्यौ ।
परसण रस रावण नामै, मारियउ लंकेसुर रामै ।
परसण रस संकर राच्यौ, तिय आगै नट ज्यौं नाच्यौ ।
इहि परसण रस जे धूता, ते सुर नर घणा विगूता ॥१॥

रसना इन्द्रिय

दोहा—

केलि करंतौ जनम जलि, गाल्यौ लोभ दिखालि ।
मीन मुनिष संसारि सरि, काढ्यो धीवर[1] कालि ॥

छंद—

सो काढ्यौ धीवरि काले, तिणि गाल्यौ लोभ दिखाले ।
मछु नीर गहीर पइठौ, दिढि जाइ नही जहि दीठौ ।
इह रसणा रस कउ चाल्यौ, थलि आइ मुवै दुख साल्यौ ।
इह रसना रस के तांई, नर मुसै बाप गुरु भाई ।

---

१ भींवरि

घर कोई पाडै वाटा, जिति करै कपट घण घाटा ।
मुखि कूड साच नहि बोलै, घर छोडि दिसावर डोलै ।
कुल ऊंच नीच नहि लेखै, मूरख जहि तहि मिलि भेखै ।
इहु रसना रस के लीए, नर कुण कुण कर्म न कीए ।
रसना रस विषै भकारी, वसि होइ न औगण भारी ।
जिहि इहुर विषै वसि कीयौ, तिहि मुनिष जनम फल लीयौ ।।२।।

घ्राण इन्द्रिय

दोहा —

कमल पइठौ भ्रमर दिनि, घ्राण गंधि रस रूढ ।
रैणि पडी सो संकुच्यो, नीसरि सक्या न मूढ ।।

छंद—

अति घ्राण गंधि रस रूढो, सो नीसरि सक्यो न मूढो ।
मनि चिंतै रयणि गवायो, रस लेस्यौं भजि भवायो ।
जब उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो ।
नीसरिस्यौं तब इहु छोडै, रस लेस्यौं आइ बहुडे ।
चिंतवतै ही गज आयौ, दिनकर उगवा न पायौ ।
जलि पैसि सरवर पीयौ, नीसरत कमल खुडि लीयो ।
गहि सुंडि पाव तलि चंप्यौ, अलि मार्‌यौ घर हर कंप्यौ ।
इहु गंध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यो न विचारी ।
इहु गंध विषै वसि हुवौ, अलि अहुलु अखूटो मूवो ।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तब गंध लोभ नहि कीजे ।।३।।

चक्षु इन्द्रिय

दोहा—

नेहु अखण्डलु तेल तसु बाती वयन सुरंग ।
रूप जोति परतिय दिवै, पडहिति पुरुष पतंग ।।

छंद—

पडहिंति पुरुष पतंगो, दुख दीवै दह इति अंगो ।
पवि कोइ तहां जीव घालै, दिठि बंधिन मूरख रालै ।
दिठि देखि करै नर चोरी, दिठि देखित कै पर गोरी ।
दिठि देखि करै नर पापो, दिठि दीहां वंछइ संतापो ।

दिठि देखि अहल्या इंदो, तसु विकल गई मति मंदो ।
दिठि देखि तिलोत्तम भूल्यौ, तप तपिउ विधाता डोल्यौ ।
ए लोयण लवट भूठा, वरज्या नहि होइ अपूठा ।
ज्यौ वरजै ज्यौ रस वाया, रंगु देखै आपणु आया ।
लोयणह दोस को नाहि, मन प्रेरै देखण जाही ।
जे नयण दुवै वसि राखै, सो हरति परति सुख चाखै ।।४।।

कर्णेन्द्रिय

दोहा—

वेग पवन मन सारिखो, सदा रहे भय भीतु ।
बधीक वाण मार्‌यौ हिरण, कानि सुणतौ गीतु ।।

छंद—

सो गीत सुणंतो कानै, मृग खडो रह्यो हैराने ।
धणु खेंचि बधीक सरि हणियौ, रसि बीधौ घाउ न गिणियौ ।
इह नाद सुणंतो सांपो, बिल छोडि नीसर्‌यौ आपो ।
पापी घडियालि खिलायो, फिर फिर दिनि दुख दिखायो ।
कीदुरि नाद नर लागै, जोगी हुइ भिष्या मांगै ।
वाहुडहि न ते समझाया, फिर जाहि घणा घरि आया ।
इहु नादु तणो रस अैसो, जगि महा विषम विसु जैसो ।
इह नादि जिके मरि भिलिया, ते नर त्रियवेगि[1] न मिलिया ।
इह नाद तणैं रंगि रातौ, मृग मिध्यौ नही जीउ जातौ ।
मृग भाव उपाव विचारो, तौ सुणणउ नादु निवारे ।।५।।

दोहा—

अलि गजु मीनु पतंग, मृग एके कहि दुख दीध ।
आइति भौ भौ दुख सहै, जिहि वसि पंच न किद्ध ।।

छंद—

जिह वसि पंच न किरिया, खल इन्द्री अवगुण भरिया ।
तिहि जप तप संजम खोयो, सतु सुकृत सलिल समोयो ।

---

१. तिय संगिन

सब हुरतु परतु सत हारे, जिहि इंद्री पंच पसारे।
जिहि इंद्री पंच पसार्या, तिहि मुकति [illegible] कमि हार्या।
नित पंच वसै इकक घमे, सिर और और ही रंगे।
चखु चाहै रूप जु दीठो, रसना मख भखै सु मीठो।
निति न्हालै घ्राण सुगंधो, सपरसण कोमल बंधो।
निति श्रवण गीत रस हेरै, मन पापी पंचै प्रेरै।
मन प्रेर्यो करै कलेसो, इंद्रियान दीजै दोसो।
कवि घेल्ह सुतनु गुणधामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु।
करि बेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समुझाया।
मन मूरिख संक उपाइ, तिहि तणइ चिति न सुहाई।
नहि जंपौ घणो पसारो, इह एक वचन छै सारो।
संवत पंद्रहसैरे पिच्यासे, तेरसि सुदि कातिग मासे।
जिहि मनु ईंद्री वसि कीया, तिहि हरत परत जग जीया ॥६॥

॥ इति पञ्चेन्द्रिय बेलि समाप्त ॥

चिन्तामणि जयमाल

पणविवि जिण पासहु पूरण आसहु दूरक्खिय संसार मलु ।
चिन्तामणि जंतहु मणि सुमरन्तहु, सणहुजेम संजवइ फलु ।।१।।

महारस गुंजा समादुण्णिणेत्तं, सुणे सदुत्तं कासु संकण्ण चित्तं ।
हुरो होइसो काणणे जंबुमत्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।२।।

दिढं भूसलाया रवंतं पयडं, मऊणिफरंतो किए उच्च सुंडं ।
न लभोइसो सिन्धुरो थूल मत्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।३।।

विसे वासि अदुण्णि गोको प्रसंतो, न भण्णेय मूली कियो मंत मंतो ।
ण लोभाइ चून्यो फणी भ्रप्पमित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।४।।

समीरे सहाए मिली धूम झालं, णावापेखि मंगं फुलिंग विसालं ।
णडुक्केइ या अग्गिणु खीर सित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।५।।

ण तीसार चित्तं भमंरोहारीयं, नगलं बलं मण्डलं सण्णिवायं ।
ण दुट्टं जरा दुट्ठ खेखाल चित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।६।।

कुदेवा गहा डायणी भूमिपालं, दिनाइ विसं कम्मणं बन्ध बालं ।
कुसवणं कुसप्न न लग्ग तिणित्त, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।७।।

जरी सकले देह रक्खो विनाणे, जरासीसु विट्ठुसतं दिट्ठं कुट्ठाणे ।
गिऊ दूरि तट्ठो णियंताइ णेत, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।८।।

समुद्देर वट्टे प्रकाहे अगम्मे, पडयो को वितच्छो किए पुव्व कम्मे ।
तहा होइसो जाइणो पाइ जितं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।९।।

बरो बीढथा वेढ सूली दुहाला, गले भल्लिऊ सप्पु होइ फुल्ल माला ।
णलग्गंति घायं रणे दिण्ण सत्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।१०।।

तिया रूप सीलग्गला पुत्त मत्ता, ससोही कुणवी गुणी हुंति मित्ता ।
घुणो हुंति गेहे समाणं सुवित्तं, भरंतासु चितामणे जंतु चित्तं ।।११।।

इय वर जयमाला गुणह विसाला पेलहु सतनु ठाकुर कहए ।
जो णाक सिद्धि सिवकइ दिसि रिसि अक्खइ सो सुहमण वंछिउ लहए ।।१२।।

।। इति चितामणि जयमाल समाप्ता ।।

कृपण छन्द

किपणु एकु परसिद्धु नयर निवसंति विलखणु ।
कही करम संजोग तासु घरि नारि विचक्खण ।
देखि देखि दुहु की जोडि सबु जगु रहिउ तमासइ ।
यहुर पुरिष कै याहु दई किम देइन वासै ।
वा रहिइ रीति चालै भली दान पुज्ज गुण सील सति ।
वा देव खारण धरम किवै, दुवै करहि दिनि कलहु अति ।।१।।

गुरस्यो गोठि न करै, देउ देहुरी न देखैं ।
मांगिन भूलि न देई, गालि सुणि रहै अलेखैं ।
सगी भतीजी भुवा बहिण भाणिज्या न ज्यावइ ।
रहै रूसणो मांहि आपु ज्योंती जिव पावै ।
पाहुणो सगो आयो सुणो रहइ छिपिउ मुख म रालि करि ।
जिव आइ तिवहु परि नीसरै, यो धणु संच्यो किपण नर ।।२।।

सुहु परयणु संचरै, सोवै तलि तिणा बिछावै ।
सब चीपाटवि काहि मोलि धरि तवै न ल्यावइ ।
ऊपरि जूडा छानि घर दश तणि जु बांधी ।
टूटि टूटि तिणि पडइ चालि बाजै जब आंधी ।
सहि डहो भीति सेरी पडी देखि देखि देइ गालि नर ।
मारिजै वर मीतो बडै, तवै न छावै कृपण घर ।।३।।

सघला पहिला उठी मांघि ले देइक माइ ।
घघि आयो सिरि भार बाज वस फिरै बिलाई ।
घरि भूखो परिवार चार तसु टग टग चाहै ।
जब आवै पाणीयो तासु तब आपु बिलाई ।
लेइ तवा लोचि ओवस्यो जहि बरस्या हुइ किमवि ।
ईम रहइ रालि कूपक कियसु वहु को जाणै नव नृपति ।।४।।

झूठ कथन नित खाइ मेलो लेखो नित झूठो ।
झठ सदा सहु करै झूठ नहु होइ अपूठो ।

झूठी बोलै साखि झूठे झगडे नित उपावै।
जहि तहि बात विसासि धूति धनु घर महि ल्यावै।
लोभ को लियो चेते न चिति जो कहिजे सोइ खवै।
धन काजि झूठ बोलै कृपणु मनुष जनम लाधो गवै ॥५॥

कदेन खाइ तंबोलु सरसु भोजन नहीं भक्खै।
कदेन कापड नवा पहिरि कामा सुख रक्खै।
कदेन सिर में तेल मल मूरख न्हावै।
कदेन चन्दन चरचै अंग अबीरू लगावै।
पेषणो कदे देखै नही श्रवणु न सुहाइ गीत रसु।
घर घरणी कहै इम कंतस्यौ दई काइ दीन्हौ न पसु ॥६॥

सिरि बांधै चीथरी रहइ तलि किए न गौटो।
अग उघाडी दुवै झगी पहरौ गलि छोटौ।
पडहि जूव सैनार कदे कापडा न धोवै।
हाथ पाग सैर को मेलु मलि मूलिन न खोवै।
पहरि वावा णीथर चण तणी नीसत नहि उट्ठै।
रलायौ सधरि सवरि तहि नणी गुण पडी कृपण घण दूबली ॥७॥

ज्यौ देखै पहरंत खंत खरचंत अवर नर।
बैठा सभा मझारि जाणि हासति कुसम सर।
देखि देख तहु भोगु कृपण तिय कहै विचारी।
ज्याह तणी एकंत पुणि पूरी तेजारीमइ।
पुव्व पाप कृत आपणी कंतु कुमाण सभरि लद्यौ।
इकु कृपणु अरु करपु कुबोलणो लाज मरो लक्खण रह्यो ॥८॥

ज्यो देखे देहुरै त्याह की वर नारी।
तलि पहर्‌या पटकूला सव्व सोवन सिगारी।
एकि करावै पूज एकि ऊभी गुण गावै।
एक देहि तिय दाणु एक शुभ भावन भावै।
तिह देखि मणी हीयो हणी कवणु पापु दीयो दई।
जहि पाप किणही पापीणी कृपणुकंत धरि घण हुई ॥९॥

कै कुदेव पूया कैरू जिण चलण नवाया।
कै मै पेख्या कुगुरु साधु गुरु सावति निंद्यौ।

कै मै बोलति कूड़ अवर किहु अयस न चाली ।
कै मैं ओडबु कियौ अति वत संखाए ।
स्वामी पुन्य आदु आयो उदै, कृपणु कंत पायो पड़यौ ।
तो दिन पापु रिषण सुहै, मरणही मिसि पावै लड्यौ ॥१०॥

इणीइ रीतिरहि कृपणि घुलि धसु घणी उपायौ ।
ले सुणि पासै अार माडि पुर बाहरि आयौ ।
क्यौ कलतरि आणिया ताहु जे भेदे न अवली ।
क्योरि करै अडसाल ज्योर नल मुनिषुन लवे ।
परिवार पूत बंधव जणहु नीध कुनहु पतियइ कसु ।
यों सूमि सदा धन एकठो करि करि राख्यौ माप वसु ॥११॥

दुख मरती देहुरे तासु तिय आइ सवारी ।
एकहि दिणि तिणि सुन्यौ संघु चाल्यौ गिरनारी ।
रयण समै करि जोडि कहिउ पिय सरिसु हसंती ।
सुणहि स्वामि महु एक तणी वीणती ।
नर नारि सवै कोऊ भरथा लीया परोहण घर जु धरि ।
वंदिस्यौ आइ श्री नेमि अरु दडि सेत्रोलंजसिरि ॥१२॥

तूती करि पिय मतौ चडहि दुवे गिरनारीय ।
वंदहु नेमि जिणंदु जेणि तिय तजिय कुमारीय ।
दीप धूप फल लेइ चरू अक्खत केसर ।
कुड मयंदी न्हाइ पाइ पूजा परमेसर ।
अरु चडहं दुवें सेतंजसिरि जनम जनम की नाइ मलु ।
उपजानजो पसु नर नरकि लहि अमर पदु परम फलु ॥१३॥

नारि वचन सुणि कृपणि सीसि सलवटि घणपल्ली ।
कि तू हुई घस बावली कि घण थारी मति चल्ली ।
मै घणु लड न पंडयौ मेर घणु लियौ न चोरी ।
मै घणु राखु कमाइ आपु आणियौ ना जोरी ।
दिनि राति नींद तिस भूख सहि मैर उपायौ दुखि घणौ ।
खरचि वा तणो बाहुडि वचनु घरए मू पावे मव भणो ॥१४॥

कहै नारि सुणी कंत वचन किकु सख्यौ अछी मयी ।
नहु नव निढि मूकि तसु पैलए लछी ।

अवर किता नर कहउ ज्याह संचीहु स्याहु झूरवो ।
इम जाणि कंत अब सहरणै जिन सूकहि करि कठिणु मनु ।
ज्यौ ब लमिलु तणइ श्ररिइ इ छुयो होइ अनंत घनु ।।१५।।

कहै कृपणु सुणि मूध भेदु जणु लहइ न जायो ।
धन बिनु कोइ न सगौ पूत परियण तिय बंधव ।
धन विणु पंडिलु मोधु पिचापित अंजलि पीणी ।
धण विणुवि तिय हरिचंद राइ वेचा पुरि राणी ।
....।।१६।।

नारि कहै सुण कंत अर्क दाता रहुवा घर ।
करण भोज विक्कम अजो जीवै.........................।
नर सूम सदा अपवित्त सूसु सामुहो असीणो ।
सूमन ले कोइ नाउ तालसिरि दे सब कोणो ।
दातारि कृपणि यह अन्तरो लीजै ज्यौ क्यों लेहि फलु ।
नातरि धन गुण वजन जन भोन भरि अंजलि करि देहि जलु ।।१७।।

कहइ कृपणु करि रोसु काइ घण धीर ठावि संचहि ।
मू घर जाता रहै हुठु आपणी न छडै ।
करहि पराई होइ जाइ घरि लछि अलेखै ।
झूठि भेदु ना लहहि आप घर दिसै न देखै ।
नित उठि बात जपिहि सयाणी ज्यांहु चलै मझु कंपणी ।
ते गलौ हाथ जिह खरचि जे लछि पाई आपणी ।।१८।।

कहै नारि सुणि कंत थनि सो जणती जायौ ।
जहि नर करि अपणै वित्तु विलुसियो उपायो ।
होइ न कीज्यै पापु पुण्य की होइ करन्ता ।
होइसु असु संसारि परति संचलो भरन्ता ।
धरि हुई लछि पुणि पहिल कै पीहुण खर्च आपणो ।
ते नर अचेत चेत्या नहीं दसिया संपै सापिणी ।।१९।।

तबहि कृपणु करि रोस कसि घर वाहिरि चलीयो ।
ताम एकु सामहो मंतु धरि वेलो मिलियो ।

कृपणु कहै रे कृपणु काँमि तू कृपण दिट्ठो ।
कि तुं रावलि गह्यो कैम घर चोर पइट्ठो ।
धाइयउ कि कौ चरि पाहुणौ कीयौ मर जोवन सरसि ।
किणि काजि मीतरे काजि तुच मुच खिलीसु दीठो विरसि ॥२०॥

कृपणु कहै रे मंत मुझ घरि नारि सतावै ।
जाति पालि वणु खरचि कहै सो मोहिय भावै ।
तिह कारणि दुब्बली रयण दिण भूखण लग्गइ ।
मंतु मरण माइयो मझ मच्यौ तू आवै ।
ता कृपण कहै रे कृपण सुणि मीत मरणु न माहि दुखु ।
पीहरि पठाइ दे पापणी ज्यौं को दिणु तू होइ सुखु ॥२१॥

कृपण बचन सुणि कृपण हरिषु हीयो प्रति कीयो ।
पुरिष ले एकु सखि लेखु झूठो लिखि दीयो ।
तिय आगे वाचौ छे तुझ जो जैठो भाइ ।
वुहि घरि जायो पूत तुं घरि जण कोकी आइ ।
तुटिसी प्रीति जै ना चलि सिसू नेवो सुण बापडी ।
जाणंती पिउ परपंच चल चली नवि जासापहि ॥२२॥

तिलै संघु सामह्ी साथि लीयो भड भारी ।
हय गय रह पालिका चलिवि चल्ली नरनारी ।
जंत जंत गिरनैर पहु राजलु वर वंदो ।
साइ पञुण चडेवि पुन्य कृत पाप निकंदो ।
भरु दिट्ठ जोइ सेत्रुंजइ घनहु रच्यौ कलस घणु ।
मनुष जनम को फल लीयो फिरि फिरि वंद्या जिन भवणु ॥२३॥

ठाइ ठाई ज्योणार कीय व्यापार महोच्छा ।
ठाइ ठाइ संग पूज दिठ चित किया सुवेच्छा ।
ठाइ ठाइ मंडियाहं दाणु सुजसु उपायो ।
बाजत ढोल निसाण संग कुसलहं घरि आयौ ।
इकु पुन्य उपायौ पूरिस्यौ ल्याया लोग असंख धणु ।
या वात सुणी ज्यौ किमणु त्यौ ते तसु पछिताइ मणु ॥२४॥

कहै कृपणु नित उठि अइरहीं चालौ हुलो।
पडिसती जिउणार आ तुम रखतो न टौली।
इसि परिल्यां तो अछि रहिव सगली मति बोली।
उठि चली हीयो हुणी सिव पीटैं ले दुबै कर।
अति पणसा कृपणु नेऊसूनी सूल सफोदर तासु जव ।।२५।।

तव मरतो जाणि करि सवल परियण मिलि आयो।
बंध न पुत्त कलत्त मात कहि कहि समझावहि।
ज्यो आगै हुई सुखी खरचि लै सुकृत सबलौ।
ते वल्हो घरो बताव धाइजो जीवै पालो।
कुल कहि रह्या सवैं बोलतहीं कृपण कोपु लगाउ करण।
घर सारि आइ अबरो कहे भांति कंत दूकउ मरणु ।।२६।।

कहै कृपणु करि रोसु काइ मिलि मूनोवाहो।
थोर न बूझै सार थोरे धनु लीयो चाहे।
जीवंतां अरु मुक्हु कोण छणु मुझ ले सक्कइ।
कै लै चालो साथि कैर धणु धरती थकैं।
त्यो काढि थाइ अवरहु जनमि तुहि न बताउ धरिउ धणु।
सुणि वात उठि बधव थया तितै पहुतै फटण दिणु ।।२७।।

तवहु मरतो कहै लच्छि प्राणइ ठाणंती।
माई परियणु पूत मैरू राखो तु पांती।
वादनू प्रति सतहीं देखि दुष्ट बस्सा उपाई।
मांम तामं गिरणी काजि तु ं मालि दिवाई।
एहु चोर ठग्गारी आणि थो मे राखी करि जतनु तुमु।
सिगुस सिलकज्जुनि लछि इब···· ·····।।२८।।

लच्छि कहै रे कृपण झूठ हो कदे न बोलो।
तु को चलस दुइ देइ मैल त्याभी तसु चालो।
प्रथम चलस मुझ एहु देव-देहुरे ठविज्जे।
दूजे जात पतिट्ठ दाणु चउतबहि दिज्जै।
ये चलण दुवै तै भंजिया ताहि विहुली क्यों चलौ।
भूलमारि जाय तु हो रही वहुडी न संगि थारे चलो ।।२९।।

यौं ही करता कृपरण..................................बाकी ।
बोल न बोल्यो भयो तैरा किकरण समझि ले सबकी ।
नाज..............................सयल भणु करती संदूयो ।
गयो नरगि.......... कृपट कृपरणु तहा पंच परि दुख सह्यौ ।
गाव मै जेता नारी पुरिष भला हे मुवो सगलाहं कह्यौ ।।३०।।

मूवो कृपरणु कुमीच लोग सयलाह मनि भायो ।
रह्यो राति घर माहि कोइ बालिवा न आयो ।
सब राति हि जणह बीस पुर बाहिरि राल्यौ ।
पूरा हुवा रणी काठ रहित तैठै अध बाल्यौ ।
घर नारि पूत बंधव खिल्या मनि हरिष्याइ जुवो जुवो ।
पहरिस्या खाइस्या खरचस्याह भलो हुवो जै इह मुवो ।।३१।।

कृपरणु गयो मरि नरगि तिहां दुख सह्यौ अलेखै ।
रोवै करै कलाप करणै कहै हम अक्खै ।
गत जारी मूं जोग गेगरु इब निरमै पाउं ।
जिती करो धरि लछि तिती पुणि मारगि लाऊं ।
हंसि जंपहि असुर कुमार तसु मुनिष जनमु सूझे कहां ।
तुं मनसि जनमि पडिसे नरगि दुखु दारुरणु लागै जहां ।।३२।।

तैं धनु कूडि कपटि .. ..परिपंच उपायो ।
न तै जो लप विट्ठ देव देहुरै लगायौ ।
न तैं करी गुर भगति न ते परिवार संतोष्यो ।
न तै भुवा भाणिजी न तै पिरीजणु पेख्यो ।
न तै कियो उपगार अङि जौ तू नै आडो फिरो ।
बो गवो पाप फलु आपणो मत विलाप कारण करै ।।३३।।

एक तलै तेल में एक अंगि सूली बामै ।
एक घाणी मै पेलि एक काटा सिरी स्वारणै ।
इक काटै कर चरण एक गहि पांव पछाडै ।
एक नदी मैं छोड़ बहुडि खाडै खणि बाडै ।
इकि छेद सरीर तिलु तिलु करिवि सु पा राज्यौ मिलि ।
आइणि सागर बंध दुख भोगवै नरइण पूरि आयु बिलु ।।३४।।

इसौ जाणि सहु कोइ मरइ स पूरिव धनु संच्यौ ।
दान पुण्य उपगार वित धनु किवैन संचौ ।
दान पुनी यह रासो असो पोष पावै आनि जाणि ।
जिसउ करणु इकु दानु तिसउ गुण कामु बखाण्यौ ।
कवि कहै ठकुरसी लभगु मै परमत्थु विचार्यौ ।
नरभियो त्यांह उपज्यौ जनमु वा याच्यौ तिह हारियो ॥३५॥

॥ इति कृपण छन्द समाप्त ॥

शील गीत

पारासरु अस विस्वमल रिषि रहत तुवइ बनि ।
कंद मूल वषि खंत हुंत अति खीरा महा तनि ।
ते तरुणी मुह पेखि मयण वसि हुवा विकलमति ।
पछइ जि सरस अहारु लिति तह तणी कवरण पति ।
परियो जु एकु मनहि जि के मनु इंदी वसि रहइ तहु ।
विंध्याचल गिरि सायर तरइ तउं मइ मनिउं सच्चु यहु ।।१।।

सिघु वसइ वन मज्झि मंस आहारि बली अति ।
वार एक वरस मैं करइ सिघणी सरि सुरती ।
पेखि परे वो पापु जासु मन मुडइ न आतुर ।
खाइ खंड पाषाण कामु सेवइ निसि वासर ।
भोयणु वसेषु नहु ठकुरसी इहु विकार सबु मन तणौ ।
सील रहहि ते स्पचं नर नहि पारामति गिणौ ।।२।।

।। इति शील गीत समाप्त ।।

पार्श्वनाथ स्तवन

नृप अससेणह पुत्तो गुण जुत्तो असुर कमठ मउ मलणो ।
वम्मादेउरि रइणो, वयणो अविरुद्ध अयअस्य ॥१॥

फणि मंडियउ सीसो, ईसो तिल्लोक सोक दुख दुलणो ।
तन तेय जेण निर्जित, कोटी खर किरण महु दीप्ति ॥२॥

जसु सुरपति दासो, चित्त संसार वासो ।
सयल समैं भासो, सत्त तच्चापयासो ।
किय मयण विणासो, दुट्ठ कमट्ठ नासो ।
जयउ सुपहुपासो पत्त सासै निवासो ॥३॥
गुणाण सव्वाण वरं निवासं, न ध्यावहि जे नर पाय पासं ।
कहुंत ये पुज्जै ताहु आसं, करंति जे मिछ पहुं विसासं ॥४॥

जि कि करहि मूढ विसासू ।
सुणै जाइ भोपाभास ।
खणावैति खान जीवा करै हि विणासु ।
जिकि कु गुर कुतिथ वास ।
सेवै जाइ जेम दास ।
चंडी मुंडी खेतपाल ध्यावै हि हुयास ।
जि कि पत्तर मनावै मास ।
ग्रहु गति बूझै कास ।
अवरइ मिथ्यात पथ करहि सहास ।
ताकी कहा थे पूजैइ आस ।
न ध्यावै जे प्रभ पासं ।
चंपावती थानि सब गुणहु निवास ॥५॥

सुखसिधामं प्रभ पास नामं ।
न लित जे वंछित सुख रामं ।
तिदुखयंता ससि सूर भाम ।
वसुंदरं गेहु नरं निकाम ॥६॥

त्रिकि दीसैहि नर निकाम ।
उपाइ न सकै दाम ।
पइया पर घर माहिँ मेरे तिय धाम ।
धरि नारीय नेहु विराम ।
अधिक कलय काम ।
नंदण निगुण धरिहुहि निरनाम ।
जाकी कहीय न रहै माम ।
फिरै पीली माम माम ।
रोक जिसा रोग पून्या दीसैं देहु शाम ।
तिहु कीयउ सही कुकामु ।
सकिउ न लेइ नामु ।
चम्पावती पास भय सब सुख धामु ।
अगत्त अधार भणोपहारी ।
जि ध्यावहिं पासु सुचारु चारी ।
ति पावहिं मानव सुख सारी ।
मनंत लछी गुणवंत नारि ॥८॥

जाकै दीसै गुणवंत नारि ।
रूपवंत सीलधारी ।
नंदण नृपुणनी काजिसउ मुरारी ।
जाकै हय गय मङ्घारि ।
धण धण पूरी वारि ।
कीरति सुजसु जाकै जाण्यो खण्ड चारि ।
जाकैं कहीयन प्रावै हारि ।
पावै सुख भव पारि ।
देहुन दुखी होइ जाकी रोग भारि ।
तिणि ध्यायो सही संसारि ।
मनहु जाणी विचारि ।
चंपावती पासु जसु जाकै अधारि ॥९॥

चंताउ पास प्रभ के लहंति ।
कुसैणु कुग्रह तसु कि करंति ।
हुवंति जीवा ससु ने नेहुवंत ।
जलं थलं अग्नि सहाइ संत ॥१०॥

जाकै अग्नि सीलै सहाइ।
नीर निधि थलु थाइ।
अके आयो स्याल सम सिघ हुव जाइ।
जाकै भानु देहि रूठा राइ।
अंगुरण लि लेहि छाइ।
विषम सुविसु अंगि अमी हुइ थाइ।
जाकी जगतु भली कहाइ।
लागै हिन आल्या थाइ।
कुग्रह कुसैंण बसु कछु न बसाइ।
ताकै भेदु पाया इव जाइ।
सुखी यति दीसै न्याइ।
चंपावती पास प्रभ तणै पसाइ ॥११॥

पास तणै सुपसाइ पाइ पणमंति आइ अरि।
पास तणै सुपसाइ थाइ चक्कवइ रिद्धि वरि।
पास तणै सुपसाइ सग्ग सिव सुखु लहिजै।
पास तासु पणमंति अंगि आलस कुन कीजै।
ठकुरसी कहै मलिदास सुणि।
हमि इहु पायो भेदु इव।
जगि जं जं सुंदरु संपजै।
तं तं पास पसाउ सब ॥१२॥

॥ इति पार्श्वनाथ स्तवन समाप्त ॥

सप्त व्यसन षट्पद

सुहमि पट्टि ससि मेरु, होहि मायस्ण सर सायर।
अयस अनोपम लेखि, साख सुरतर गुण भायर।
आपु इंदु करि लिहै, कहै फणि राउ सहस मुख।
लिहइ देवि सरसति लिहत पुणु रहइ नहीं चुख।
लेखणि मसि मही न उव्वरइ, थक्कइ सरिसइ इंद फुणि।
पापो मयोडु कहि ठकुरसी, सवइ जिणेसरि पास गुणि ॥१॥

जुआ खेलना—

जूव जुवारया मही लासु, गुणु किवइं न दीसइ।
मतिहीन मानई खेलि, मत चित्ति अणीसइ।
जगु आगइ दुखु सह्यो, पंच पंडव नरवइ जलि।
राजरिषि परहूरी, रणु सेविउ जुवा फलि।
इह विसन संगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत्त वसु।
इन जाणि अके जूवा रमैं, ते नर विस्थिवि सींगु पसु ॥२॥

मांस खाना—

मुरिख मंस म भखहु, तासु कारणु किन मोचइ।
जहि स्वाद कारणै, काइ लयइ भउ खोवहु।
फल प्रासत रस छुव कूडु कीयो न मुणिउ मणि।
मान्या उदर बिदारि विप बा तापी उल्लणि।
मै गुण अनंत आमिष भसहि कवि ठाकुर केता कहै।
बगराउ अजउं अंगलि भखणि नरइ नीच घणु दुखु सहैं ॥३॥

मदिरा पान करना—

मज्जु पिये गुण गलहि जीव जोगी ज्यास्यो भणि।
मज्जु पिये सम सरिख माइ महिला मन्नहि मणि।
मज्जु पिये बहु दुख सुखु सुणहा मैथुन इव।
मज्ज पिये जादव नरिंद संकटु कवि सब किव।

धम धम्म हारिा नरयह गमरणु कलहु मूलु अवजस उपति ।
हारंति जनम हेलइ मुगध, मज्जु पिये जे विकलमति ।।४।।

वेश्यागमन—

वेस्या वणिवर चारुदत्त परमाणु परिखिउ ।
सुनया कोडि छत्तीस सउ तिन घडी न रखिउ ।
अवर किता नर कहउं ज्याहु दिट्ठउ दुखु दारणु ।
गाहु हुरिवि कवि कालिदास मारिउ निकीणु ।
तसु संग किये प्रतिषइ अहि कुल कीरति छारहु मिलै ।
धनु जोवनु कीरति जाइ चलि ज्यौं कायर दीठा किलै ।।५।।

शिकार खेलना—

पारधि पंचमु विसनु नरइ पंचमि पहुचावइ ।
जाणंतऊ नरु नीचु पेखि पसु मनहु सिहावइ ।
तिण चरनिरा पराधइ सौ न नमनहु विचारहि ।
तुरिय चडिवि वनिजाहि जीव जोवन मदि मारहि ।
खत्री ध्रमनु करि संग्रहहि पारधि पापु विसाहि बहु ।
ते सहहि दुखु कहि ठकुरसी ज्यौं चक्कवइ सुवंमु पहु ।।६।।

चोरी करना—

चोरी करि सिवभूति विपु संसारि विगुत्तउ ।
तिणि डण्ड तिनि सहिय पुणवि मरि नरयहु पतउ ।
अवर किता नर सहहि दुखु दारणु चोरी संगि ।
इम जाणिवि परहरहु जिन रुलावहु अवगुण प्रंगि ।
जपु तपु सनानु संजमु सुकतु कुल कीरति तीरथ धरमु ।
तउ सहूल सवे कहि ठकुरसी जइ न फुरइ चोरी करमु ।।७।।

परस्त्री सेवन—

परतीय परत विणासु सरव दुख दावइ इहु भवि ।
जाणतउ जो अंधु लोउ परहरइ तवइ नवि ।
प्रगट सुणी ससारि कथा कीचक अरु दहमुख ।
कीय दोवइ कारणइ जेम मुंजिय दहु दुख ।

इह भइ अकिति पुरषो भवणु परति कासु पायो नरइ ।
सलहिये सुनर कहि ठकुरसी जो परतीय रहु रहइ ।।८।

सप्त व्यसन—

जुवा विसन वनवासि भमिय पंडव नरवइ नलु ।
मंसि मयो बगराउ सुराखो यो जादम कुलु ।
वेसा वणियर चारिदत्तु पारधि सवंभुनिउ ।
चोरी गउ सिवभूति विपु परती लंकाहिउ ।
इकेक विसनि कहि ठकुरसी नरइ नीचु नरु दुहु सहइ ।
जहि अंगि अधिक अछहि विसन ताह तणी को कहइ ।।९।।

।। इति सप्त विसन छपद ठकुरसी कृत समाप्तं ।।

व्यसन प्रबन्ध

जुवा केरा फल प्रगट घरं, खिण होहि भिखारी धनी नरं।
जिन खेलहु मूरिख हारिय धनी, किन सुणीय कथा पंडवहु तणी।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि बिस्न बुरा देहि दुख घणं ।।१।।

रसणा रसु स्वादु न राखि सकै, पलु प्रासै मूढु न परतु तकै।
वगरीव तणी परि नरय गते, सहि सै दुखु तव केतिसी चिते।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि बिस्न बुरा देहि दुख घणं ।।२।।

जहि पीये आठ अनर्थ करै, जननी महिला न विचार फुरै।
तहि मज्जि पिये भणु कवणु सुखो, जहि जादव बंसह दिणु दुखो।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि बिस्न बुरा देहि दुख घणं ।।३।।

विहि वेसा सिरजी नरय घर, धण जोवन कीरति हाणि कर।
जहि संग कियो वणि चारुदत्तो, रालियउगरो हृइ सेज सुतै।
सुणि सखि सयाणी मूढ मनं तजि, बिस्न बुरा देहि दुख घणं ।।४।।

जोवनि मधि मूरिख जाहि वनं, पसु पारिधि मारहि मूढ मनं।
चकवइ सुवभहु तणीय परे, दुर्गति दुख देखहि मूढ मरे ।। सुणि० ।।५।।

खर रोहण सूली वध घणं, तहि चोरी किये कवण गुणं।
प्रभ परयणु पुरजणु होइ रिपो, किन प्रगट सुण्यौ सिवमूति विपो ।। सुणि० ।।६।।

इह परतिय परत विणासु करै, इह रत सयल गुणि दूरि हरै।
परहरइ जको सुणि रावण कथा, सो लहइ सरव सुख विणु अनिथा ।।सुणि० ।।७।।

सुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठाकुर बिस्न प्रबंध कह्यो।
परहरइ जको ए जाणि गुणं, सो लहइ सरव सुख बंछित घणं।
सुणि सीख सयाणी मूढ मनं, तजि बिस्न बुरा देहि दुख घणं ।।८।।

।। इति व्यसन प्रबन्ध समाप्तः ।।

पार्श्वनाथ जयमाला

वारुणु नयणाचलु नयविहुरे, जिहु भव धउ भय भगइं ।
तहु जिण गुण महि सुमरंतियहि, थिक्कण चाहि उवसंगइ ।
महा विहु दंत उपाणि पयंडु, चहू दिसि चालीय सूंडा डंडु ।
नलग्गइ हथिणउ तणु जासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।१।।
डरावणु देहु सु सद्दु करालु, दुरा रुण णेत्त जिसहि बिफालु ।
सुन्याल समी हरि होइन कासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।२।।
जसु ठियज्झाल समीर सहाय, चहुं दिसि लग्ग न भगउ जाय ।
न ढुक्कइ नीडउ सो जिहु वासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।३।।
करेण छियो जसु जाइन भंगु, भरिउ विसि लच्छरि किण्ह भुवंगु ।
न लग्गइ चूरि डसो जिहु रासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।४।।
तरंग सुंमुठिय नीरि प्रवाहु, भरिउ जल जंति न लंघइ थाहु ।
सुहोइ समुद्दु जिसउ थल थासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।५।।
जिसण्णिय खेस मसिय सिरवाहि, भग्गंदर सूल जलोदर वाहि ।
तिणासहि कोढ पमुहु खय खास. धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।६।।
कुसौण जिकु ग्रह कूर कुदेव, कुमित्त कुसज्जन कुप्रभ सेव ।
करंति न ते भय दुख पसासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।७।।
कही चिरू कम्मि किये अरि बंधि, भरिउ तनु संकलि घल्लि निरंधि ।
तहूंत गयो अरि करिवि निरासु. धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।८।।
महा ठग चोर जि डाइणि दुट्ठु, दिनाइय कम्मण मंत असुठ ।
नलगहि लील गमे दिन पासु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।९।।
तिया सुव बंधव सज्जन इट्ठु, उपज्जीहु चित्तु रमै जिहु दिट्ठु ।
मणं छिय सव्वइ पूरहि आसु, धरंतह चित्ति चिंतामणि पासु ।।१०।।

घत्ता

इय वर जइमाला पास जिण गुण विसाला ।
पढहि जि णर णरी, तिण्णि संझा वियारि ।
कहहि करि अनंदो, ठकुरसी घेल्ह नंदो ।
लहहि ति सुखसारं, वंछियं बहु पयारं ।।११।।

।। इति पार्श्वनाथ जयमाला समाप्तः ।।

ऋषभदेव स्तवन

पांडव पंच भमत देश इक्कहि पुरि थक्किय ।
तहि कुंभारि रोवतं पुत्त दुखि देखि न सकिय ।
तासु मरण बोसरइ जाइ आपणु हक्कारिउ ।
रखिउ जणु जगडंतु भीमि रणि राखिउ सुमरिउ ।
तिम कहइ ठकुरसी रिसह जिणु तुह निवसतह चित्त धरि ।
जइ आइन तिय न दोस दुख, तबरि कहउ इव कासु फिरि ॥१॥

तुहु जग गुर जोतषी तुही वड वैदु विचखिणु ।
तुहु गरवो गारुडी सयल विसुहरहि ततखिणु ।
तुहुं सिद्धक्षर मंतु तंतु तूही तिभवणपति ।
तुहुं संजीवन जड़ी तुही दातारु महत गति ।
इष्वाक वंस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भम भव हरणु ।
सब अहूल अवरु कहि ठकुरसी, तुहु समरथ तारण तरणु ॥२॥

॥ इति ऋषभदेव स्तवन समाप्त: ॥

किसउ णरवै भइं न अउ रिद्धि नि ने ही सुहि किसौ ।
किसौ मंति जसु बुद्धि मंदी किसौ तुरंगमु वेग विणु ।
किसौ जति जसु बसिन इंदी किसौ वैदु जो ना लहो ।
देहु व्याधि कर जोइ निगुणी किवण गुण विचरै किसौ कवीसरु सोइ ।।१।।

ज्यौ क जणणी जणणु गुणवंत चियगरुई हीण वरु ।
पेखि पेखि मन मैं विसूरइ ज्यौं सेव कुसेवा किया ।
होइ दुमणु आसा न पूरइ ज्यौ पछितावो जणा ।
अवसरि सुजसु न लिद्ध कहि ठाकुर त्यौ कवियण नर निगुण गुण किद्ध ।।२।।

नर निर खर निकुलनि लज्जा निनेहीनी चरइ ।
निगुण सगुण अंतरु न जाणै बोल चूक बहुली कहइ ।
विनय वचनु बोलि विन जाणै कूवर कुसर कठोर अति ।
संचक सदासलोभ कहि ठाकुर तह गुण कहंहि ते कवि लहहि न सोभ ।।३।।

सगुण सुंदर सदा सद्धम साहमी सनहे कर ।
सुजसु संचि जे अजसु मूकै विनइ विचखिण बड चिता ।
वंस सुध बोलै न चूकै पाप परमुह पर तणउ ।
परइ करहि दुखु भंखि तहु जसु कहहि जि ठकुरसी तेरु कवीसर धन्नि ।।४।।

कहा वहिरउ करइ रसुगीउ कहा करै ससि अंधलो ।
कहा करै नरु संढु नारी कहा करै कर हीण नरु ।
गुण सजुत्त को वंडुकारी कहा करै चंपउ अवक परिमल ।
परिमल अधि विसाल कहा करै त्यौं निगुण नरु कवियण कव्वु रसालु ।।५।।

जइ रूवहि रइ सुण्यो नहु गीतु, जइ न दिठ ससि अंधलइ ।
जइ न तरुणि रसु संढि आण्यौ, जइ न अवक चंपइ रम्यो ।
जइ न धणकु करहीणि ताण्यो, जइ किणि निगुणि निलक्खणो ।
कव्वि न कीयो मण्णु कहि ठाकुर, तउ गुणी मण नाउ जासी गुणु ।।६।।

।। इति कवित्त समाप्तः ।

पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी

अर्स धवलवि धवल गलिहारु धवलासणु कमलु जसु ।
धवल हंस वाहणि बइठि वीणा पुस्तक कर लियइ ।
करइ वि दुरखड जोग तूठी तहि परमेसरि पय कमल ।
पणविवि निम्मल चित्ति पयडु करिसु चंपावती पास नाह गुण कित्ति ।।१।।

एक दिवसह पास जिण गेह मल्लिदास पंडिय कहय ।
ठकुरसीह सुणि कवि गुणग्गल गाहा गीय कवित कह ।
तइ किय मय निसुणी समग्गल इव श्री पास जिणंद गुण ।
बर बम्मा देवी जणणी सुयणा सोलह निसि ण जणणु अखै ।
तुह सुवहो सइ अतुल बलु दयाल या कलकडु अमयो आणि जगनाथु ।
करहि न किं तुहु भव्व जहि कीया ये पाविए मन वंछित सुख सव्व ।।२।।

ताम विहसिवि कहइ कवि एम णिसुणि मित्त तसु गुण कहत ।
सरसय इंदु वणिदु थक्कइ कवि माणस अम्हा सरिसु ।
तहा कवण परि कहिवि सक्कइ, पणि तुहु वयणु न अवथउ ।
मू मनि पुव्व अगीस बुधिसार तसु, गुण कहिसु जस फणि मंडिउ सीसु ।।३।।

देस सयलह मज्झि सुपसिध ।
जसु पटतर अलंकृतविहि ।
ढुंढि ढुढाहडु नामु भणिउ ।
तह चंपावती वरु णयरु ।
जहा न को जणु वसइ दुखिउ ।
जैन महोछा महम घण ।
जहि दिनि दिनि दीसन्ति ।
तहा वसइ ते धण्णु णर ।
इउ जण विवस कहंति ।।४।।

तासु णयरी म................[1]।
....।

---

१. पाण्डुलिपि में छन्द ५ से १४ तक नहीं है ।

ते गुणमित जिय परमाह ।
चट्ठ बाहरि चट्ठ भितरिहि ।
तविउ सु तपु मइ दुलहु दुद्धरु ।
मय अट्ठ परहरि कियो ।
तेरह विह चारित उद्धरु ।
बंम्ह चेर नव विहि धरिउ ।
दह विहु पालिउ धम्मु ।
एम जिणेसर पास प्रभि ।
खयो पुव्व किउ कम्मु ।।१५।।

पर परीसह सहिय बावीस, अरिहट्ठ कक्कर कसी ।
थुइ णिंदा सम भाइ भावण, कुण थाम गुत्ति बडिउ ।
नवो कम्मु नहु दिण्णु प्रावण, चम अणेइ पक्षार तब ।
तबि उतिथं करि जाम, असुर इक्कु णहि जंतु सिरि थक्कुवि माणें ताम ।।१६।।

थिरु विमाणिहि वैरु संभलिउ ।
इल आइ विलगउ करणु ।
घोर वीरु उवसग्गु कुठउ ।
जान चलिउ ता असुरु ।
जलु प्रसंखु दिन सत्त वुठउ ।
चिरउ बयारु विसंभरिवि ।
सो रक्खिउ धरणिंद ।
पउ इवसमिउ पाविहउ ।
केवल णाणु जिणिंद ।।१७।।

तब्बहि आविय सयल सुर मिलिवि, जय जय पभणंत गिरि ।
नियवि तहु सुरु कमठु णवउ, समोसरण लच्छी सहिउ ।
हुवो दोस तजि गुणि गरिट्ठिउ, चउतीस तिसय मंडियउ ।
बसु पडिहारु संजोउ, अट्ठ कम्मह णिदिट्ठ तिनि काल नयणि तिलोउ ।।१८।।

तवहि दरसिउ मग्गु कुमग्गु, घट दव्व तत्तक्खसिउ ।
तव पयय गुण भेउ अक्खिउ, संसार सायरि विषमि ।
पडत भव्व जनु सयलु रक्खिउ इम बोहंतउ सयल जगु ।
पुणु पत्तउ निव्वाणि, हुवो सिद्ध बसु गुण सहिय सासय सुख निहाणी ।।१९।।

तासु जिणवर तणउ पडि विंबु ।
ग्रहघात पाखाणमइ ।
ग्रांथिइ मुकल कल कालि जिपुवि ।
तहा तहा अतिसय सहितु ।
परत्या पूरण छहि समथवि ।
पाणि जु मुत्ति चंपावती ।
कुस्न वणि अयइट्ठु ।
तासु परस्यो हुउं कहुऊं ।
जो मइ णयणह दिट्ठु ।।२०।।

जवहि लिद्धउ राणि संग्रामि, रणथंभुवि दुग्ग गढु ।
जब इब्राहिम साहि कोपिउ, बलु बौली मोकलिउ ।
वोलु कौलु सबु तेण लोपिउ, जब लग उज्भलि हाइसिउ ।
मेछ मूढु भय वज्जि, विणु चंपावती देस सहि गया दहइ दिसि भज्जि ।।२१।।

तिवहि कंपिउ सयल पुरु लोउ ।
कोइन कसु वरज्जिउ रहइ ।
भज्जि दहइ दिसि जाण लगउ ।
मिलिवि करी तव बीनती ।
पासणाह सामी सु प्रगउ ।
सवणा जोतिग केवली ।
चित्तु न मंडइ ग्रास ।
कालि पचमी पास प्रभ ।
जगि तुव तणउ विसासु ।।२२।।

तेण तुह्म सिउं कहहि जगनाथ ।
निसुणि सिद्धि सुंदरि रवण ।
इहि निमित्त कउ किसउं कारणु ।
भूत भविषित जाण तुहु ।
तुहु समथु जगि तरण तारणु ।
उच्चावंता उचवहु ।
जहि भय देखहि गाइं ।
अहरिन देखहि पास प्रभ ।
होइ रहहु थिरु ठाइ ।।२३।।

एम जंपवि करिवि थुय पूज, मल्लिदास पंडिय पमुहु ।
सइं हुया सामी उच्चायउ, तुम्ह मूरति उवी न तिलु ।
हुवो जाणि सुर गिरि अचायउ, इम्मि विधि पटलिउ वारतिहु ।
पूरिवि हूरी भराति अववंतउ, अवि पास तुहु जेण करी सुख सांति ।।२४।।

तासु पर तेजि के णर भक्खनी भग्गा दिवु रक्खा ।
हुवा सुखी ते घरा वासै ।
जो भग्ग मति करि ।
दुखि पाया अरु पड्या सांसै ।
अवरइ परस्या वहु इसा ।
प्रभु पूरिवा समथु ।
भजउन जिसु पतियाइ मनु ।
सो नर निगुण निरथु ।।२५।।

इव जि सेवहि कुगुरु कुदेव, कु तिथ जि गमु करहि ।
इवहि जि क पाखंडु मंडहि, धगड धम्मु पावहि न ते ।
मुनिष जम्मु लद्धउ ति मंडहि, सेवहि जिन चपावती ।
परत्या पूरण पासु, हरत परत जिउ हुइ सफलु वंछित पूरइ आस ।।२६।।

घेल्ह णंदणु ठकुरसी नाम ।
जिण पाय पंकय भसलु तेण ।
पास थुय किय सचो अवि ।
पंदरासय अट्ठतरइ ।
माह मासि सिय परव दुइजवि ।
पढहि गुणहि जे नारि नर ।
तहि मन पूरइ आस ।
इय जाणे विणु निसु तुहु ।
पढि पंडित मल्लिदास ।।२७।।

।। इति श्री पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी समाप्ता ।।

□□□

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल
एवं
भ० त्रिभुवनकीर्त्ति पर मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य एलाचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज :

समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने की श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की योजना बहुत ही समयानुकूल है। इस योजना से बहुत से अज्ञात एवं अप्रकाशित जैन कवि प्रकाश में आ सकेंगे। सम्पादन एवं मूल्यांकन की दृष्टि से अकादमी के प्रथम पुष्प 'महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का बहुत सुन्दर प्रकाशन हुआ है। हमारा इस अकादमी को आशीर्वाद है। समाज द्वारा अकादमी को पूर्ण सहयोग साहित्य प्रेमियों को देना चाहिए, ऐसी हमारी सद्‌भावना है।

× × ×

आचार्य कल्प परम पूज्य १०८ श्री श्रुत सागर जी महाराज :

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने की योजना महत्वपूर्ण एव उपयोगी है। हिन्दी भाषा की अज्ञात एवं अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाश में लाने का जो कार्य प्रारम्भ किया है उसमे अकादमी एवं पदाधिकारी गणो को सफलता प्राप्त हो यही मगल आशीर्वाद है।

□ □ □

अनुक्रमणिका

ग्राम एवं नगर

कवि, विद्वान् एवं श्रावकगरण

कृतियां

जाति एवं गोत्र